प्रकाशकीय

साधुमार्गी जैन–परम्परा मे महान् क्रियोद्धारक आचार्यश्री हुक्मीचदजी मसा की पाट–परम्परा मे षष्ठ युगप्रधान आचार्यश्री जवाहरलालजी मसा विश्व–विभूतियो मे एक उच्चकोटि की विभूति थे अपने युग के क्रातदर्शी, सत्यनिष्ठ तपोपूत सत थे। उनका स्वतन्त्र चिन्तन वैराग्य से ओत–प्रोत साधुत्व प्रतिभा–सम्पन्न वक्तृत्वशक्ति एव भक्तियोग से समन्वित व्यक्तित्व स्व–पर–कल्याणकर था।

आचार्यश्री का चिन्तन सार्वजनिक सार्वभौम और मानवमात्र के लिए उपादेय था। उन्होने जो कुछ कहा वह तत्काल के लिए नही अपितु सर्वकाल के लिए प्रेरणापुज बन गया। उन्होने व्यक्ति समाज ग्राम, नगर एव राष्ट्र के सुव्यवस्थित विकास के लिए अनेक ऐसे तत्त्वो को उजागर किया जो प्रत्येक मानव के लिए आकाशदीप की भॉति दिशाबोधक बन गये।

आचार्यश्री के अन्तरग मे मानवता का सागर लहरा रहा था। उन्होने मानवोचित जीवनयापन का सम्यक् धरातल प्रस्तुत कर कर्तव्यबुद्धि को जाग्रत करने का सम्यक प्रयास अपने प्रेरणादायी उदबोधनो के माध्यम से किया।

आगम के अनमोल रहस्यो को सरल भाषा मे आबद्ध कर जन–जन तक जिनेश्वर देवो की वाणी को पहुचाने का भगीरथ प्रयत्न किया। साथ ही, प्रेरणादायी दिव्य महापुरुषो एव महासतियो के जीवन–वृत्तान्तो को सुबोध भाषा में प्रस्तुत किया। इस प्रकार व्यक्ति से लेकर विश्व तक को अपने अमूल्य साहित्य के माध्यम से सजाने–सवारने का काम पूज्यश्रीजी ने किया है। अस्तु! आज भी समग्र मानवजाति उनके उदबोधन से लाभान्वित हो रही है। इसी क्रम मे किरणावली का यह अक सती राजमती एव सती मदन रेखा पाठको के लिए प्रस्तुत है। सुज्ञ पाठक इससे सम्यक लाभ प्राप्त करेगे।

युगद्रष्टा युगप्रवर्तक ज्योतिर्धर आचार्यश्री जवाहरलालजी मसा का महाप्रयाण भीनासर मे हुआ। आपकी स्मृति को अक्षुण्ण रखने और आपके कालजयी प्रवचन–साहित्य को युग–युग मे जन–जन को सुलभ कराने हेतु समाजभूषण कर्मनिष्ठ आदर्श समाजसेवी स्व सेठ चम्पालालजी बाठिया का चिरस्मरणीय श्लाघनीय योगदान रहा। आपके अथक प्रयासो और समाज के उदार सहयोग से

श्री जवाहर विद्यापीठ भीनासर की स्थापना हुई। सस्था जवाहर–साहित्य को लागत मूल्य पर जन–जन को सुलभ करा रही है और पण्डित शोभाचन्द्रजी भारिल्ल के सम्पादकत्व मे सेठजी ने 33 जवाहर किरणावलियो का प्रकाशन कर एक उल्लेखनीय कार्य किया है। वाद मे सस्था की स्वर्णजयन्ती के पावन अवसर पर श्री वालचन्दजी सेठिया व श्री खेमचन्दजी छल्लाणी के अथक प्रयासो से किरणावलियो की सख्या वढाकर 53 कर दी गई। आज यह सैट प्राय विक जाने पर श्री जवाहर विद्यापीठ मे यह निर्णय किया गया कि किरणावलियो को नया रूप दिया जावे। इसके लिए सस्था के सहमत्री श्री तोलाराम वोथरा ने परिश्रम करके विषय–अनुसार कई किरणावलियो को एक साथ समाहित किया और पुन सभी किरणावलियो को 32 किरणो मे प्रकाशित करने का निर्णय किया गया।

ज्योतिर्धर श्री जवाहराचार्यजी म सा के साहित्य के प्रचार–प्रसार मे जवाहर विद्यापीठ भीनासर की पहल को सार्थक और भारत तथा विश्वव्यापी बनाने म श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ वीकानेर की महती भूमिका रही। सघ न अपने राष्ट्रव्यापी प्रभावी सगठन और कार्यकर्ताओ के बल पर जवाहर किरणावलियो के प्रचार–प्रसार और विक्रय–प्रवन्धन मे अप्रतिम योगदान प्रदान किया हे। आज सघ क प्रयासा स यह जीवन–निर्माणकारी साहित्य जैन–जैनेतर ही नहीं अपितु विश्व–धरोहर वन चुका है। सघ के इस योगदान के प्रति हम आभारी हैं।

धर्मनिष्ठ सुश्राविका श्रीमती राजकुवर वाई मालू धर्मपत्नी स्व डालचन्दजी मालू द्वारा आरम्भ म समस्त जवाहर–साहित्य–प्रकाशन के लिए 60 000 रु एक साथ प्रदान किये गये थे जिससे पूर्व म लगभग सभी किरणावलियॉ उनके सोजन्य स प्रकाशित की गई थी। सत्साहित्य–प्रकाशन के लिए वहिनश्री की अनन्य निष्ठा चिरस्मरणीय रहेगी।

प्रस्तुत किरणावली का पिछला सस्करण श्रीमान् पुनमचन्दजी सुराणा पीलीवगा एव श्रीमती राजकुवरवाई मालू, वीकानेर के सौजन्य से प्रकाशित किया गया और प्रस्तुत किरण 24 (सती राजमती एव मदनरेखा) के अर्थ–सहयोगी श्री सतोषकुमारजी सुशीलकुमारजी वादलकुमारजी पुगलिया चैन्नई वीकानेर हैं। सस्था सभी अर्थ–सहयोगिया के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती हे।

निवेदक

चम्पालाल डागा
अध्यक्ष

सुमतिलाल बाठिया
मत्री

आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा.

जीवन–तथ्य

जन्म स्थान	थादला, मध्यप्रदेश
जन्म तिथि	वि स 1932, कार्तिक शुक्ला चतुर्थी
पिता	श्री जीवराजजी कवाड
माता	श्रीमती नाथीबाई
दीक्षा स्थान	लिमडी (म प्र)
दीक्षा तिथि	वि स 1948, माघ शुक्ला द्वितीया
युवाचार्य पद स्थान	रतलाम (म प्र)
युवाचार्य पद तिथि	वि स 1976, चैत्र कृष्णा नवमी
आचार्य पद स्थान	जैतारण (राजस्थान)
आचार्य पद तिथि	वि स 1976, आषाढ शुक्ला तृतीया
स्वर्गवास स्थान	भीनासर (राज)
स्वर्गवास तिथि	वि स 2000 आषाढ शुक्ला अष्टमी

आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा.

1 देश मालवा गल गम्भीर उपने वीर जवाहर धीर
2 प्रभु चरणो की नौका मे
3 तृतीयाचार्य का आशीर्वाद एव ज्ञानाभ्यास प्रारम्भ
4 नई शैली
5 मैं उदयपुर के लिए जवाहरात की पेटी भेज दूगा
6 जोधपुर का उत्साही चातुर्मास दयादान के प्रचार का शखनाद
7 जनकल्याण की गगा बहाते चले
8 कामधेनु की तरह वरदायिनी बने कॉन्फ्रेस
9 धर्म का आधार– समाज–सुधार
10 महत्त्व पदार्थ का नही, भावना का है
11 दक्षिण प्रवास मे राष्ट्रीय जागरण की क्रातिकारी धारा
12 वैतनिक पण्डितो द्वारा अध्ययन प्रारम्भ
13 युवाचार्य पद महोत्सव मे सहज विनम्रता के दर्शन
14 आपश्री का आचार्यकाल– अज्ञान–निवारण के अभियान से आरम्भ
15 लोहे से सोना बनाने के बाद पारसमणि बिछुड ही जाती है
16 रोग का आक्रमण
17 राष्ट्रीय विचारो का प्रवल पोषण एव धर्म–सिद्धातो का नव विश्लेषण
18 थली प्रदेश की ओर प्रस्थान तथा 'सद्धर्ममडन' एव 'अनुकम्पाविचार' की रचना
19 देश की राजधानी दिल्ली मे अहिसात्मक स्वातत्र्य–आदोलन को सम्बल
20 अजमेर के जैन साधु सम्मेलन मे आचार्यश्री के मौलिक सुझाव
21 उत्तराधिकारी का चयन–मिश्री के कूजे की तरह बनने की सीख
22 रूढ विचारो पर सचोट प्रहार ओर आध्यात्मिक नव–जागृति
23 महात्मा गाधी एव सरदार पटेल का आगमन
24 काठियावाड–प्रवास मे आचार्यश्री की प्राभाविकता शिखर पर
25 अस्वस्थता के वर्ष दिव्य सहनशीलता और भीनासर मे स्वर्गवास
26 सारा देश शोक–सागर मे डूब गया और अर्पित हुए अपार श्रद्धा–सुमन परिशिष्ट स 1 2 3 4 5 6 7

आचार्यश्री जवाहर–ज्योतिकण

+ विपत्तियो के तमिस्र गुफाओ के पार जिसने सयम–साधना का राजमार्ग स्वीकार किया था।
+ ज्ञानार्जन की अतृप्त लालसा ने जिनके भीतर ज्ञान का अभिनव आलोक निरतर अभिवर्द्धित किया।
+ सयमीय साधना के साथ वैचारिक क्राति का शखनाद कर जिसने भू–मण्डल को चमत्कृत कर दिया।
+ उत्सूत्र सिद्धातो का उन्मूलन करने, आगम–सम्मत सिद्धातो की प्रतिष्ठापना करने के लिए जिसने शास्त्रार्थो मे विजयश्री प्राप्त की।
+ परतत्र भारत को स्वतत्र बनाने के लिए जिसने गाव–गाव, नगर–नगर पाद–विहार कर अपने तेजस्वी प्रवचनो द्वारा जन–जन के मन को जागृत किया।
+ शुद्ध खादी के परिवेश मे खादी–अभियान चलाकर जिसने जन–मानस मे खादी–धारण करने की भावना उत्पन्न कर दी।
+ अल्पारभ–महारभ जैसी अनेको पेचीदी समस्याओ का जिसने अपनी पखर प्रतिभा द्वारा आगम–सम्मत सचोट समाधान प्रस्तुत किया।
+ स्थानकवासी समाज के लिये जिसने अजमेर–सम्मेलन मे गहरे चितन–मनन के साथ प्रभावशाली योजना प्रस्तुत की।
+ महात्मा गाधी, विनोबा भावे, लोकमान्य तिलक, सरदार वल्लभ भाई पटेल, प श्री जवाहर लाल नेहरू आदि राष्ट्रीय नेताओ ने जिनके सचोट प्रवचनो का समय–समय पर लाभ उठाया।
+ जैन व जैनेतर समाज जिसे श्रद्धा से अपना पूजनीय स्वीकार करता था।
+ सत्य सिद्धातो की सुरक्षा के लिये जो निडरता एव निर्भीकता के साथ भू–मडल पर विचरण करते थे।
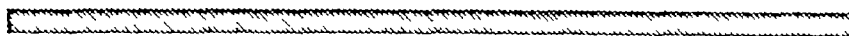
"हुक्म सघ के आचार्य"

1. **आचार्य श्री हुक्मीचदजी म सा – दीक्षा वि स 1870, स्वर्गवास वि स 1917**
   ज्ञान-सम्मत क्रियोद्धारक, साधुमार्गी परम्परा के आसन्न उपकारी।
2. **आचार्य श्री शिवलालजी म सा – दीक्षा वि स 1891, स्वर्गवास वि स 1933**
   प्रतिभा–सम्पन्न प्रकाण्ड विद्वान, परम तपस्वी, महान शिवपथानुयायी।
3. **आचार्य श्री उदय सागरजी म सा – दीक्षा 1918 स्वर्गवास वि स 1954**
   विलक्षण प्रतिभा के धनी वादी–मान–मर्दक, विरक्तो के आदर्श विलक्षण।
4. **आचार्य श्री चौथमलजी म सा – दीक्षा 1909, स्वर्गवास वि स 1957**
   महान क्रियावान, सागर सम गभीर, सयम के सशक्त पालक, शात–दात, निरहकारी, निर्ग्रन्थ–शिरोमणि।
5. **आचार्य श्री श्रीलालजी म सा – दीक्षा 1944, स्वर्गवास वि स 1977**
   सुरा–सुरेन्द्र–दुर्जय कामविजेता, अद्भुत स्मृति के धारक, जीव–दया के प्राण।
6. **आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा – दीक्षा 1947, स्वर्गवास वि स 2000**
   ज्योतिर्धर महान क्रातिकारी, क्रातदृष्टा, युगपुरुष।
7. **आचार्य श्री गणेशीलालजी म सा – दीक्षा 1962, स्वर्गवास वि स 2019**
   शात क्राति के जन्मदाता सरलता की सजीव मूर्ति।
8. **आचार्य श्री नानालालजी म सा – दीक्षा 1996, स्वर्गवास वि स 2056**
   समता–विभूति विद्वद्शिरोमणि, जिनशासन–प्रद्योतक धर्मपाल–प्रतिबोधक, समीक्षण–ध्यानयोगी।
9. **आचार्य श्री रामलालजी म सा – दीक्षा 2031 आचार्य वि स 2056 से**
   आगमज्ञ तरुण तपस्वी तपोमूर्ति उग्रविहारी सिरीवाल–प्रतिबोधक व्यसनमुक्ति के प्रवल प्रेरक वालब्रह्मचारी प्रशातमना।
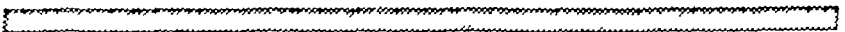
अर्थ–सहयोगी परिचय

श्रेष्ठीवर्य समतासाधक, शासननिष्ठ समाजसेवी, श्री संतोषकुमारजी, सुशीलकुमारजी, बादलकुमारजी पुगलिया, चैन्नई, बीकानेर

सेठ श्रीमान् शिखरचन्दजी सुपुत्र धर्मपरायण श्रेष्ठिवर्य श्रीयुत धर्मचन्दजी पुगलिया (बीकानेर निवासी) बाल्यकाल मे ही नागौर निवासी सेठ श्रीयुत जेवतमलजी पुगलिया के यहाँ गोद चले गये थे। बीकानेर परिवार मे आपके बडे भ्राता श्रीमान् सिद्धकरणजी एव लघु भ्राता श्रीमान् प्रतापचन्दजी पुगलिया थे।

स्वर्गीय श्री शिखरचन्दजी पुगलिया एव उनकी धर्मपत्नी स्व श्रीमती पार्वती देवी मधुरभाषी तथा धर्मप्रेमी सद्गृहस्थ थे। आपके चार पुत्र एव दो पुत्रियाँ हुई, जिनका परिचय इस प्रकार है–

उद्योगपति श्रीमान् सतोषकुमारजी पुगलिया वर्तमान मे चैन्नई मे निवसित है। आपका Sanitary Fitting का Wholesale Trade Centre हैं तथा Powder Coating Industries Unit है, जिसमे "Batow-Fitty" के नाम से विभिन्न Itmes उत्पादन करते हैं। तथा Yash Distributors, Chennai

वर्तमान मे आप साधुमार्गी जैन सघ, चैन्नई के कार्यकारिण सदस्य तथा बीकानेर डिस्ट्रीक्ट जैन एसोसिएशन, चैन्नई के अध्यक्ष एव एस एस जैन सघ, कुण्डीतोप के उपाध्यक्ष भी है। श्री साधुमार्गी जैन सघ, चैन्नई की ऐतिहासिक Directory प्रकाशन के आप चेयरमेन भी रहे। अनेक सामाजिक कार्यो मे आप रुचि रखते है। आपके दो पुत्र श्री सुशीलकुमारजी पुगलिया (B Com, M B A) श्री बादलकुमारजी (Bcs) उच्च शिक्षा प्राप्त, अत्यन्त आज्ञाकारी एव धर्म मे आस्था रखने वाले हैं तथा तीन धर्मशीला पुत्रियॉ हैं– सौ शिक्षा (B Com) श्री नवलकुमारजी आसानी, नागपुर सौ कविता (Bcs) श्री अमोल सचेती, कोयम्बत्तुर तथा सुश्री मनिता पुगलिया (B A Litt) श्री विनीत सेठिया हैं। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सन्ध्यादेवी पुगलिया अत्यन्त सरल सद्विचार युक्त तथा धार्मिक सस्कारो से ओतप्रोत है। आपने बेला तेला चोला अठाई तथा मासखमण की तपस्याऍ भी की हैं। आपकी पुत्रवधू सौ कुसुमलता (सुपुत्री श्रीमान् मागीलालजी छलानी) एव सौ सगीता (सुपुत्री श्रीमन जीवनमलजी बेताला) तथा पौत्र श्री गर्वितकुमार यश कुमार व जिनेश पौत्री सुश्री उन्नति पुगलिया है। आपका समस्त परिवार स्व आचार्य

देव श्री 1008 श्री नानालालजी म सा एव वर्तमान आचार्य श्री 1008 श्री रामलालजी म सा के परम श्रद्धालु तथा अनन्य भक्त है।

भाई श्री सुगनचन्द्रजी पुगलिया कोयम्बत्तुर मे व्यवसायरत है। ''पार्वती कोरोगेटेड इन्डस्ट्री'' के नाम से आपका प्रतिष्ठान है। आपकी व्यापारिक क्षमता एव मिलनसारिता कोयम्बत्तुर मे अपना विशिष्ठ स्थान बनाये हुए हैं। आपने नेशनल एवार्ड भी प्राप्त किये हैं। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती मोहनी देवी है, आपने अठाई एव सोलह की तपस्या की है। आचार्य श्रीराम के आप सभी श्रद्धालु भक्त है। आपके दो पुत्रियॉ हैं– सुश्री अपना और सुश्री शिल्पा।

भाई श्री प्रसन्नचन्दजी पुगलिया कोयम्बटुर मे Pack Mart के नाम से packing materials के Whloesale का व्यापार है। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती किरण देवी है तथा तीन सुपुत्रियॉ कुमारी दिव्या, कुमारी वर्षा तथा कुमारी चारुलता है। आप स्वय ने अठाई की तपस्या भी की है।

श्री सतोषकुमारजी पुगलिया की दो बहने– श्रीमती भवरीदेवी–स्व सम्पतराजजी चोरडिया रूणवासी तथा श्रीमती शान्तिदेवी–श्री कवरलालजी नवलखा, कोलावासी है। सुपुत्र श्री सुशीलकुमार एव श्री बादलकुमार अत्यन्त आज्ञाकारी एव धर्म मे आस्था रखते हैं।

प्रभु महावीर की एव आचार्य श्री रामेश की असीम कृपा से यह परिवार सदैव साधुमार्गी जैन सघ की सेवा मे सतत् सलग्न रहे, इन्ही

शुभकामनाओ के साथ–

बीकानेर का पता –
मुकीम बोथरा मौहल्ला
बीकानेर

अनुक्रम

सती राजमती

१	अध्याय एक कथारम्भ	१
२	अध्याय दो कृष्णा को भय	८
३	अध्याय तीन बिना दी स्वीकृति	१८
४	अध्याय चार सगाई	२६
५	अध्याय पाच बरात	३८
६	अध्याय छ करुणा	४६
७	अध्याय सात उपदेश	५६
८	अध्याय आठ अस्वीकृता राजमती	६८
६	अध्याय नव परिवर्तन	७२
१०	अध्याय दस पतिप्रेम	८२
११	अध्याय ग्यारह दीक्षा	६१
१२	अध्याय बारह फिर पतन की ओर	६७
१३	अध्याय तेरह वियोगान्त	१०५
	उपसहार	१०६

सती मदनरेखा

१	कथारम्भ	११५
२	कामासक्ति	१२२
३	दुष्प्रयत्न	१३५
४	बन्धु-हत्या	१५२
५	धर्म-सहाय्य	१६६
६	वन की शरण	१७६
७	सन्त समागम	१८६
८	धर्म और पाप का परिणाम	२०१
९	सती सुव्रता	२१२
१०	युद्ध	२२०
११	अज्ञानान्त	२२६
१२	भ्रातृ-मिलन	२४०
१३	प्रत्येकबुद्ध नमिराज	२५०

प्रथम अध्याय
कथारम्भ

भारत के किसी भी व्यक्ति को, यदुवश का परिचय देना आवश्यक नही है। यदुवश, स्वय ही सुख्यात है। वैसे तो यदुकुल पहले से ही सुप्रसिद्ध था, लेकिन भगवान श्री अरिष्टनेमि और महाराज श्रीकृष्ण वासुदेव का जन्म इस कुल मे होने से इसका गौरव अत्यधिक बढ गया था। अपने वचन की रक्षा के लिए अपनी सन्तान को दुष्ट स्वभावी कस के हाथ मे मारी जाने के लिए सौंपने वाले सत्यवादी श्रीकृष्ण के पिता वासुदेव का जन्म भी इसी कुल मे हुआ था। त्रिलोक मे सर्वोत्तम और अद्वितीय माता मानी जाने वाली महारानी देवकी ऐसी पतिव्रता और पतिपरायण स्त्री–रत्न ने भी, यदुकुल मे ही जन्म लिया था। ठीक युवावस्था मे और विवाह की तैयारी के समय, इस विनाशी ससार से विरक्त होकर दीक्षा लेने वाले तथा मस्तक पर आग जलती होने पर भी, धैर्य न त्याग कर अनुपम क्षमा का परिचय देने वाले एव जिस दिन दीक्षा ली उसी दिन मोक्ष प्राप्त करने वाले मुनिश्री गजसुकुमार ने भी इसी कुल मे जन्म लेकर, इसे गौरवान्वित किया था। यदुकुल की ख्याति के इन सब कारणो के सिवा एक कारण उसकी अत्यधिक वृद्धि तथा विनाश भी है। जनसख्या मे यदुकुल जैसा बढा हुआ था, कोई दूसरा कुल उस समय वैसा बढा हुआ हो इसका वर्णन कही नही पाया जाता। साथ ही ऐसा बढा हुआ कुल जिस प्रकार विनष्ट हुआ उस तरह कोई दूसरा कुल शायद ही विनष्ट हुआ हो। इन सब कारणो से यदुकुल का नाम आज भी सब लोग जानते है और इसलिए यदुकुल का अधिक परिचय देना अनावश्यक है।

इसी यदुवश मे अन्धकवृष्णि और भोजवृष्णि नाम के दो प्रतापी राजा हुए। अन्धकवृष्णि शौरिपुर मे राज्य करते थे और भोजवृष्णि मथुरा मे। मथुरा

मे राज्य करने वाले महाराज भोजवृष्णि के उग्रसेन, देवसेन आदि पुत्र थे और शौरिपुर मे राज्य करने वाले महाराजा अन्धकवृष्णि के समुद्रविजय, वसुदेव प्रभृति दस पुत्र थे, जो दस दशार्ह के नाम से प्रसिद्ध थे। महाराजा भोजवृष्णि के एक भाई, मृत्तिकावती नाम की नगरी मे रहते थे, जिनका उत्तराधिकारी उन्हीं का पुत्र देवक नाम का राजा था। इन्ही देवक राजा की कन्या का नाम देवकी था जो महाराजा वसुदेव को विवाही गई थी और जिसकी कोख से कस निहन्ता महाराज श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था।

वसुदेवादि दस दशार्ह मे सबसे बडे महाराजा समुद्रविजय थे। महाराजा समुद्रविजय की महारानी का नाम शिवादेवी था। महारानी देवकी की ही भाति महारानी शिवादेवी भी पतिव्रता और पतिपरायणा थी। इस कथा के नायक भगवान अरिष्टनेमि को इन्ही महारानी शिवादेवी ने जन्म दिया था। जिस समय श्रीकृष्ण द्वारा कस का सहार हुआ था और समुद्रविजय प्रभृति यादवो सहित श्रीकृष्ण द्वारका मे आकर रहने लगे थे तथा वहा अपना राज्य स्थापित किया था उस समय भगवान अरिष्टनेमि की अवस्था लगभग आठ वर्ष की थी। अपने माता-पिता के साथ ही भगवान अरिष्टनेमि भी द्वारिका मे रहते थे।❋

कस के मारे जाने के पश्चात् महाराजा उग्रसेन के यहा एक कन्या रत्न का जन्म हुआ था जिसका नाम राजमती था। राजमती अत्यधिक सुन्दरी थी। उसके रूप-लावण्य का वर्णन करते हुए गणधरो ने भी उसके लिए 'मणिप्रभा और विद्युच्छटा' की उपमा दी है। राजमती सुन्दरी होने के साथ ही गुणवती, सुलक्षणा और बुद्धिमती भी थी। उसकी शारीरिक रचना आकृति, बुद्धि और उसके गुण तथा स्वभाव से लोगो को पुण्योपार्जन की शिक्षा मिलती

❋श्रीकृष्ण प्रभृति समस्त यादव, एक भविष्यभाषी के कहने पर जरासन्ध की सेना से बचने के लिए ही द्वारका म आकर बसे थे। जरासन्ध के कोप का कारण था, कृष्ण द्वारा जरासन्ध के जामाता कस का सहार। कस के मरने के पश्चात् मथुरा का राज्य श्रीकृष्ण न उग्रसन को दिया था इसलिए उग्रसेन पर भी जरासन्ध की वक्रदृष्टि होना सभव था और हो सकता है कि इस कारण कृष्णादि के साथ उग्रसेन भी मथुरा त्याग कर द्वारका म रहन लग थे या वे मथुरा म ही रहत थे इस विषय का अनुसन्धान करन क लिए कई ग्रन्थ शास्त्र और उनकी टीकाए देखी गई परन्तु कही भी कोई स्पष्टीकरण दृष्टिगोचर नहीं हुआ। इसलिए 'केवली जाने' कह कर ही सन्तोष करना पडता है कथा क अनक भागा स तो यही मालूम होता है कि उग्रसेन भी उस समय द्वारका म ही रहत थे।

थी। राजमती को देखने वाले यही कहते थे कि इसको जैसी ऋद्धि प्राप्त है, वैसी ऋद्धि अत्यधिक पुण्य–सम्पदा के बिना कदापि नही मिल सकती। यही राजमती प्रस्तुत कथा की नायिका है।

राजमती विवाह योग्य हुई। उसके सब अग–प्रत्यग यौवन के आगमन से विकसित होने लगे। उसका रूप–लावण्य कमलपुष्प के समान खिलने लगा। राजमती के माता–पिता राजमती के अनुरूप वर की खोज मे रहने लगे, लेकिन अनुपम सुन्दरी राजमती के योग्य वर उनकी दृष्टि मे न आया। राजमती के योग्य वर यदि उन्हे दिखता था तो केवल भगवान अरिष्टनेमि ही। जिस प्रकार समकालीन कन्याओ मे राजमती अप्रतिम सुन्दरी थी, उसी प्रकार भगवान अरिष्टनेमि भी अप्रितम सुन्दर थे। भगवान तीर्थंकरो की शारीरिक सुन्दरता के विषय मे तो आचार्य मानतुग का यह कथन बता देना ही पर्याप्त है कि जिन पुद्गलो से भगवान का शरीर बना था वे ससार मे सबसे उत्कृष्ट श्रेणी के थे और पुद्गल उतने ही थे। भगवान अरिष्टनेमि का बल भी अतुलनीय था। ससार मे और किसी का बल ऐसा न था कि जो भगवान अरिष्टनेमि के बल की तुलना मे ठहर सके। वैभव की दृष्टि से भी भगवान अरिष्टनेमि तीन खण्ड पृथ्वी के स्वामी कृष्ण के भाई थे और परिवार भी बहुत बढा हुआ था। इस प्रकार राजमती के योग्य वर भगवान अरिष्टनेमि के सिवा और कोई न दिखता था। राजमती के हृदय मे भी भगवान अरिष्टनेमि के प्रति अनुराग था। राजमती मे भगवान अरिष्टनेमि के प्रति अनुराग होने का मुख्य कारण इन दोनो के पूर्वभव का सस्कार था। इसके सिवा समय–समय पर भगवान अरिष्टनेमि की प्रशसा सुनने आदि से भी राजमती मे भगवान अरिष्टनेमि के प्रति अनुराग बढता गया। लेकिन यह अनुराग अप्रकट था। भगवान अरिष्टनेमि के प्रेम का अकुर राजमती के हृदय के एक कोने मे दबा पडा हुआ था।

यद्यपि राजमती के माता–पिता राजमती के लिए भगवान् अरिष्टनेमि को सर्वोत्कृष्ट वर मानते थे और इन दोनो का विवाह–सम्बन्ध जुडने मे और किसी प्रकार की बाधा भी न थी परन्तु भगवान अरिष्टनेमि विवाह करना स्वीकार नही करते हैं यह जानकर वे इस विषय मे किसी प्रकार का प्रयत्न व्यर्थ समझते थे और राजमती के अनुरूप दूसरा कोई वर दिखाई नहीं देता था। यही कारण था कि विवाह के योग्य होने पर भी राजमती अविवाहिता

ही थी। वैसे तो रूप–लावण्य के कारण राजमती प्रसिद्ध हो चुकी थी, अनेक राजा और राजकुमार राजमती का पाणिग्रहण करने को लालायित थे, लेकिन वे स्वय को राजमती के योग्य नहीं समझते थे। किसी को यह विश्वास ही न था कि हम राजमती के योग्य मान लिए जावेगे और राजमती के लिए हमारा विवाह–प्रस्ताव स्वीकार लिया जावेगा। इस कारण किसी भी राजा या राजकुमार का यह साहस नही होता था कि वह राजमती की याचना करे।

इधर तो राजमती के माता–पिता इस बात के लिए चिन्तित थे कि भगवान अरिष्टनेमि के सिवा राजमती के योग्य वर दिखाई नहीं देता और भगवान अरिष्टनेमि विवाह करना स्वीकार नहीं करते अत राजमती का विवाह किसके साथ किया जावे। क्या राजमती कुवारी ही रहेगी या उसका विवाह किसी अनुरूप वर के साथ करना होगा। राजमती के माता–पिता को इस प्रकार राजमती के विवाह की चिन्ता थी और उधर भगवान अरिष्टनेमि के माता–पिता को यह विचार हो रहा था कि हमारे पुत्र अरिष्टनेमि पूर्ण युवक हो गये हैं, फिर भी उन्होने अब तक विवाह करने की स्वीकृति नहीं दी। उनका विवाहोत्सव देखने की हमारी अभिलाषा अब तक अपूर्ण ही है। सन्तान की स्वीकृति के बिना, उसकी इच्छा के प्रतिकूल उसका विवाह करने की चेष्टा करना अन्याय हे और अरिष्टनेमि इस विषयक बात–चीत को सदा ही टाल दिया करते हें। ऐसी दशा मे, हमारी अभिलाषा पूरी हो तो कैसे?

भगवान अरिष्टनेमि के माता–पिता एक दिन पुत्र का विवाहोत्सव देखने की अभिलाषा से प्रेरित होकर भगवान से विवाह की स्वीकृति देने का अत्यधिक अनुरोध करने लगे। वे भगवान से कहने लगे– वत्स आप अव वालक नहीं हें किन्तु युवक हें। इस श्रेष्ठ कुल मे जन्म लेने पर भी आपका अव तक अविवाहित रहना ठीक नहीं है। आपके अविवाहित रहने से लोग यदुकुल पर या आपके व्यक्तित्व के विषय मे न जाने क्या–क्या कहते होगे। अविवाहित युवक अविश्वस्त माना जाता है। स्त्री–रहित युवक पर अनेक प्रकार के सन्देह होना स्वाभाविक हे। इसके सिवा आपका विवाहोत्सव देखने की हमारी प्रवल अभिलाषा भी हे। हम आपके द्वारा अनेक सुखो का स्वप्न देख रहे हैं जिनकी सफलता का आधार आपका विवाह ही हे। अत हम आपसे आग्रह करते हें कि आप विवाह करना स्वीकार करे जिससे निर्मल यदुकुल पर किसी प्रकार का अपवाद भी न आवे आपका विवाहोत्सव

देखकर हमारे नेत्र भी तृप्त हो, हमे अपना भविष्य सुखमय दिखाई दे, हम पौत्रादि का आनन्द ले सके और स्वजनो को भी प्रसन्नता हो।

माता–पिता की बात सुनकर भगवान सहज रीति से मुस्कराये और माता–पिता से कहने लगे– श्रद्धेय माता–पिता! आप मुझसे विवाह करने का इतना अधिक अनुरोध व्यर्थ ही करते हैं। विवाह न करने, ब्रह्मचर्य पालन करने से यदुकुल पर किसी पकार का लाछन लगे, यह कैसे सम्भव है? इसी प्रकार अविवाहित परन्तु ब्रह्मचारी पर अविश्वास करने का भी कोई कारण नही है। अविश्वास तो अब होना चाहिये, तब वह विवाह तो न करे, परन्तु दुराचारी हो। कदाचित् दुराचार की कोई भी बात दृष्टि मे न आने पर भी कोई व्यक्ति किसी ब्रह्मचारी का विश्वास नही करता है तो इसमे ब्रह्मचर्य पालने वाले की क्या हानि है? कोई अविश्वास करता है तो करे! अविश्वास के भय से ब्रह्मचर्य त्याग कर विवाह करना तो कदापि उचित नही हो सकता। रही आपकी और स्वजनो की पसन्नता की बात लेकिन उनको व आपको विवाहोत्सव देखकर ही पसन्नता हो सकती है ब्रह्मचर्य देखकर प्रसन्नता नही हो सकती! यदि आप लोगो को ब्रह्मचर्य देखकर पसन्नता न हो विवाहोत्सव देखकर ही प्रसन्नता हो तो इसका अर्थ तो यह हुआ कि ब्रह्मचर्य बुरा और विवाह अच्छा है। लेकिन मैं इस विचार को ठीक नही समझता। मेरी दृष्टि मे तो ब्रह्मचर्यपूर्ण जीवन ही सर्वोत्तम है। जब ब्रह्मचर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करने की शक्ति न हो उस दशा मे विवाह करना दूसरी बात है, लेकिन इस शक्ति के होते हुए भी केवल उक्त कारणो से विवाह करना, यह कदापि उचित नही हो सकता। मैं अपने मे पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करने की शक्ति समझता हू, इसलिए विवाह करना आवश्यक नही समझता। जब मै अपने मे ऐसी शक्ति न समझूगा तब मेरे लिए विवाह करने के सिवा कोई मार्ग न रहेगा लेकिन इस समय मैं अपने लिए विवाह करने का अवसर नही समझता। इसलिए आपसे मैं प्रार्थना करता हू कि आप मुझे ब्रह्मचर्य पालने के लिए प्रोत्साहित करते रहिये विवाह करने का अनुरोध मत करिये।

भगवान का उत्तर सुनकर उनके माता–पिता फिर कहने लगे– प्रिय पुत्र जब आप गर्भ मे थे उस समय के चौदह महास्वप्न और आपका जन्म–कल्याण–महोत्सव देखकर ही हम यह जान चुके थे कि आप चरमशरीरी तीर्थंकर है आपके सहारे ससार के असख्य जीव जन्म–मरण से छुटकारा दिलाने वाले धर्म के मार्ग पर आरूढ होगे इसलिए आप मे ब्रह्मचर्य पालने

की क्षमता हो इसमे किसी प्रकार का सन्देह नही है, न हम ब्रह्मचर्यपूर्ण जीवन को अनुचित ही समझते हैं, परन्तु आपसे पूर्व जितने तीर्थंकर हुए हैं उन्होने भी तो आपकी तरह ब्रह्मचर्य पालन की क्षमता होते हुए भी विवाह किया था और सासारिक भोगपभोग भोगे थे। फिर आप विवाह करे, इसमे क्या बुराई हो सकती है? कदाचित् आपकी दृष्टि मे विवाह करना अनावश्यक हो तब भी आपको यह कार्य करना उचित है जिससे हम लोगो को प्रसन्नता हो।

स्वाभाविक प्रसन्नता के साथ भगवान अरिष्टनेमि माता–पिता की वात सुन रहे थे और सोच रहे थे कि मेरे उत्तर–प्रत्युत्तर से माता–पिता को कदापि सन्तोष नही हो सकता। इनकी दृष्टि मे ससार मे वे ही माता–पिता धन्य हैं जिनकी सन्तान का विवाह हो चुका हो उसी पुत्र का जीवन सार्थक है जो विवाह–वन्धन मे वध कर पूर्ण ब्रह्मचर्य के उत्तम ध्येय को ठुकरा चुका हो। इस समय ससार के प्राय सभी मनुष्यो के विचार ऐसे ही हैं, इसलिए इनमे भी यह विचार होना स्वाभाविक है। लेकिन मुझे इनके विचारो के प्रवाह मे वह जाना ठीक नही, न रूखा उत्तर देकर इन्हे दु खित करना ही उचित है। किन्तु क्रियात्मक रूप से इनके और इनके साथ ही ससार के सब लोगो के ऐसे विचार वदल कर यह वता देना चाहिए कि विवाह करके ससार मे पुन–पुन जन्म–मरण करने की अपेक्षा ब्रह्मचर्यपूर्ण जीवन बिता कर तथा सब जीवा पर दया करते हुए (प्राणीमात्र को आत्मवत् समझते हुए) जन्म–मरण के चक्कर का मिटाना ही श्रेयस्कर हे। ससार के लोग अज्ञानवश होकर श्रेय को ता भूल जाते हे ओर प्रेय मे पड जाते हैं। उन्हे यह मालूम ही नहीं है कि श्रेय को त्याग कर प्रेय को लेने से हमारी कितनी महान् हानि है ओर प्रेय पर न लुभा कर श्रेय को अपनाने से कितना महान् लाभ है। धन, स्त्री–पुत्रादि प्रेय मे पडकर ससार के लोग श्रेय– मोक्ष को भूल रहे हैं। श्रेय को भूलने से ही वेचारे प्राणिया का वध करके लोग उनका मास भक्षण करते हे मदिरापान द्वारा मनुष्यत्व स निकलकर पशुत्व मे पडते हें और वेश्यागमनादि भयकर पाप म प्रवृत्त होत हें। यदि में ससार के लोगो को प्रेय त्याग कर श्रेय अपनाने का आदर्श रहित उपदश दूगा तो वह उपदेश पत्थर पर वरसे हुए जल की तरह निरर्थक ही होगा। इसलिए म ससार के लोगो क सामने प्रेय को त्याग कर श्रेय का अपनाने का अपूर्व आदर्श रखूगा ओर तभी मेरा उपदेश प्रभावोत्पादक हा सकगा।

माता–पिता की वात सुनत हुए भगवान न अपने हृदय मे इस प्रकार का सकल्प किया। माता–पिता की वात समाप्त हाने पर भगवान न उनसे

अध्याय दूसरा
कृष्ण को भय

सासारिक मनुष्य अपने स्वार्थ पर आघात होना कदापि नही सह सकता। उसके समीप और सब अपराध तो क्षम्य हो सकते हैं, लेकिन उसके स्वार्थ मे होने वाली बाधा उसे असह्य हो उठती है। इसके द्वारा मेरे स्वार्थ का नाश होगा। मेरे राजपाट यश, वैभव कीर्ति, बडाई, मान–सम्मान आदि मे हानि पहुचेगी– ऐसी आशका होते ही सासारिक मनुष्य शकास्पद व्यक्ति को दूसरी ही दृष्टि से देखने लगता है। चाहे वह माताजात भाई हो घनिष्ठतम मित्र हो या ओर कोई निकटस्नेही हो, उसकी ओर से स्वार्थ–हानि की आशका होने पर उसके प्रति हृदय मे निर्मल प्रेम नही रहता। निर्मल प्रेम का स्थान द्वेष कपट आदि दुर्गुण छीन लेते हैं और हृदय मे यह भावना उत्पन्न हो जाती हे कि इसको किसी प्रकार ऐसा अयोग्य बना दिया जावे कि जिससे इसके द्वारा मेरे स्वार्थ को धक्का न लग सके। इस भावना से प्रेरित होकर वह शकित व्यक्ति सदिग्ध व्यक्ति के विरुद्ध अपनी पाशविक शक्ति अमानुषिक नीति ओर राक्षसी अन्याय का प्रयोग भी कर डालता है। कभी–कभी तो ऐसा करने का कारण केवल भ्रम भी होता है। भ्रमवश किसी के प्रति यह शका हो जाती है कि इस व्यक्ति के द्वारा मेरी अमुक हानि होगी बस इस भ्रमवश हुई शका के कारण ही वह सशक्त व्यक्ति सदिग्ध व्यक्ति को अपना शत्रु मान लेता हे और उसके प्रति शत्रुतापूर्ण व्यवहार करने लगता है।

जिसके प्रति स्वार्थ–हानि का सन्देह हो जाता है वह चाहे केसा ही प्रमी क्या न हो मनुष्य उसके विरुद्ध व्यवहार करने लगता हे। इसके अनेक उदाहरण हें। यह वात प्रसिद्ध हे कि राजा भोज बालक था ओर उसका काका मुज धारा नगरी का राजा था। मुज के हृदय मे भोज की बुद्धि–चातुरी देखकर यह सन्देह हा गया था कि भाज मेरे स राज्य छीन लेगा। यद्यपि

बालक भोज के हृदय मे उस समय राज्य छीनने की भावना भी नही हो सकती थी, परन्तु मुज को तो सन्देह हो ही गया। इस सन्देह के कारण ही मेरा हित नष्ट न हो मेरे स्वार्थ पर आघात न पहुचे, इस भावना से उसने भोज को मार डालने की आज्ञा दे दी थी। यह बात दूसरी है कि मत्री की बुद्धिमानी से भोज जीवित रह गया और फिर मुज को भी अपनी दुर्भावना पर पश्चात्ताप करना पडा, परन्तु स्वार्थ–रक्षा की भावना का वेग होने पर उसने अपने प्रिय और बालक भ्रातृपुत्र की हत्या करने का निश्चय कर ही डाला था। इसी प्रकार के और भी अनेक उदाहरण है। वर्तमान समय मे भी ऐसे अनेक राजबन्दी मिलेगे जिनको सरकार ने केवल इस भ्रमपूर्ण आशका से कैद कर रखा है कि ये हमारा राज्य छीनने की इच्छा रखते हैं या इनके द्वारा हमारे स्वार्थ पर आघात पहुच सकता है।

भगवान अरिष्टनेमि के विषय मे भी ऐसा ही भ्रम हुआ। यद्यपि भगवान अरिष्टनेमि श्रीकृष्ण के भाई थे उन्हे राजपाट की चाह नही थी और यदि चाह होती भी तो वे अपने अनन्त बल द्वारा सारे भौतिक ससार के सम्राट् बन सकते थे, फिर भी श्रीकृष्ण के हृदय मे उनके प्रति यह सन्देह हो गया कि ये किसी समय मुझसे राज्य न छीन ले।

श्रीकृष्ण तीन खण्ड पृथ्वी के स्वामी थे। तीन खण्ड पृथ्वी के स्वामी के पास जैसा विशाल धन–वैभव हो सकता है और जैसी विशाल युद्ध–सामग्री रह सकती है श्रीकृष्ण के पास वह सब थी। युद्ध–सामग्री मे से शस्त्रास्त्र के लिए उनके यहा एक विशाल शस्त्रागार बना हुआ था। उस शस्त्रागार मे अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्र प्रस्तुत थे। श्रीकृष्ण को कौमोदकी गदा, उनका शार्ंग धनुष सुदर्शन चक्र, पाचजन्य शख और खड्ग भी उसी शस्त्रागार मे रखे रहते थे। अनेक वीर उस शस्त्रागार की सावधानी से रक्षा किया करते थे। एक दिन मित्रो के साथ भगवान अरिष्टनेमि सहज रीति से घूमते हुए श्रीकृष्ण के शस्त्रागार मे आ गये। महाराज श्रीकृष्ण के प्रिय अनुज और समुद्रविजय के प्रिय पुत्र को आते देखकर शस्त्रा–रक्षक ने उनका उचित अभिवादनपूर्वक स्वागत किया तथा प्रार्थना की कि भगवान् आज अनायास ही आपका यहा पधारना किस उद्देश्य से हुआ? क्या मृत्यु किसी शत्रु को यहा खीच लाई है जिसे काल–कवलित कराने के लिए आप शस्त्रास्त्र लेने पधारे हैं? अथवा क्या किसी देश पर चढाई करने को शस्त्रास्त्र लेने के लिए आपका शुभागमन हुआ है? मै आपकी आज्ञानुसार सेवा करने के लिए उपस्थित हू आप आज्ञा करिये।

शस्त्रागार–रक्षक की प्रार्थना सुनकर भगवान ने मुस्कराते हुए कहा– मैं शस्त्रास्त्र लेने के लिए नही आया हू, किन्तु क्रीडा करता हुआ यहा आ गया हू और अव शस्त्रागार मे सुरक्षित शस्त्रास्त्र देखने की इच्छा रखता हू।

शस्त्रागार रक्षक– वहुत ही प्रसन्नता की बात है, जो आज शस्त्रागार को यह गोरव प्राप्त होगा। पधारिये भगवन्, शस्त्रागार मे पधारिये।

शस्त्रागार–रक्षक के साथ भगवान अरिष्टनेमि शस्त्रागार मे पधारे। शस्त्रागार–रक्षक वहा रखे हुए शस्त्रास्त्र का नाम उनकी विशेपता तथा प्रयोग–विधि आदि वताता जाता था और भगवान् उन सबको देखते–सुनते जाते थे। भगवान् को साथ लिए हुए शस्त्रागार–रक्षक वहा गया, जहा श्रीकृष्ण के दिव्य अस्त्र–शस्त्र रखे हुए थे। शस्त्रागार–रक्षक ने भगवान् से कहा– प्रभो ये अस्त्र–शस्त्र स्वय महाराज श्रीकृष्ण के हैं। यह सूर्य के समान तजस्वी सुदर्शन चक्र युद्ध–समय मे महाराज श्रीकृष्ण के हाथ मे इस प्रकार सुशोभित होता हे जैसे श्यामघटा के साथ विद्युत्। यह जिस व्यक्ति के लिए छोडा जाता है फिर उसका जीवन कदापि नही वच सकता। यह चक्र लक्ष्य वनाये गये शत्रु के कण्ठ का रुधिर पीकर ही रहता है। इस चक्र को जव यदुकुल–कमल–दिवाकर अपनी अगुली पर रखकर घुमाते हैं तब अधिकाश शत्रु–सना तो इसके तेज से ही विह्वल होकर भाग जाती है। यह कोमोदकी गदा हे। इस गदा का प्रहार सहने मे पर्वत भी असमर्थ है। यदि इसके द्वारा पर्वत पर आघात किया जावे तो पर्वत भी चूर–चूर होकर रजकण मे परिणत हो जावेगा मनुप्य की तो शक्ति ही क्या हे जो इसका आघात सहन कर सके। भगवान् इस धनुष का नाम शार्ग हे। इसे भी महाराज श्रीकृष्ण ही धारण करते हॅ। इस धनुष को श्रीकृष्ण के सिवा ओर कोई नहीं चढा सकता। इसकी टकार की ध्वनि प्रचण्ड मेघगर्जन के समान होती हे। शत्रु–सेना का वहुत भाग तो इस धनुष की घोर ध्वनि से ही भयभीत होकर भाग जाता हे। इससे निकला हुआ प्रत्यक वाण अचूक होता है ओर पृथ्वी को शत्रुविहीन करक ही रहता ह। प्रभो यह महाराजा श्रीकृष्ण का प्रसिद्ध पाचजन्य शख ह। इस शख को वजाने की शक्ति केवल महाराज श्रीकृष्ण म ही हे ओर किसी के द्वारा इसका वजाना तो दूर रहा यह उठ भी नहीं सकता। जिस समय महाराज श्रीकृष्ण इस शख से ध्वनि निकालत ह उस समय युद्धक्षत्र म तहलका मच जाता ह आर शत्रु–सना भयभीत हाकर भागन लगती हे। प्रभो यह विशाल खडग महाराज श्रीकृष्ण का ह। इस खडग क सम्मुख

वज्र–शिला भी तूल ही है। यह जिस पर पडता है, उसके टुकडे करके ही छोडता है। महाराज श्रीकृष्ण विशेषत इन्ही आयुधो को धारण करते है।

भगवान अरिष्टनेमि स्वाभाविक पसन्नतापूर्वक शस्त्रागार–रक्षक द्वारा की गई श्रीकृष्ण के आयुधो की पशसा सुन रहे थे। शस्त्रागार रक्षक द्वारा श्री कृष्ण के आयुधो का वर्णन समाप्त होने पर भगवान् शार्ग धनुष उठाने के लिए झुके लेकिन उसी समय शस्त्रागार–रक्षक ने कहा– भगवान् ठहरिये! आप श्रीकृष्ण के किसी आयुध को उठाने का विचार भी मत करिये। शस्त्रागार–रक्षक की बात सुनकर भगवान् ठिठक गये। उन्होने अपने हाथ को शार्ग धनुष्य उठाने से रोक लिया और मुस्कराते हुए शस्त्रागार–रक्षक से पूछा कि ऐसा क्यो?

शस्त्रागार रक्षक– भगवन्! इन आयुधो को उठाने की श्रीकृष्ण के सिवा और किसी मे शक्ति नही है इसलिए इन्हे उठाने की चेष्टा करने वाला, इनके द्वारा अपमानित हो जाता है। कदाचित् किसी के उठाने की शक्ति हुई भी तो श्रीकृष्ण के सिवा और किसी के उठाने पर भयकर अनिष्ट की सभावना है! इसलिए मैं आपसे यह प्रार्थना करता हू कि आप इन्हे उठाने की चेष्टा मत करिये।

भगवान्– तुमने मुझसे यह कहकर अपना कर्तव्य पूरा कर दिया अब जो दुष्परिणाम होगा उसका दायित्व तुम पर नही किन्तु मुझ पर ही होगा।

यह कहकर भगवान् ने झुककर बिना श्रम ही शार्ग धनुष को उठा लिया। उन्होने उसे कमलनाल के समान सहज ही झुकाकर चढा दिया और टकारा। शार्ग धनुष की घोर टकार–ध्वनि से द्वारिका नगरी कम्पित हो उठी। समुद्र का पानी भी खलबलाने लगा। जलचर घबराकर भागने लगे। धनुष टकार का भयावना शब्द सुनकर द्वारका निवासी भयभीत हो गये। प्रजा के हृदय मे इस बात की आशका उत्पन्न हो उठी कि आज श्रीकृष्ण के किसी शत्रु द्वारा हम पर कोई आपत्ति तो नही आने वाली है!

भगवान को इस प्रकार बिना श्रम के ही धनुष उठाते चढाते और टकारते देखकर आयुधागार–रक्षक दग रह गया। उसे बहुत ही आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा कि मैने ऐसा हस्तकौशल तो श्रीकृष्ण मे भी नही देखा! इनका बल तो उनसे भी बढकर है! मै इनको धनुष उठाने से ही रोकता था परन्तु जिनमे ऐसी शक्ति है वे मेरी बात मानकर कब रुक सकते थे! जान पडता है कि श्रीकृष्ण ने तो केवल तीन खण्ड पृथ्वी पर ही अपनी विजयपताका फहराई है लेकिन ये समस्त पृथ्वी पर अपना आधिपत्य स्थापित करेगे।

आयुधागार–रक्षक इस प्रकार विचार ही रहा था, इतने मे ही भगवान ने धनुष को उतार कर यथास्थान रख दिया और पाचजन्य शख उठाकर वजाने लगे। भगवान् द्वारा फूके जाने पर पाचजन्य शख से जो ध्वनि निकली, उसने द्वारकानिवासी लोगो का भय और बढा दिया। अनिष्ट की सम्भावना ने सबके हृदय मे खलबली उत्पन्न कर दी। आयुधागार–रक्षक को भी भगवान् का शख फूकना देखकर बहुत विस्मय हुआ। उसके हृदय म भी भगवान् की शक्ति और उनका कौशल जानकर अनेक प्रकार के विचार होने लगे।

भली प्रकार शखनाद करके भगवान ने पाचजन्य शख को भी यथास्थान रख दिया और सुदर्शन चक्र उठाया। वे उसे अगुली पर धारण करके घुमाने लगे। विद्युत् की तरह चमकने वाला सुदर्शन चक्र भगवान् की अगुली के सहारे कुम्हार के चाक की नाईं वेग से घूम रहा था और अपनी चमक से भगवान् के सखाओ एव शस्त्रागार–रक्षक आदि की आखो को चकाचौंध कर रहा था। भगवान को इस प्रकार कुशलतापूर्वक चक्र घुमाते देखकर शस्त्रागार–रक्षक अधिक विस्मित हुआ। वह अपने मन मे कहता था कि चक्र घुमाने की ऐसी दक्षता तो स्वय महाराज श्रीकृष्ण मे भी नही है। ये तो उनसे भी बढकर दक्ष ह। मुझे तो ससार मे ऐसा कोई नही जान पडता जो इनकी शक्ति और निपुणता के सम्मुख युद्ध मे स्थिर रह सके।

भगवान् ने सुदर्शन चक्र को भी यथास्थान रख कोमोदकी गदा उठाकर उसे भी घुमाया। श्रीकृष्ण के चारो आयुधों का प्रयोग करने के पश्चात् भगवान् ने पाचवे आयधु खड्ग को भी उठाया और पूर्व के आयुधो की तरह उसे भी घुमाने लगे। भगवान् के सखा–एव शस्त्रागार–रक्षक पहले न देखे हुए भगवान् के बल–कौशल को चुपचाप खडे देख रहे थे और आयुधागार–रक्षक मन ही मन अपनी उन बातो के लिए पश्चात्ताप कर रहा था, जो उसने आयु उठाने के लिए भगवान् से कही थी।

भगवान द्वारा किये शखनाद और धनुष की टकार को राजसभा मे बैठे हुए श्रीकृष्ण आदि यादवो ने भी सुना सब लोग आश्चर्य और भय के साथ विचारने लगे कि यह शखनाद किसने किया और किसने धनुष टकार की है। अनक आशकाआ के कारण श्रीकृष्ण का हृदय अस्थिर हो उठा। वे सोचने लग कि कही काई शत्रु ता चढाई करके नही आया हे जो मुझको शखनाद तथा धनुप टकार द्वारा चुनाती दे रहा हो। इस प्रकार के विचार प्रवाह ने उनके हृदय म उथल–पुथल मचा दी। वे तत्क्षण सभा–भवन से उठकर बलदेव आदि प्रमुख यादवा सहित अपने शस्त्रास्त्र लेने के लिए शस्त्रागार म आये।

शस्त्रागार मे पहुचकर उन्होने भगवान् अरिष्टनेमि को खड्ग घुमाते देखा। उस दिन से पहले श्रीकृष्ण ने भगवान् अरिष्टनेमि को शस्त्रागार मे इस प्रकार अस्त्रप्रयोग करते नही देखा था। आज उन्हे शस्त्रागार मे और स्वय (कृष्ण) के खडग को घुमाते देखकर श्रीकृष्ण को बहुत आश्चर्य हुआ। श्रीकृष्ण को आया जान कर भगवान् ने खड्ग घुमाना बन्द कर दिया। खड्ग को यथास्थान रखकर उन्होने बडे भ्राता महाराज श्रीकृष्ण का उचित आदर किया। श्रीकृष्ण ने भी उनसे कुशल पूछा और फिर कहने लगे– भैया अरिष्टनेमि क्या अभी आप ही ने धनुष टकारा था और शखनाद किया था?

भगवान्– हा मैंने ही शख को बजाकर और धनुष को टकार कर देखा था।

कृष्ण– अनायास धनुष टकार और शखनाद को सुनकर हमारे हृदय मे शत्रु की आशका हो गई थी लेकिन वह आशका निर्मूल थी, यह जानकर प्रसन्नता हुई। साथ ही इस विचार से और हर्ष हुआ कि मेरे आयुधो का प्रयोग आप भी कर सकते हैं। जरा एक बार मेरे आयुधो का प्रयोग फिर से करिये, जिससे हम लोग भी आपका कौशल देख सके।

श्रीकृष्ण की बात सुनकर भगवान् कुछ मुस्कराये। उन्होने सरलता तथा नम्रतापूर्वक पाचजन्य शख शार्ग धनुष, सुदर्शनचक्र, कौमोदकी गदा और खडग का उपयोग पूर्व की भाति फिर कर दिखाया। भगवान् अरिष्टनेमि का बल–कौशल और उनकी शस्त्रास्त्र प्रयोगविधि देखकर सब लोग साश्चर्य प्रसन्न हुए लेकिन श्रीकृष्ण मे हृदय मे एक चिन्ता भी उत्पन्न हो गई। श्रीकृष्ण समस्त यादवो मे स्वय को ही अधिक बलवान, पराक्रमी और शस्त्रास्त्र–कला–कुशल मानते थे तथा दूसरे सब लोगो की दृष्टि मे भी ऐसा ही था परन्तु आज श्रीकृष्ण के साथ ही उनके साथी प्रमुख यादवो का भी यह विचार बदल गया। सबको यह विश्वास हो गया कि भगवान् अरिष्टनेमि ही सब यादवो मे अधिक बलवान अधिक पराक्रमी और शस्त्रास्त्र–कला–कुशल हैं। इस विचार–परिवर्तन ने श्रीकृष्ण के हृदय मे एक गम्भीर चिन्ता पैदा कर दी। वे सोचने लगे कि वैसे तो भाई अरिष्टनेमि बहुत नम्र सरल और विनयवान है लेकिन मनुष्य के चित्त की दशा सदा एकसी नही रहती। यदि किसी समय इनमे राज्य–लोभ का विकार आया तो इन्हे मेरा राज्य छीनने मे किचित भी विलम्ब या श्रम न होगा। साथ ही अब तक यादवो पर मेरे बल का प्रभाव है लेकिन आज से मेरा वह प्रभाव भी नहीं रहेगा। यादव लोग भाई अरिष्टनेमि को मुझसे अधिक और यदि अधिक नही तो मेरी समानता का

वलवान तो मानने लगेगे ही। यदि किसी समय भाई अरिष्टनेमि मेरे विद्रोही बन खडे हुए तो अनेक यादव लोग भी इनके साथ हो जावेगे। इसलिए इनका बल किसी दिशा मे लगा देना ही उचित है जिससे मेरे लिए भय भी न रहे ओर इनके बल से कुछ लाभ भी हो।

इस प्रकार विचार कर श्रीकृष्ण ने राजनीति के अनुसार कृत्रिम प्रसन्नता दिखाते हुए भगवान् अरिष्टनेमि से कहा– भैया अरिष्टनेमि आप तो शस्त्रास्त्र प्रयोग मे पूर्ण निष्णात हे! आपकी समानता तो मैं भी नहीं कर सकता! अपने भाई को इस प्रकार शस्त्रास्त्र–कुशल और बल–सम्पन्न जानकर मुझे आज असीम प्रसन्नता हुई है। मैं अब तक नहीं जानता था कि आप ऐसे हैं। यदि मुझे आपके बल और शस्त्र–कौशल का पता होता तो मैं आपकी सहायता से जम्बूद्वीप के शेप खण्ड भी जीतकर अब तक कभी के अपने साम्राज्य मे मिला लेता तथा वहा यदुवशियो की विजयपताका फहरा देता! जो हुआ सो हुआ लेकिन अब आप मेरी सेना ले जाइये और विजय से वचे हुए जम्बूद्वीप के शेष खण्डो पर विजय प्राप्त करिये?

भगवान्– ऐसा करने से क्या होगा?

श्रीकृष्ण– साम्राज्य की वृद्धि।

भगवान्– साम्राज्य का इतना अधिक विस्तार करके आप क्या करेगे? आप जिस वडे साम्राज्य के स्वामी हैं क्या यह आपके लिए अपर्याप्त है!

श्रीकृष्ण– राजाओ को इस ओर से तो सन्तोष होना ही न चाहिए किन्तु उन्हे साम्राज्यवृद्धि का उपाय निरन्तर करते ही रहना चाहिए। ससार म उसी का जीवन सफल हे जो अपनी भुजाओ द्वारा राज्य यश ओर वैभव प्राप्त करता हे।

भगवान्– लेकिन ऐसा करने में कितने निरपराध प्राणियों की हिंसा होगी?

श्रीकृष्ण– इस वात का विचार रखने पर साम्राज्य की वृद्धि तो दूर रही अपना राज्य भी खो देना पडेगा। राज्य के लिए हिसा–अहिसा का विचार हानिप्रद है।

भगवान– में आपके इस कथन स कदापि सहमत नही हो सकता। अपनी राज्यलिप्सा पूर्ण करने के लिए दूसरो को कप्ट मे डालना दूसरो की स्वतत्रता का अपहरण करना में सर्वथा अनुचित अन्याय ओर अधर्म समझता हू। इसलिए में आपकी इस आज्ञा का पालन करने म असमर्थ हू। इसके लिए आप मुझ क्षमा करे।

श्रीकृष्ण– फिर आप अपने वल का क्या उपयोग करगे?

भगवान– प्राप्त बल दूसरो को कष्ट देने के लिए नही है, किन्तु इसका उपयोग दूसरो की सहायता करने, दूसरो की रक्षा करने और दूसरो को सुख पहुचाने मे ही करना चाहिए।

श्रीकृष्ण– लेकिन केवल इसी नीति का अवलम्बन लेने पर राज्य कैसे चल सकता है?

भगवान्– यदि इस नीति से राज्य नही चल सकता तो दूसरो को दु ख पहुचाने से भी राज्य नही चल सकता और कदाचित् दूसरो को दु ख पहुचाने से ही राज्य चल सकता हो ऐसा किए बिना न चल सकता हो तो ऐसे राज्य को त्याग देना ही श्रेयस्कर है। ऐसा राज्य कदापि कल्याणकारी नही हो सकता जिसके कारण दूसरो पर अन्याय–अत्याचार करना पडे।

भगवान का यह उत्तर सुनकर श्रीकृष्ण को अपनी नीति की असफलता से बडी निराशा हुई। वे भगवान से अधिक कुछ न कह सके। अन्त मे उन्हे यही कहना पडा कि यदि आपकी इच्छा दिग्विजय के लिए जाने की नही है तो मैं आपको बलात् नहीं भेजना चाहता। यह कहकर यादवों सहित श्रीकृष्ण अपने–अपने महल को गये और भगवान् अरिष्टनेमि अपने महल को गये।

इस घटना को कुछ दिन बीत गये। एक दिन महाराज श्रीकृष्ण उस बाग मे गये जहा व्यायामादि करने के लिए अखाडा बना हुआ था ओर प्रमुख यादवकुमार परस्पर मल्लयुद्ध करके अपने–अपने बल और दाव–पेच का परिचय दे रहे थे। यादवकुमारो का मल्लयुद्ध और दाव–पेच देखने के लिए वहा अनेक प्रमुख यादव भी उपस्थित थे और बहुत–सी रानिया एव यादवो की स्त्रिया भी। भगवान् अरिष्टनेमि भी वहा उपस्थित थे। श्रीकृष्ण ने इस अवसर को भगवान अरिष्टनेमि का बल जानने के लिए उपयुक्त समझा। उन्होने सोचा कि यदि अखाडे मे इनकी अपेक्षा मेरा बल अधिक ठहरा तो एक तो इनका उत्साह भी न बढने पावेगा और दूसरे इनके द्वारा किये गये मेरे आयुधो के प्रयोग का यादवो पर जो प्रभाव पडा है उससे यादव लोग इन्हे मेरे समान या मुझे अधिक बलवान मानने लगे है इनका वह प्रभाव भी नष्ट हो जावेगा।

इस प्रकार विचार कर श्रीकृष्ण ने भगवान अरिष्टनेमि से कहा– भैया अरिष्टनेमि आओ हम–तुम भी अखाडे मे चल कर दाव खेले और एक–दूसरे का बल देखे जिसमे अपने को मालूम रहे कि मुझमे ओर तुममे से अधिक बलवान कौन है?

श्रीकृष्ण का यह कथन सुनकर भगवान् अरिष्टनेमि कुछ मुस्कराये। उन्हे श्रीकृष्ण का उद्देश्य जानने मे कुछ भी देर न लगी, फिर भी श्रीकृष्ण के कथन मे उत्तर मे नम्रतापूर्वक कहने लगे– पूज्य भ्राता अपने श्रद्धास्पद के साथ इस प्रकार बल–प्रयोग करना उचित नहीं है। कदाचित् मैं आपसे अधिक बलवान होऊ तब भी आप बडे हैं अत मुझे आपके सामने नम्र और निर्बल होकर ही रहना चाहिए। आपको अधिक बलवान सिद्ध करने के लिए मुझे यह काम न करना चाहिए जिसमे मर्यादा का उल्लघन होता हो।

श्रीकृष्ण– नही, बल–प्रयोग करने मे मर्यादा के उल्लघन का भय नहीं है, न आपका मेरे साथ बल–प्रयोग करना अनुचित ही है क्योकि आप स्वय अपने को अधिक बलवान सिद्ध करने के लिए मेरे साथ बल–प्रयोग नहीं करेगे किन्तु मेरे कहने से बल–प्रयोग करेगे। अपन क्षत्रिय हैं। अपने को एक–दूसरे के बल का पता होना आवश्यक है, जिससे किसी समय भ्रम न हो और आवश्यकता होने पर योग्य कार्य का ध्यान रहे।

भगवान्– यदि आपका यह कथन ठीक हो तो भी बल का पता लगाने के लिए मल्लयुद्ध करना आवश्यक नही है। बल का पता तो मल्लयुद्ध किये विना भी लग सकता है। एक–दूसरे का हाथ झुकाकर भी यह जान सकते हैं कि किसमे अधिक बल है।

श्रीकृष्ण– यह उपाय भी ठीक है। चलो, इस उपाय से ही बलाबल का निर्णय करे।

श्रीकृष्ण ओर भगवान् अरिष्टनेमि अखाडे मे उतरे। श्रीकृष्ण ने अरिष्टनेमि से कहा कि आप अपना हाथ फैलाइये मैं उसे झुकाता हू। भगवान् ने उत्तर दिया– नहीं आप वडे हैं इसलिए पहले आप अपना ही हाथ फैलाइये और मैं उसे झुकाऊ।

श्रीकृष्ण ने अपना हाथ फेलाकर भगवान् से कहा– हा झुकाइये। श्रीकृष्ण का अनुमान था कि अरिष्टनेमि मेरा हाथ न झुका सकेगे परन्तु उनका अनुमान गलत निकला। वामचरण के अगूठे मात्र से मेरु पर्वत को हिलाने वाले भगवान् अरिष्टनेमि के लिए श्रीकृष्ण का हाथ झुकाना क्या कठिन था। भगवान् ने श्रीकृष्ण का हाथ पकडकर बिना किसी श्रम या कठिनाई के इस प्रकार झुका दिया जेसे मत्त गजराज अपनी सूड से पकडकर वास को झुका देता ह। भगवान् का यह पराक्रम देखकर वहा उपस्थित लोग वाह–वाह आर धन्य–धन्य की ध्वनि करने लगे। श्रीकृष्ण को भी भगवान का वल जानकर वडा विस्मय हुआ। उनके हृदय का भय वढ

गया और उन्हे अपने बल की ओर से कुछ निराशा भी हुई। अब वे यह सोचने लगे कि यदि मैं भी अरिष्टनेमि का हाथ झुका सकू और दोनो समान बलवान ठहर जावे, तब भी अच्छा हो। उन्होने भगवान् अरिष्टनेमि से कहा– आपने तो मेरा हाथ झुका दिया, लेकिन अब आप अपना हाथ भी फैलाइये, देखे मैं भी आपका हाथ झुका सकता हू या नही?

भगवान् अरिष्टनेमि ने अपना हाथ फैलाया। श्रीकृष्ण भगवान् का हाथ झुकाने लगे। उन्होने पहले तो अपने एक ही हाथ से भगवान् का हाथ झुकाने की चेष्टा की परन्तु जब उनके एक हाथ से भगवान् का हाथ न झुका तब वे दोनो हाथो से भगवान् का हाथ झुकाने लगे। उन्होने भगवान् का हाथ झुकाने मे अपना सारा बल लगा दिया वे भगवान् के हाथ से ही लग भी गये, फिर भी भगवान् का हाथ न झुका सके। श्रीकृष्ण को भगवान् का वह हाथ ऐसा सुदृढ प्रतीत हुआ जैसे वज्र–वृक्ष की शाखा ही हो। अन्त मे वे थक कर यह कहते हुए एक तरफ जा खडे हुए कि मुझसे आपका हाथ न झुकेगा, आप मेरे से अधिक बलवान है।

श्रीकृष्ण के हृदय मे बडी लज्जा और ग्लानि हो रही थी। उनके हृदय मे भगवान् अरिष्टनेमि की ओर से सन्देह पहले ही हो चुका था लेकिन इस विचार ने उन्हे और व्यथित कर दिया कि मैने अरिष्टनेमि के बल से अपना बल क्यो तोला! तथा मैने अरिष्टनेमि को अपने बल का पता दिया है। ऐसा करके उनका तो साहस बढा दिया है। मैंने यह बडी गलती की है।

इस प्रकार अपने मन मे अनेक विचार करते हुए श्रीकृष्ण अपने महल को गये और भगवान् तथा और सब यादव अपने–अपने स्थान को गये।

तीसरा अध्याय
बिना ही स्वीकृति

दु ख और पाप का मूल परिग्रह ही है। परिग्रह का अर्थ है– सासारिक वस्तु (धन, भूमि मनुष्य पशु आदि) पर ममत्व भाव का होना। ससार की जिस वस्तु पर ममत्व है वही परिग्रह है और जो परिग्रह है वह दु ख और पाप का उत्पादक है।

ससार के लोग परिग्रह को सुख–रूप समझते हैं परन्तु परिग्रह से न तो कभी कोई सुखी हुआ ही है और न कभी कोई सुखी हो ही सकता है। परिग्रह चाहे प्राप्त हो या अप्राप्त हो दोनो ही दशा मे दु ख और पाप का ही कारण हे। दोनो ही दशा मे मानसिक सन्ताप बना रहता है। प्राप्त परिग्रह की रक्षा की चिन्ता सदैव बनी ही रहती हे। किसी भी समय शान्ति नही रहती, न किसी पर विश्वास ही रहता हे। बल्कि विश्वासपात्र समझे जाने वाले पिता पुत्र भाई स्त्री बहन, माता या दूसरे सम्बन्धी की ओर से भी भय तथा सन्देह बना रहता हे ओर इस कारण इनकी हत्या तक कर डाली जाती हे या इनको शक्तिहीन बनाने की चेष्टा की जाती है। प्राप्त परिग्रह की रक्षा के लिए ही कस ने अपने पिता उग्रसेन को ओर ओरगजेब ने अपना पिता शाहजहा को कारागार मे डाल दिया था। इसीलिए दुर्योधन ने अपने भाई पाण्डवो को नष्ट करने का उपाय किया था ओर ओरगजेब ने अपने भाइयो को मार डाला था। इस तरह प्राप्त परिग्रह भी दु ख तथा पाप करने वाला होता हे ओर जो प्राप्त नही हुआ हे उसकी प्राप्ति क लिए भी दु ख सहने पडते हें तथा पाप करना पडता ह। कोणिक ओर चेडा के सग्राम का कारण यही था। महाभारत का युद्ध आर यूराप का महासमर भी इसी वास्ते हुआ था। इस प्रकार जो परिगह प्राप्त नही हुआ हे उसकी प्राप्ति क लिए दु ख एव पाप करना पडता हे। जो

परिग्रह पाप्त होकर नष्ट हो गया है वह भी दु ख और प्रतिहिसादि पाप कराता रहता है और जो परिग्रह प्राप्त है वह रक्षा के लिए दु ख और पाप कराता रहता है। इसीलिए विद्वानो ने कहा है–

अर्थानमार्जने दु ख मर्जिताना च रक्षणे।
आये दु ख व्यये दु ख धिगर्था दु ख सश्रया।।

प्राप्त परिग्रह दम्भ, अभिमान और अनैतिकता का आचरण भी कराता है। ससार म अधिक से अधिक पाप परिग्रह द्वारा ही होते हैं। हिसा झूठ, चोरी, व्याभिचार आदि पाप परिग्रह ही कराता है। परिग्रही चाहे प्रकट मे किसी जीव का वध न करता हो, परन्तु वह अपने आचरण द्वारा दूसरे जीवो को कष्ट मे डालता है। चाहे वह वाणी मे झूठ न बोलता हो, परन्तु व्यवहार मे छल–कपट करता ही है। चाहे वह किसी का घर न फोडता हो, परन्तु दूसरे का स्वत्वापहरण करता ही है। चाहे वह परस्त्री न भोगता हो परन्तु दूसरे के व्यभिचार का कारण बनता है और दूसरे को अनैतिक आचरण करने के लिए विवश करता है। तात्पर्य यह है कि समस्त पाप और दु ख का कारण परिग्रह ही है।

भगवान् अरिष्टनेमि को स्वप्न मे भी राज्य की इच्छा न थी। दिग्विजय के विषय मे दिये गये उनके उत्तर से यह बात बिल्कुल स्पष्ट थी। इसके सिवा यदि उन्हे राज्य की चाह होती तो वे अपने पराक्रम से सारी पृथ्वी का राज्य ले सकते थे। अपने भाता श्रीकृष्ण का राज्य छीनने की आवश्यकता ही क्यो हो! लेकिन श्रीकृष्ण के विचार मे यह बात नही आई इससे उनके हृदय मे भगवान् अरिष्टनेमि की ओर से सन्देह उत्पन्न हो ही गया। परिग्रह के होने पर ऐसा होना स्वाभाविक ही है।

अखाडे से लौटकर श्रीकृष्णजी इस विचार मे पड गये कि भाई अरिष्टनेमि की ओर से निर्भय होने के लिए क्या उपाय किया जावे? जब स्वय कुछ निश्चय न कर सके तब वे अपने बडे भ्राता बलदेवजी के पास गये और उनसे कहने लगे– भाता भाई अरिष्टनेमि मुझसे भी अधिक बलवान् तथा पराक्रमी है। उन्होने मेरा हाथ किस सरलता से झुका दिया और मैं। कितना बल लगाने पर भी उनका हाथ झुकाने मे समर्थन हुआ यह बात तो आपने देखी ही है। साथ ही आपने उनका शस्त्र–कौशल भी देखा है। उनका बल और शस्त्र–कौशल देखकर मेरे हृदय मे यह भय उत्पन्न हो गया हे कि किसी समय वे विद्रोही बनकर मुझे राज्यच्युत न कर दे। यदि उन्होने विद्रोह मचाया तो अपने मे से किसी की भी यह शक्ति नही है कि जो उन्हे पराजित करे।

मैंने उनसे यह भी कहा कि आप मेरी सेना लेकर जाइये और जम्बूद्वीप के बाकी बचे हुए खण्ड विजय करिये। मैंने सोचा था कि यदि वे ऐसा करना स्वीकार कर ले तो उनकी ओर का भय भी कुछ कम हो जावेगा, उनका बल भी बढने न पावेगा और साम्राज्य की भी वृद्धि होगी परन्तु उन्होने मेरी यह बात नहीं मानी। अब क्या उपाय किया जावे जो मेरा यह भय मिटे?

श्रीकृष्णजी की बात के उत्तर मे बलदेवजी हसकर उनसे कहने लगे– भैया आपका यह भय निरर्थक है। भाई अरिष्टनेमि की ओर से इस प्रकार का किंचित् भी भय न रखना चाहिए। माता शिवादेवी ने उनके गर्भ–समय मे जो चौदह महास्वप्न देखे थे, उनसे स्पष्ट है कि भाई अरिष्टनेमि त्रिलोकपूज्य भगवान तीर्थंकर हैं, जो ससार से अधर्म उठाकर धर्म की स्थापना करने के लिए ही उत्पन्न हुए हैं। उनके हृदय मे राज्य का किंचित् भी लोभ नहीं हो सकता।

श्रीकृष्ण– भ्राता आपका यह कथन तो ठीक है, परन्तु राज्य पर किसका मन नहीं ललचाता! यदि भाई अरिष्टनेमि ने किसी प्रकार का उपद्रव न किया तब तो अच्छा ही है लेकिन यदि उन्होने मुझसे राज्य छीनने के लिए उपद्रव किया तो उस समय मेरे और आपके लिए इनका सामना करना सर्वथा असम्भव हो जायेगा। इसलिए अभी ही इस भय को मिटाने का उपाय करना अच्छा हे।

बलदेवजी ने उत्तर मे कहा– भाई आप तो सर्वथा असम्भव बात को भी सम्भव मानकर अपने लिए निष्कारण ही भय उत्पन्न कर रहे हैं और फिर उसको मिटाने के लिए चिंतित हैं। जो इस समस्त ससार को ही तृणवत् त्यागने वाले हैं जो राग–द्वेष मिटा कर ससार को भी ऐसा उपदेश देने के लिए ही उत्पन्न हुए हैं और जिनके विषय मे अनेक महापुरुष ऐसी ही भविष्यवाणी कर चुके हैं, उनमे राज्य–लोभ कैसे हो सकता हे? वे राज्य के लिए युद्ध कैसे कर सकते हैं ओर अपने भाइयो को कैसे मार सकते हें? कदाचित् उनको राज्य करने की इच्छा भी हुई तो वे आपसे भी अधिक बलवान और शस्त्रास्त्र–कुशल हें तब उनके लिए दूसरा राज्य प्राप्त करना क्या कठिन है! यदि उनको राज्य करना ही होता तो वे आपके द्वारा किये गय दिग्विजय के प्रस्ताव को अस्वीकार क्यो कर देते! महापुरुषो द्वारा की गई भविष्यवाणी स और उनके व्यवहार से स्पष्ट है कि उनमे आपके इस छाट–स राज्य का क्या सार ससार के राज्य का भी लोभ नही हो सकता।

आप उनकी ओर से व्यर्थ ही भयभीत हो रहे हैं। आप अपने मे से इस सन्देह को निकाल दीजिए और नि शक राज्य–कार्य करिये।

बलदेवजी ने श्रीकृष्ण को इस तरह समझा कर सतोष दिलाया। बलदेवजी के समझाने से श्रीकृष्ण का सन्देह दूर हुआ। वे सन्तुष्ट होकर अपने महल को लौट गये।

इस बात को कुछ दिन बीत गये। उधर महाराज समुद्रविजय और महारानी शिवादेवी भगवान् से विवाह करने की स्वीकृति देने के लिए बार–बार अनुरोध करते थे। लेकिन भगवान् उनके अनुरोध को सदा ही टाल दिया करते थे। भगवान् से स्वीकृति लेने मे अपने को असफल और भगवान् का विवाह देखेने की स्वय की इच्छा को अपूर्ण देखकर भगवान् के माता–पिता ने इस विषय मे श्रीकृष्ण की सहायता लेना उचित समझा। उन्होने सोचा कि हमारे कहने से तो अरिष्टनेमि विवाह करना स्वीकार करते नही है इसलिए अब श्रीकृष्ण द्वारा उन्हे समझाने के सिवा और मार्ग ही क्या है। सभव है कि अपने बडे भ्राता, समस्त यादवो के स्वामी तथा द्वारका के महाराजा श्रीकृष्ण के समझाने से अरिष्टनेमि मान जावे और विवाह करना स्वीकार कर ले। इस प्रकार विचार कर एक दिन उन्होने श्रीकृष्ण से कहा– वत्स तुम्हारे छोटे भाई अरिष्टनेमि अब पूर्ण युवक हो गये हैं फिर भी अब तक अविवाहित ही है। इस अवस्था तक अविवाहित रहने से लोग उनके विषय मे न मालूम क्या अनुमान लगाते होगे। साथ ही, तीन खण्डो के स्वामी का भाई इतनी अवस्था तक अविवाहित रहे, यह भी एक विचारणीय बात है। हमने अपनी ओर से तो अरिष्टनेमि से विवाह करने के लिए अनेक बार अनुरोध किया लेकिन उन्होने हमारे अनुरोध को अब तक स्वीकार नही किया है। सम्भव है कि वे आपका अनुरोध न टाल सके और विवाह करना स्वीकार कर ले इसलिए इस विषय मे आप प्रयत्न करे तो अच्छा हो।

दोनो का कथन सुनकर श्रीकृष्ण ने विचार किया कि यद्यपि भाई अरिष्टनेमि के विषय मे भ्राता बलदेवजी ने कुछ और ही कहा हो लेकिन इन वृद्ध पिता और बडी माता की इच्छा को पूर्ण करने का उपाय करना भी मेरा कर्तव्य है। आगे तो जो होना होगा वह होगा ही।

इस प्रकार विचार कर श्रीकृष्ण कहने लगे– वास्तव मे आपका कथन ठीक है। भाई अरिष्टनेमि का अब अविवाहित रहना किसी भी दृष्टि से ठीक नही है। अब तक इस ओर न तो मेरा स्वय का ही ध्यान गया था न ही आपने

मेरा ध्यान इस ओर खीचा था, अन्यथा अरिष्टनेमि का विवाह अब तक कभी का हो गया होता। अब आपने मुझे कार्य सौंपा है, तो मैं इसको पूरा करने के लिए पूर्णतया प्रयत्न करूगा और मुझे विश्वास है कि मेरा प्रयत्न सफल होगा।

महाराज समुद्रविजय और महारानी शिवादेवी को विश्वास दिलाकर श्रीकृष्ण अपने रनवास मे आये। वे यह सोचने लगे कि ऐसा कौनसा उपाय किया जावे, जिससे भाई अरिष्टनेमि विवाह करना स्वीकार कर ले। इस विषयक विचार मे वे इतने तन्मय हो गये कि समीप कौन आता है या कौन क्या कहता है, इस ओर उनका किंचित् भी ध्यान न था।

श्रीकृष्ण को गम्भीर विचार–सागर मे निमग्न देख कर सत्यभामा उनसे पूछने लगी– प्रभो आप सदा तो यहा प्रसन्नमुख ही पधारते हैं अपने साथ किसी प्रकार की चिन्ता नही लाया करते, लेकिन आज तो आप किसी महान् विचार मे डूबे हुए दिखाई देते हैं। किसी से बोलते तक नही। क्या आप हम भी यह बताने की कृपा करेगे कि आज आप किस विचार मे पडे हुए हैं?

सत्यभामा का कथन सुनकर श्रीकृष्ण ने सोचा कि भाई अरिष्टनेमि से विवाह करने की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए यदि स्त्रिया प्रयत्न करे तो सफलता की बहुत–कुछ आशा हो सकती है। अत इस कार्य का भार सत्यभामा आदि पर ही डाल देना उचित है। इस प्रकार विचार कर सत्यभामा के कथन के उत्तर मे श्रीकृष्ण कहने लगे कि मैं जिस विषय पर विचार कर रहा हू वह विषय एक दृष्टि से तो बहुत साधारण है, लेकिन दूसरी दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण हे। में भाई अरिष्टनेमि के विवाह के विषय मे विचार कर रहा हू। वैसे तो यह कोई विचारणीय बात ही नही है लेकिन दूसरी तरह से विचार करने से बात बडी गम्भीर हो सकती है। भाई अरिष्टनेमि अब पूर्ण युवक हो चुके ह उनकी अवस्था का कोई भी यादवकुमार अविवाहित नही ह लेकिन वे अविवाहित हें। मेरे भाई अरिष्टनेमि इतनी अवस्था तक अविवाहित रह यह मेरे लिए विशेष लज्जा की बात हे। में आज इसी विषय मे विचार कर रहा हू।

सत्यभामा– स्वामिन् इसमे चिन्ता या विचार की क्या बात हे? उनके साथ विवाह करन के लिए अनेक राजकन्याए लालायित होगी।

कृष्ण– हा यह तो ठीक हे लेकिन कठिनाई की बात तो यही हे कि भाइ अरिष्टनमि ही विवाह करना स्वीकार नही करते। यदि वे विवाह करना स्वीकार कर लत तव तो विचार की बात ही क्या थी। पितृव्यादि ने भाई

अरिष्टनेमि से विवाह करना स्वीकार कराने के लिए बहुत प्रयत्न किया, लेकिन सफलता न मिली। तुम लोग तो इस ओर से बिल्कुल निश्चिन्त-सी ही जान पडती हो। यदि निश्चिन्त न होती, किन्तु प्रयत्न करती तो भाई अरिष्टनेमि से विवाह की स्वीकृति लेना कोई असभव कार्य न था।

सत्यभामा– ऐसे कार्य मे आपकी आज्ञा बिना हम किसी प्रकार का प्रयत्न कैसे कर सकती थी?

कृष्ण– इसमे आज्ञा की तो कोई आवश्यकता न थी।

सत्यभामा– तो ठीक है, अब हम भी देवरजी से शीघ्र ही विवाह करना स्वीकार करा लेगी। हा, कुछ प्रयत्न अवश्य करना होगा, लेकिन कार्य असाध्य नही है। इस विषयक प्रयत्न करने के लिए ये ही दिन उपयुक्त हैं। बसन्त ऋतु मे ऐसे कार्य बहुत सरलता से हुआ करते हैं। आप रेवतगिरि पर बसन्तोत्सव मनाने की तैयारी कराइये तथा देवरजी और प्रमुख-प्रमुख युवक-यादवो सहित आप भी वहा पधारिये। हम सब वही देवरजी को विवाह करने के लिए प्रसन्न कर लेगी।

सत्यभामा की बात सुनकर कृष्ण को बडी पसन्नता हुई। उन्होने दूसरे ही दिन रेवतगिरि पर बसन्तोत्सव मनाने की तैयारी कराई। बसन्तोत्सव मनाने की समस्त सामग्री रेवतगिरि पर भेज दी गई। अपनी-अपनी पत्नियो सहित श्रीकृष्ण बलदेव आदि प्रमुख और समान आयु वाले यादव रथ मे बैठकर रेवतगिरि के लिए चले। श्रीकृष्ण ने भगवान् अरिष्टनेमि से भी रेवतगिरि पर चलने का अनुरोध किया। भगवान् अरिष्टनेमि श्रीकृष्ण के अनुरोध को टाल न सके और वे भी रथ मे बैठकर चले।

मार्ग मे सत्यभामा प्रभृति श्रीकृष्ण की रानिया तथा अन्य स्त्रिया ऋतु के अनुकूल गीत गाती जाती थी। बीच-बीच मे कोई-न-कोई प्रसग निकाल कर वे भगवान् अरिष्टनेमि को लक्ष्य बनाकर व्यग्यभरी बाते भी करती जाती थी। कोई तो बात का प्रारम्भ करती थी कोई अनुमोदन करती थी कोई समर्थन करती थी और फिर सब भगवान की ओर देखकर हसती थी। उनके इन कार्यो का कारण भगवान भली प्रकार जानते थे फिर भी वे चुपचाप उन सब की व्यग्यात्मक बाते सुनते जाते थे और अपने हृदय मे मोह की विचित्रता पर विचार करते जाते थे।

रेवतगिरि पर पहुचकर सब स्त्री-पुरुष बसन्तोत्सव मनाने लगे। किसी पत्नी ने नवविकसित सुगन्धित पुष्पो की माला बनाकर अपने पति को पहनाई और किसी पति ने अपनी पत्नी को पहनाई। किसी ने कोमल आम्रमजरी पति

को भेट की और किसी ने पत्नी को। कुछ स्त्रिया मधुर स्वर मे वसन्त ऋतु के योग्य गीत गाती थीं, कुछ वाद्य वजाती थीं और कुछ झुण्ड की झुण्ड मिलकर नृत्य करती थीं। पुरुष भी परस्पर विनोद करते हुए स्त्रियो की क्रीडा को देखकर प्रसन्न हो रहे थे तथा स्वय भी क्रीडा मे भाग ले रहे थे।

इस प्रकार सव स्त्री–पुरुष वडी देर तक वसन्तोत्सव मनाते रहे। वीच–वीच मे कृष्ण की रानिया भगवान् अरिष्टनेमि को मार्ग की ही तरह व्यग्य–भरी वाते सुना देती थी ओर कभी–कभी उनके चारो ओर खडी होकर आपस मे अनेक प्रकार की ऐसी वाते करने लगती थी, जिन्हे सुनकर भगवान् अरिष्टनेमि के हृदय मे विवाह करने की इच्छा उत्पन्न हो। साथ ही वे भगवान् से यह भी पूछती जाती थी कि– देवरजी, आगामी बसन्तोत्सव के समय तो आप भी पत्नी सहित होगे? लेकिन भगवान् उनके इस प्रकार के प्रश्न का कोई उत्तर नहीं देते थे। वे उसी प्रकार निश्चल थे जिस प्रकार साधारण पवन लगने से मदराचल पर्वत विचलित नहीं होता निश्चल ही बना रहता है। वैसे तो काम–विकार से ससार के लोग व्यथित हो जाते हैं लेकिन व्यथित होते हॅ वे ही जिनमे काम–विकार का कुछ भी अश शेष है, जो अपने मे से काम–विकार को पूर्णतया नही निकाल सके हैं जिन महापुरुष के हृदय मे किचित् भी काम–विकार शेष नही रहा है उनके समीप कामोत्पादक समस्त चप्टाए व्यर्थ हं। भगवान् अरिप्टनेमि मे काम–विकार का थोडा भी अश शेष नहीं था इस कारण उनके सामने की गई सब चेष्टाए निष्फल हुईं। वह चेष्टा वृद्धि करती ता किसकी? जव मूल ही नही है तव वृद्धि किस की होती? इसलिए कृष्ण की रानियो द्वारा वहुत चेष्टा की जाने पर भी भगवान् मे विवाह करन की इच्छा नहीं हुई। वे तो स्वाभाविक प्रसन्नता के साथ यह विचार कर रह थे कि माह–विकल प्राणी केसे कार्य करने लगता है।

अपना सव प्रयत्न निष्फल देखकर कृष्ण की रानियो को वडी निराशा हुई। अन्त मे उन सवने मिलकर भगवान को घेर लिया और भगवान् से कहने लगी– दवरजी आज आपके सव भाई तो अपनी–अपनी पत्नी के साथ है किसी क एक पत्नी है किसी के अनेक पत्नी हैं लेकिन आप बिना पत्नी के ही हें यह देखकर हम वहुत दु ख हुआ। पुरुष की शोभा स्त्री के विना नही हा सकती। जो ससार–व्यवहार से अलग हैं उनकी वात तो दूसरी हे, लेकिन जिसन गृह–ससार नहीं त्यागा हे उस पुरुष के यदि अधिक नहीं तो एक पत्नी हाना तो आवश्यक ही ह। आज यदि आप भी पत्नी सहित होते तो आपका भी आनन्द मिलता और हमे भी प्रसन्नता होती। इसलिए हमारी इच्छा

है कि अब आप शीघ्र ही विवाह कर ले। आपके अब तक अविवाहित रहने से लोग आपके और यदुकुल के विषय मे न मालूम क्या–क्या बाते कहते होगे। उन सबका परिहार करने के लिए भी आप अधिक नही तो एक विवाह तो अवश्य कीजिए। सम्भव है कि आपको अपने गुरुजनो से अपना विवाह करने का विचार पकट करने मे सकोच हो इसलिए आप हमे स्वीकृति दे दीजिए। हम आपके विवाह का सब प्रबन्ध करा देगी और आपके लिए ऐसी सुन्दर पत्नी खोज देगी कि जैसी सुन्दर पत्नी आपके समवयस्क यादवो मे से किसी को भी प्राप्त नही हुई।

इस तरह वे सब भगवान् से बार–बार कहने लगी, लेकिन भगवान् पर उनके कथन का कोई अनुकूल पभाव न हुआ। भगवान् के विचरो मे किंचित् भी अन्तर न आया। भगवान् को इस पकार दृढ देखकर भी उन सबने प्रयत्न नही त्यागा। वे भगवान् से बराबर अनुरोध करती ही रही। उनका सीमातीत अनुरोध देखकर मोह की शक्ति का विचार करते हुए भगवान् मुस्कराये। भगवान् को मुस्कराते देखकर कृष्ण की रानिया कहने लगी बस–बस कार्य सफल हो गया देवरजी ने हमारा अनुरोध मान कर विवाह करना स्वीकार कर लिया।

कृष्ण की रानियो ने सबके आगे यह सिद्ध कर दिया कि देवर अरिष्टनेमि ने विवाह करना स्वीकार कर लिया है। उन्होने कृष्ण के पास आकर उनसे भी यही कहा कि हम देवरजी से विवाह करना स्वीकार करा आई। अब आप उनका विवाह कर दीजिए। कृष्ण को अपनी रानियो से यह सुनकर बहुत प्रसन्नता हुई। बलदेवजी प्रभृति दूसरे यादव भी यह समाचार जानकर आनन्दित हुए। समस्त यादवो और यादव रानियो सहित श्रीकृष्ण रेवतगिरि से द्वारका आये। उन्होने वसुदेव देवकी समुद्रविजय शिवादेवी पभृति को भी यह समाचार सुनाया कि भाई अरिष्टनेमि ने विवाह करना स्वीकार कर लिया है। इन सबको भी यह शुभ समाचार सुनकर बहुत पसन्नता हुई।

भगवान् अरिष्टनेमि ग्रहवास मे रहते थे परन्तु अतिशयज्ञानी थे। श्रीकृष्ण की रानियो के गलत प्रचार का पतिवाद कर सकते थे परन्तु वे भविष्यवेत्ता और कारण–कार्य को समझते थे इस कारण वे उपशान्त रहे। तटस्थ भाव से सब रचना देखते रहे।

अध्याय चार

सगाई

सासारिक स्वार्थ के वश मे हुआ मनुष्य सब–कुछ कर डालता है। वह नीच से नीच कार्य करने मे नहीं हिचकिचाता। नीति और धर्म को ठुकरा देता है, सत्य तथा न्याय को दूर भगा देता है सहिष्णुता एव सहृदयता का गला घोट देता है। स्वार्थ के लिए मनुष्य, हिसा झूठ, चोरी आदि महान् पाप करने मे भी सकोच नही करता। वह दीन पशु–पक्षियो को मार डालता है। निरपराधी मनुष्यो का कत्ल कर देता है, यहा तक कि अपने आत्मीयजनो को भी मृत्यु के मुख मे भेज देता है और यह सब करता है स्वार्थ के लिए। बहुत–स लोग तो स्वार्थनाश के कारण आत्महत्या भी कर डालते हैं दूसरे पापो की गणना ही क्या हे।

भगवान् अरिष्टनेमि ने शख वजाने आदि का जो कार्य किया था वह हिसा को चुनोती ओर अहिसा के प्रचार के अवसर का आह्वान करने के लिए था किसी का राज्य छीनने किसी को कष्ट मे डालने या किसी से अपने को अधिक वलवान सिद्ध करने के लिए न था, फिर भी श्रीकृष्ण को यह सन्देह हा गया कि कहीं ये मेरा राज्य न छीन ले, इस कारण कृष्ण को स्वार्थ–रक्षा की चिन्ता हो गई। इस चिन्ता से मुक्त होने के लिए उन्हे अपनी रानियो की सहायता लेनी पडी। अपने पति को चिन्तामुक्त करने के लिए श्रीकृष्ण की रानिया ने भी भगवान् अरिष्टनेमि से विवाह करना स्वीकार कराने के लिए वहुत प्रयत्न किया परन्तु जव उन्हे सफलता न मिली तब उन्होने प्रभु के मुस्करान पर झूठ–मूठ ही यह सिद्ध कर दिया कि अरिष्टनेमि ने विवाह करना स्वीकार कर लिया ह।

यद्यपि अरिष्टनमि ने विवाह करना स्वीकार कर लिया हे यह सर्वथा झूठ प्रसिद्ध किया गया था परन्तु महापुरुष वुराई मे से भी अच्छाई निकालते

हैं। इसके अनुसार श्रीकृष्ण की रानियो द्वारा ऐसी झूठी खबर फैलाई जाने पर भी भगवान् अरिष्टनेमि मौन ही रहे, उनके कथन का विरोध नहीं किया। वे तो सोचते थे कि यह जो कुछ भी हो रहा है वह सब मेरे उद्‌देश्य की सिद्धि मे सहायक ही होगा।

रेवन्तगिरि से लौटकर श्रीकृष्ण वासुदेव महाराज समुद्रविजय और महारानी शिवादेवी के पास गये। उन्होने महाराज समुद्रविजय और महारानी शिवादेवी से कहा कि आपने मुझ पर जिस कार्य का भार रखा था, आपके आशीर्वाद से उस कार्य मे सफलता प्राप्त हुई है और भाई अरिष्टनेमि ने विवाह करना स्वीकार कर लिया है। अब उनके अनुरूप योग्य कन्या खोज कर शीघ्र ही उनका विवाह कर देना उचित है। विलम्ब करने पर सभव है कि भाई अरिष्टनेमि का विचार बदल जावे और स्वीकृति प्राप्त करने मे किया गया सफल प्रयत्न व्यर्थ होवे।

श्रीकृष्ण का कथन सुनकर महारानी शिवादेवी और महाराज समुद्रविजय बहुत प्रसन्न हुए। वे आनन्दित होकर 'हमारा चिरकालीन मनोरथ पूर्ण होगा और हम पुत्र अरिष्टनेमि का विवाहोत्सव देख अपनी आखो को सफल करेगे' आदि सुनकर भविष्य की कल्पना करने लगे। फिर प्रसन्नता का आवेग कम होने पर उन्होने श्रीकृष्ण से कहा कि वत्स, तुम जैसे धुरन्धर नीतिज्ञ और कार्यकुशल के लिए कोई भी कार्य कठिन नही है। अरिष्टनेमि से विवाह करना स्वीकार कराकर तुमने हमारी सूखती हुई आशालता को हरी बना दिया है। हम तुम्हे कोटिश आशीर्वाद देते है लेकिन अरिष्टनेमि से विवाह करना स्वीकार कराकर ही तुम अपने को कृतकार्य मत मानो। यह न समझो कि मेरे पर जो भार था वह उतर गया। तुम्हारा दायित्व तो तभी पूर्ण होगा जब अरिष्टनेमि का विवाह हो जावेगा। योग्य कन्या खोज कर अरिष्टनेमि का विवाह करने का भार भी तुम पर है। तुम्हारे होते किसी दूसरे पर इस कार्य का बोझ डालना सर्वथा अनुचित है अत जिस प्रकार तुमने अरिष्टनेमि से स्वीकृति लेने का कार्य किया है उसी प्रकार योग्य कन्या के साथ अरिष्टनेमि का विवाह भी कर दो। अरिष्टनेमि के विवाह का भार हम पर या किसी ओर पर मत डालो।

महाराजा समुद्रविजय और महारानी शिवादेवी का कथन सुनकर श्रीकृष्ण ने हसते हुए कहा कि आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए मै सदैव तत्पर हू। आपकी इस आज्ञा का भी पालन करूगा। यह कहकर आर दोनो से आशीर्वाद लेकर श्रीकृष्ण अपने महल को आये।

अव वे अरिष्टनेमि के योग्य कन्या का विचार करने लगे। इसके लिए उन्होने अपने परिवार के खास–खास पुरुष व स्त्रियो की एक सभा की और उस सभा के सन्मुख यह विषय विचारणार्थ रखा कि अरिष्टनेमि का विवाह किस कन्या के साथ किया जावे। श्रीकृष्ण की पटरानी सत्यभामा भी उस सभा मे उपस्थित थी। सत्यभामा कहने लगी कि देवरजी के सर्वथा योग्य कन्या मै वता सकती हू। परन्तु मुझे यह विचार होता है कि कही आप लोग वह कन्या वताने मे मेरा कुछ स्वार्थ न समझ बैठे।

श्रीकृष्ण– ऐसा समझने का तो कोई कारण नही है। प्रत्येक मनुष्य विशेपत अपने पक्ष के मनुष्य को ही जानता है दूसरे को वह क्या जाने। इसके अनुसार जो भी कोई कन्या बतावेगा वह कन्या किसी–न–किसी रूप मे वताने वाले के पक्ष की ही होगी। यदि सब लोग तुम्हारी तरह विचार कर ले तव तो कोई भी व्यक्ति अरिष्टनेमि के योग्य कन्या नही बता सकेगा। इसलिए यह विचार छोडो और कौन कन्या है यह बताओ। यदि कन्या योग्य हुई तव ता तुम्हारा स्वार्थ होने पर भी कोई बुराई नही है और यदि कन्या ही योग्य न हुई तो तुम्हारा स्वार्थ भी किसी काम का नही है।

सत्यभामा– मेरी समझ से मेरी छोटी बहन राजमती देवरजी के योग्य हे।

सत्यभामा की वात का महारानी शिवादेवी देवकी आदि ने भी समर्थन किया। सभी यह कहने लगी कि वास्तव मे राजमती सब प्रकार से अरिष्टनेमि की पत्नी वनने योग्य हे। वह सुन्दरी भी अप्रतिम है और गुण–लक्षण–सम्पन्न भी हे। उसकी जितनी भी प्रशसा की जावे कम है।

श्रीकृष्ण न विचार किया कि पहले तो राजमती इन सबके कथनानुसार प्रत्यक दृष्टि म अरिष्टनेमि के योग्य है ही दूसरे, राजमती माता देवकी की वहन हान क नाते मेरी मोसी होती है ओर सत्यभामा की वहन होने के नाते मरी साली होती हे। वह माता ओर पत्नी दोनो की ओर से मेरे सम्वन्ध मे ही ह आर तीसरा सम्वन्ध अनुजवधू का हो जावेगा। इन तीनो सम्वन्ध के कारण राजमती क हृदय मे किसी भी समय मेरे विरुद्ध विचार न होगा ओर जव राजमती क हृदय म मेर विरुद्ध विचार नही होगा तव वह अरिष्टनेमि के हृदय म भी अनुकूल भाव भरगी विरुद्ध भाव उत्पन्न ही होने न देगी। इस प्रकार अरिष्टनमि की आर स मरे विरुद्ध विद्रोह करने की आशका ही नही रहेगी। अत अरिष्टनमि का विवाह राजमती के साथ होन मे सव तरह से अच्छाई ही ह।

इस प्रकार विचार कर श्रीकृष्ण ने वहा उपस्थित और सब लोगो से भी सत्यभामा के कथन तथा देवकी शिवादेवी आदि के समर्थन के विषय मे सम्मति ली। सभी ने सत्यभामा का प्रस्ताव और इस सम्बन्ध को उचित बताया। किसी ने किंचित् भी विरोध नहीं किया। श्रीकृष्ण तो सत्यभामा की बात सुनकर ही भगवान् अरिष्टनेमि का विवाह राजमती के साथ करने का विचार कर चुके थे इसलिए सबको सत्यभामा के पस्ताव से सहमत देख वे पसन्न हुए। उन्होने सोचा कि यद्यपि अपने घर मे तो अरिष्टनेमि का विवाह राजमती के साथ होने मे सब सहमत हैं परन्तु राजमती के साथ अरिष्टनेमि का विवाह करना अपने ही हाथ की बात तो नही है। जब तक राजमती और और उसके माता-पिता भी इससे सहमत न हो जावे तब तक मैं जो कुछ सोच रहा हू वह भी व्यर्थ है और इन सबकी सम्मति भी व्यर्थ है। यद्यपि ऐसा कोई कारण तो नही दिखता जिससे राजमती अरिष्टनेमि की पत्नी बनना स्वीकार न करे या राजमती के माता-पिता अपनी पुत्री का विवाह अरिष्टनेमि के साथ करना उचित न समझे फिर भी इस कार्य को दूसरे के भरोसे छोडना ठीक नही है। अरिष्टनेमि के साथ राजमती का विवाह करने का प्रस्ताव लेकर यदि कोई दूसरा व्यक्ति उग्रसेन के पास गया और उग्रसेन ने उसे अस्वीकार कर दिया तो फिर इस विषय मे कुछ करते न बनेगा। उस दशा मे महाराजा उग्रसेन के पास मेरा जाना भी अच्छा न होगा। इसलिए किसी दूसरे को उगसेन के पास भेजने की अपेक्षा मेरा स्वय का उग्रसेन के पास जाना अच्छा होगा। महाराजा उग्रसेन मेरे ससुर हैं और मेरे द्वारा किये गये उपकार से दबे हुए है अत वे मेरे द्वारा उपस्थित किये प्रस्ताव को कदापि अस्वीकार न कर सकेगे और जब मै स्वय जाऊगा तब राजमती को भी अरिष्टनेमि की पत्नी बनाने के लिए सहमत कर लूगा।

यो दीर्घ विचार करके कृष्ण वहा उपस्थित सब लोगो से और विशेषत महाराजा समुद्रविजय तथा महारानी शिवादेवी से कहने लगे- भाई अरिष्टनेमि के विवाह मे विलम्ब अवाछनीय है। इस कार्य मे जितनी भी शीघ्रता हो अच्छा है लेकिन यदि राजमती की याचना करने के लिए उग्रसेन के यहा कोई दूसरा व्यक्ति गया और उग्रसेन तथा राजमती ने कोई दूसरा उत्तर दिया तो स्वाभाविक ही विलम्ब होगा। इसलिए मै यह उचित समझता हू कि किसी दूसरे को उग्रसेन के यहा भेजने के बदले मै स्वय ही जाऊ। अपने प्रिय भाई के लिए मै याचक बन कर उग्रसेन के यहा जाऊ उसमे किसी प्रकार की बुराई नही है और जब मै स्वय याचक बनकर जाऊगा तब उगसेन का मेरी

याचना पूरी करनी ही पडेगी। यदि उग्रसेन या राजमती ने इस विषय मे कोई बात उठाई भी तो मैं उनका समाधान भी कर सकूगा।

नीतिज्ञ कृष्ण की बात कोन अस्वीकार कर सकता था! सबने उनके इस कथन का भी समर्थन किया। अपनी बात से सबको सहमत देखकर श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए और सभा विसर्जन हुई।

श्रीकृष्णजी उग्रसेन के यहा पहुचे। महाराजा उग्रसेन अपने जामाता ओर तीन खण्ड के स्वामी श्रीकृष्ण को अनायास अपने यहा आया देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होने श्रीकृष्ण का बडा स्वागत–सत्कार किया। श्रीकृष्ण ने भी उनका उचित अभिवादन किया। कुशल प्रश्न हो चुकने पर श्रीकृष्ण उग्रसेन के रनवास मे अपनी सासू से मिलने के लिए गये। अपनी सासू से मिलकर कृष्ण ने बहुत प्रसन्नता प्रकट की। वे उग्रसेन के रनवास मे विशेषत राजमती को देखने के लिए ही गये थे। उनका यह उद्देश्य पूरा होने मे विलम्ब न लगा। राजमती ने जब यह सुना कि श्रीकृष्ण आये हैं और माता के पास बैठे हैं तब वह भी अपनी माता के पास श्रीकृष्ण से मिलने के लिए आई। उसने श्रीकृष्ण का अभिवादन किया और श्रीकृष्ण ने उसे आशीर्वाद दिया। राजमती को देखकर श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए। वे अपने मन मे कहने लगे कि वास्तव मे यह सोन्दर्य की साक्षात् प्रतिमा अरिष्टनेमि की पत्नी बनने के सर्वथा योग्य है। मैंने अब तक मानवीय रूप मे सरलता के दर्शन नहीं किये थे। राजमती को देखने से यह अपूर्णता मिट–सी गई।

श्रीकृष्ण थोडी देर तक अपनी सासू के पास बैठे बाते करते रहे। उन्होंने उतनी ही देर मे राजमती की नम्रता सरलता और व्यवहारकुशलता आदि बाते जान ली। फिर वहा से उठकर वे उग्रसेन के पास आये। श्रीकृष्ण का ऊचे आसन पर बैठाकर उग्रसेन नम्रतापूर्वक उनसे कहने लगे कि आज मेरा अहाभाग्य हे जो आप मेरे यहा पधारे। आपने यहा पधारने का कष्ट करके मेरा गारव बढाया हे। सेवक के यहा स्वामी का आगमन अत्यन्त मगलदाता हाता हे। यदि मेरे योग्य कोई सेवा हो तो आज्ञा करिये। में आपकी कुछ सेवा कर सका ता स्वय को बहुत ही भाग्यशाली समझूगा।

महाराजा उग्रसेन का कथन सुनकर श्रीकृष्ण ने इस अवसर को अपने प्रयाजन की बातचीत छेडने के लिए उपयुक्त समझा। उन्होंने उग्रसेन के कथन के उत्तर म कहा कि में आपके यहा याचक बनकर आया हू। मुझे विश्वास ह कि आप मरी याचना अवश्य पूरी करगे।

उग्रसेन– यह तो मेरे लिए और भी अधिक सौभाग्य की बात है कि तीन खण्ड के स्वामी मेरे सामने याचक बने और मैं दाता बनू। आप मुझसे क्या मागना चाहते है? आप जो कुछ मागना चाहते हो, नि सकोच मागिये, यदि आप मेरा सर्वस्व और यहा तक कि मेरे प्राण भी मागेगे तो मैं वह भी देने के लिए पस्तुत हू। आप याचक बनकर आवे और मैं आपको निराश लौटाऊ यह कदापि सभव नही है। आप जैसा याचक फिर कब मिलेगा! कहिये आप किस वस्तु की याचना करना चाहते हैं?

कृष्ण– आपके शुभआशीर्वाद से मेरे यहा वस्तुओ की तो कमी नहीं है यदि कमी है तो केवल मानवी (स्त्री) की, और वह कमी जब तक आप दाता न बने तब तक पूरी नही हो सकती।

उग्रसेन– आपके यहा स्त्रियो की कमी! आप यह क्या कह रहे हैं?

कृष्ण– मैं अपने लिये नही किन्तु अपने छोटे भाई अरिष्टनेमि के लिए आपसे राजमती की याचना करता हू।

कृष्ण की बात सुनकर उग्रसेन बहुत ही प्रसन्न हुए। उनका रोम–रोम विकसित हो उठा। उनकी प्रसन्नता उनकी आकृति पर स्पष्ट झलकने लगी। चतुर कृष्ण को उग्रसेन की प्रसन्नता देखकर अपना उद्देश्य पूरा हुआ समझने मे किंचित् भी देर न लगी।

पसन्नता को दबाकर उग्रसेन कृष्ण से कहने लगे कि यादवराज! आपने केवल मेरा गौरव बढाने के लिए ही मुझसे राजमती की याचना की हे और आप स्वय याचक बनकर आये है तथा वह भी चरमशरीरी भगवान् अरिष्टनेमि के लिए! सचमुच आपने मुझ पर बडा ही उपकार किया है। राजमती के कारण मै जिस सम्मान का पात्र बनाया जा रहा हू, वह वर्णनातीत है। भगवान् अरिष्टनेमि के लिए आप राजमती की याचना करे ओर मे अस्वीकार करू यह कैसे सम्भव है! ऐसा सुयोग खोने की मूर्खता कोन करेगा! मै तो पहले से ही भगवान् अरिष्टनेमि के साथ राजमती का विवाह करने की बात सोच रहा था परन्तु मैने सुना था कि भगवान् अरिष्टनेमि विवाह करना ही स्वीकार नही करते। इसी कारण मैने अपना यह विचार पूरा करने का प्रयत्न नही किया था। लेकिन सौभाग्य से मुझे यह दुर्लभ सुयोग देने के लिए आपने स्वय यहा पधारने की कृपा की। यद्यपि आपका यह परस्ताव इसी समय मान लेने मे मुझे किंचित भी सकोच न करना चाहिए परन्तु परिवार के लोगो की और विशेषत राजमती की सम्मति लिए बिना ऐसा कर डालना भी अनुचित होगा। परिवार के लोगो की सम्मति की तो कदाचित

उपेक्षा भी कर दू, लेकिन राजमती की सम्मति जाने विना आपका प्रस्ताव मान लेना राजमती के साथ घोर अन्याय करना है। कैसा भी अच्छा घर–वर हो फिर भी कन्या की सम्मति तो जाननी ही चाहिए। मुझे पूर्ण विश्वास है कि राजमती का विवाह भगवान् अरिष्टनेमि के साथ करने मे परिवार के सभी लोग सहमत होगे और राजमती भी भगवान् अरिष्टनेमि की पत्नी वनने मे प्रसन्नता तथा सद्भाग्य ही मानेगी। फिर भी मैं उसकी स्पष्ट सम्मति जानने से पूर्व आपको कोई निश्चित उत्तर नही दे सकता। आप कुछ देर ठहरिये म सवकी सम्मति जानकर निश्चित उत्तर देता हू।

कृष्ण– आपका कथन यथार्थ है। ऐसे कार्य मे परिवार के लोगो की सम्मति लेना भी उचित है और कन्या की सम्मति लेना तो अत्यन्त आवश्यक हे। कन्या की सम्मति के लिए विना किसी पुरुष के साथ उसका विवाह करना उस कन्या की हत्या करना है। शीघ्रता की कोई वात नही है आप सवकी सम्मति लेकर उत्तर दीजिए। कन्या की इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह करना–कराना महान् पाप हे और इस पाप से बचने मे ही कल्याण हे।

उग्रसन– एक वात और है। सवकी सम्मति मिल जाने पर भी मैं आपकी याचना तभी पूरी करुगा जव आप मुझ पर एक वात की कृपा और करग।

कृष्ण– वह कौनसी वात?

उग्रसन– जिस तरह आप दूसरी कन्याओ को अपने यहा वुलवाकर फिर उनके साथ विवाह करते हें उस तरह में राजमती का न दूगा किन्तु जव भगवान अरिष्टनमि मरे यहा वरात जाडकर आवगे ओर में उनके साथ राजमनी का विवाह कर दृगा तभी राजमती मेर यहा से आपके यहा जावगी।

कृष्ण– एसा कग्न म आप क्या लाभ सोचत हे?

उग्रसन– म चाहता हू कि आप ता मेर यहा याचक वनकर आये ही भगवान अरिष्टनमि भी मर यहा याचक वनकर आव ओर में उन्हे कन्यादान करू। इसक सिवा राजमती मरी सवस छाटी कन्या हे। मुझे उसस वहुत स्नह ह। म उसका विवाह धूमधाम स करना चाहता हू ओर वर का अपन यहा वुलाकर उनक हाथ म राजमती का हाथ सापना चाहता हू। इसलिए आपस यही प्रार्थना करता हू कि जिस प्रकार आपन राजमती की याचना करक मुझ गारवान्वित किया ह उसी प्रकार मरी यह प्रार्थना भी स्वीकार करग।

कृष्ण– आपकी यह बात मानने मे मुझे कौनसी आपत्ति हो सकती है? मै। आपकी इस बात को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करूगा। मैं तो चाहता था कि कोई ऐसा दाता मिले जो अपने घर बुलाकर कन्यादान करे परन्तु न मालूम, कोई क्यो नही बुलाता। सम्भवत लोग मेरा विशाल परिवार देख कर और उसका स्वागत– सत्कार करने मे अपने को असमर्थ समझकर ही हमे कोई अपने यहा नही बुलाता। हर्ष की बात है कि आपने यह साहस तो किया।

उग्रसेन– आपको धन्य है। आपकी कृपा होने पर किस बात की इच्छा अपूर्ण रह सकती है।

कृष्ण– यह आपकी उदारता है कि आप मेरे लिए ऐसा कह रहे हैं।

कृष्ण को बैठाकर उग्रसेन अपने रनवास मे आये। उन्होने अपनी रानी और अपने परिवार के लोगो तथा हितैषियो को अपने पास बुलाया। सबके आ जाने पर उग्रसेन ने कृष्ण द्वारा की गई भगवान् अरिष्टनेमि के लिए राजमती की याचना का वृत्तान्त सबको सुनाया और सबसे इस विषय पर अपनी–अपनी सम्मति प्रकट करने को कहा। उग्रसेन द्वारा कृष्णागमन का उद्देश्य सुनकर सब लोग आनन्दित हुए। सभी कहने लगे कि ऐसे अनुपम सुअवसर को सफल करने का विरोध कौन अभागा करेगा। राजमती बडी भाग्यशालिनी है इसी से उसकी याचना करने को तीन खण्ड के स्वामी स्वय आये है और उसे भगवान् तीर्थकर की अर्द्धांगिनी बनने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है।

कृष्ण की याचना पूरी करने और राजमती का विवाह भगवान् अरिष्टनेमि के साथ होने मे सब लोग सहर्ष सहमत हैं यह जानने के पश्चात् उग्रसेन ने अपना वह प्रतिबन्ध भी सब लोगो को कह सुनाया जो उन्होने श्रीकृष्ण की याचना पूरी करने के विषय मे लगाया था। साथ ही उन्होने यह भी बताया कि श्रीकृष्ण ने मेरा यह प्रतिबन्ध मानकर बरात के साथ भगवान् अरिष्टनेमि को यहा लाना स्वीकार कर लिया है। उग्रसेन की यह बात सुनकर सब लोगो ने उग्रसेन की बुद्धिमत्ता की प्रशसा की और उन्हे धन्यवाद दिया।

सबके शान्त हो जाने पर उग्रसेन फिर कहने लगे कि अपने सब तो एकमत हो गये परन्तु केवल मेरे–आपके विचारो से कुछ नही हो सकता। मरी और आपकी सभी आशा तभी पूर्ण हो सकती है जब राजमती भगवान् अरिष्टनेमि के साथ विवाह करना स्वीकार कर ले।

राजमती की माता — ऐसे महापुरुष की पत्नी वनने के सौभाग्य को ठुकराने की मूर्खता राजमाता कदापि नहीं कर सकती। उसे सहमत करने का भार मैं अपने ऊपर लेती हू।

उग्रसेन— यह तो ठीक हे, परन्तु राजमती को सहमत करने का भार आप लेती हैं इस आधार पर उसकी सम्मति जानने से पूर्व ही उसका विवाह—सम्वन्ध स्वीकार कर लेना अनुचित और अन्याय है। राजमती की स्वीकृति पाने के पश्चात् ही विवाह—सम्वन्ध करना चाहिए।

रानी— आपका कथन न्यायसगत है। आप थोडी देर ठहरिये में अभी ही राजमती की सम्मति जान लेती हू।

यह कहकर राजमती की माता राजमती के भवन मे गई। माता को अपने महल मे अनायास आई जानकर राजमती को विस्मय—सा हुआ। उसने माता का अभिवादन किया और कहने लगी कि— माता! आज आप अनायास पधारी इससे और आपकी प्रसन्नता से जान पडता है कि आप किसी विशेष कारण से ही पधारी हैं।

माता— राजमती, आज मैं एक शुभ कार्य के विषय मे तेरी सम्मति और तेरी स्वीकृति लेने आई हू।

राजमती— मैं तो अपने को इस योग्य नही समझती। मैं आपको किसी भी विषय म सम्मति या स्वीकृति देने योग्य कदापि नही हू।

माता— तेरी यह बात हृदय को आह्लादित किये बिना नही रह सकती। एक सुपुत्री मे अपने माता—पिता के प्रति आदर का जो भाव होना चाहिए वह तेरे मे अच्छी तरह भरा हुआ है। तू हमारी आज्ञा का उल्लघन भी कदापि नहीं करेगी यह विश्वास हे फिर भी जिस विषय मे तेरी स्वीकृति आवश्यक हे उसम तो तेरी स्वीकृति लेनी ही पडती है।

राजमती— ऐसी कोनसी बात हे जिसके लिए मेरी स्वीकृति आवश्यक है?

माता— वह वात हे तर विवाह की। इस विषय म तेरी स्वीकृति न लेना अन्याय ह इसलिए महाराजा ने मुझे तेर पास भजा हे। द्वारकाधीश श्रीकृष्ण अपने छोटे भाई अरिष्टनमि क लिए तेरी याचना करने आये हे परन्तु तेरी स्वीकृति के विना उनकी याचना केस मानली जाती? यद्यपि महाराजा न उनकी माग पर यह प्रतिवन्ध लगा दिया हे कि भगवान् अरिष्टनेमि का वरात के साथ मर घर पधारना हागा ओर यही पर में उनके साथ राजमती का विवाह करूगा। फिर भी यह प्रतिवन्ध रखा ह तरी स्वीकृति क अधीन। अत इस विषय म तू अपनी स्वतत्र सम्मति प्रकट कर। तुझ ये विचार लान की

किंचित् भी आवश्यकता नही है कि पिताजी ने जो प्रतिबन्ध लगाया है उस पर से उनकी इच्छा तेरा विवाह अरिष्टनेमि के साथ करने को जान पडती है। अत मेरे को भी पिताजी की इच्छानुसार अरिष्टनेमि के साथ विवाह करना स्वीकार कर लेना चाहिए। तू प्रत्येक बात पर दूरदर्शिता से विचार कर। विवाह तेरा होगा। सुख-दु ख तुझे भोगना होगा। इसलिए अपनी सम्मति प्रकट करने मे किसी प्रकार का सकोच मत कर।

माता की बात सुनकर राजमती बहुत ही हर्षित हुई। उसकी ऑखो के सामने वह मोहिनी मूरत आ खडी हुई जो उसने किसी समय देखी थी और जो स्मृति मे थी। अरिष्टनेमि के प्रति प्रेम का वह अकुर विकसित हो उठा जो किसी समय उत्पन्न हुआ था और उसके हृदय मे सूक्ष्म रूप से विद्यमान था। वह लज्जा के भाव से झुक गई। माता के प्रश्न का कुछ उत्तर न दे सकी। अपनी आखे नीचे करके राजमती अपने मन मे अनेक सकल्प-विकल्प करने लगी। उसके हृदय मे आनन्द की तरगो ने उथल-पुथल-सी मचा दी। वह उसी मानसिक आनन्द के सागर मे गोते लगाने लगी, सामने कौन है इस बात को थोडी देर के लिए बिल्कुल ही भूल गई।

राजमती की आकृति से तो उसकी माता ने समझ लिया कि राजमती को अरिष्टनेमि के साथ विवाह स्वीकार है, फिर भी राजमती की स्पष्ट स्वीकृति लेना आवश्यक था। इसलिए उसने राजमती से कहा- पुत्री क्या तू इस विषय मे अब तक विचार नही कर पाई! यदि अभी तेरा विचार अपूर्ण हो तो मैं फिर आऊगी। महाराज मेरी प्रतीक्षा मे ठहरे हुए हैं, इसलिए मुझे शीघ्र जाना आवश्यक है।

राजमती- माता इस विषय मे मुझे विचार ही क्या करना है! आप जिस किसी पुरुष के साथ मुझे भेजे, आपकी आज्ञा मानना मेरा कर्तव्य हे फिर आप तो मुझे एक ऐसे पुरुष की सहचरी बना रही हैं जिनके समान ससार मे दूसरा कोई पुरुष है ही नही। और जो मेरे हृदय मे पहले से ही यत्किंचित् स्थान कर चुके हैं। आपकी यह उदारता है कि आप ऐसे महापुरुष के हाथ मुझे सौपना चाहती हैं जिसमे भी मेरी स्वीकृति ले रही हैं। सर्वथा उचित कार्य करती हुई भी आप मुझे मेरे अधिकार के उपयोग से वचित नही रख रही है और मुझे यह विश्वास है कि मेरी स्वीकृति न होने पर आप अत्युत्तम कार्य को भी न करेगी। आप जेसी माता के लिए यही उचित भी है। आप मातृ-कर्तव्य को भली भाति जानती तथा उसका पालन करती हे।

माता– हा तो स्पष्ट कहो कि तुझे भगवान् अरिष्टनेमि की पत्नी बनना स्वीकार है या नहीं।

राजमती– माता यह तो मैं पहले ही स्पष्ट कर चुकी हू। मैं ऐसे महापुरुष को अपना पति बनाना क्यो अस्वीकार करूगी। मैं ब्रह्मचर्य के उच्च ध्येय पर अवश्य पहुचना चाहती हू, लेकिन किसी पुरुष की सहायता से। ऐसा पुरुष भगवान् अरिष्टनेमि के समान दूसरा कौन हो सकता है! मैं तो आपके द्वारा द्वारकानाथ की याचना स्वीकार कर ली जाने मे ही कल्याण समझती हू।

राजमती की स्वीकृति पाकर राजमती की माता बहुत ही प्रसन्न हुई। वह राजमती की प्रशसा करने लगी और कहने लगी– पुत्री, तू बहुत विचारशीला है। अपने हित–अहित को तू भलीभाति समझती है। तुझे धन्य है कि तू त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर भगवान् की पत्नी बनेगी। साथ ही, तू जिसकी काख से उत्पन्न हुई है वह मैं भी धन्य हू।

राजमती की माता महाराज उग्रसेन के पास आई। उसने महाराज उग्रसेन को वह समस्त बातचीत कह सुनाई जो उसके और राजमती के बीच हुई थी। राजमती भगवान् अरिष्टनेमि के साथ विवाह होने मे प्रसन्न है उसने स्वीकृति भी दे दी है यह जानकर उग्रसेन बहुत प्रसन्न हुए।

रनवास से लौटकर महाराज उग्रसेन हर्षपूर्वक कृष्ण से कहने लगे– द्वारिकाधीश आपकी याचना के विषय मे मैंने सबकी सम्मति जान ली। सभी की सम्मति सर्वथा अनुकूल है, इसलिए मैं आपकी याचना स्वीकार करता हू, परन्तु आप मेरी वह बात न भूलियेगा जो मैंने भगवान् अरिष्टनेमि को बरात लेकर यहा पधारने के विषय मे कही थी।

श्रीकृष्ण– नहीं–नहीं मैं जो बात एक बार आपके सामने स्वीकार कर चुका हू, उसे कैसे भूल सकता हू? आपने मेरी याचना अस्वीकार नहीं की और मुझे निराश नहीं जाने दिया इसके लिए मैं आपका बहुत उपकार मानता हू।

उग्रसेन– यह आपकी महानता है कि जो आप मेरे लिए ऐसा कर रहे हैं।

श्रीकृष्ण– अच्छा यह बात तो हुई परन्तु अब आप कृपा करके यह बताइये कि बरात के साथ भाई अरिष्टनेमि यहा पर किस निश्चित दिन और समय पर आवे या जब भी इच्छा हो तभी चली आवे?

उग्रसेन– विवाह का कोई दिन तो निश्चित हो ही जाना चाहिए और उसी दिन बरात आना भी ठीक होगा।

श्रीकृष्ण– हा यही तो मैं भी कहता हू। कोई दिन नियत हुए बिना सुविधा नही हो सकती। इसलिए वह दिन भी अभी ही निश्चय हो जाना अच्छा है।

उगसेन– आपने ठीक कहा। शुभ कार्य मे अनावश्यक विलम्ब भी किस काम का। मैं अभी ज्योतिषी आदि की सम्मति से विवाह का दिन भी ठीक किये लेता हू।

श्रीकृष्ण से कहकर उग्रसेन ने ज्योतिषी को बुलाया। उसकी तथा परिवार के लोगो की सम्मति से राजमती और अरिष्टनेमि के विवाह की तिथि श्रावण शुक्ला छठ निश्चित की गई। श्रीकृष्ण ने भी निश्चित विवाह–तिथि को उचित बताकर स्वीकार किया और यह सब हो जाने पर वे प्रसन्नतापूर्वक अपने महल को लौट आये।

अध्याय–पांच
बरात

महापुरुष प्रत्येक कार्य उचित और सरल रीति से ही करते हैं। वे जो आदर्श स्थापित करना चाहते हैं उसके लिए पहले क्षेत्र तैयार करते हैं जनता को अपनी ओर आकर्षित करते हैं और फिर उस आदर्श की महानता बताकर उसे जनता के सन्मुख रखते है। इस प्रकार वे क्रम–क्रम से कार्य करते हैं। सहसा अपनी विशेष शक्ति का प्रयोग नही करते। यदि वे कोई कार्य विशेष शक्ति द्वारा कर तो साधारण जनता के लिए वह आदर्श रूप भी नही हो सकता। वह कार्य तो फिर विशेष शक्ति वाले के करने योग्य ही माना जा सकता है। इसीलिए महापुरुष अपने म विशेष शक्ति होते हुए भी जनता के सामने रख जाने वाले आदर्श कार्य को साधारण पुरुष की तरह ही करते हैं। हाँ व उस आदर्श कार्य के पीछ त्याग और तप की शक्ति अवश्य लगा देते हैं। सच्ची बात तो यह है कि जिस कार्य के पीछ त्याग और तप की शक्ति नही ह वह अच्छ स अच्छा होने पर भी जनता पर प्रभाव नहीं डाल सकता। वह कार्य अपने–आप को जनता के सन्मुख आदर्श सिद्ध नही कर सकता। इसीलिए किसी आदर्श कार्य क प्रवर्तक उस आदर्श कार्य के पीछे अधिक से अधिक तप और त्याग की शक्ति लगा देत हैं। वे अपने द्वारा किये जाने वाले आदर्श कार्यों के लिए अपना सर्वस्व तक त्याग देते ह अपने शरीर तक का ममत्व छोड दत ह यहा तक कि उसके ऊपर अपने प्राणो तक को न्योछावर कर दत ह। ऐसा किये बिना उस कार्य की ओर न तो जनता का आकर्षण ही होता ह न उस कार्य की महत्ता ही सिद्धि होती हे और न जनता उस कार्य को आदर्श रूप मानकर अपनाती ही ह।

द्वारका म बसने क पश्चात यादव लोग श्रीकृष्ण के अनुशासन म रहकर दिन–प्रतिदिन उन्नत ही हुए थ। उनका गौरव–सूर्य मध्याह्न म तप रहा

था। जन, धन, यश और वैभव आदि किसी भी बात मे उनकी बराबरी करने वाला कोई न था। लेकिन उन्नति से अवनति और अवनति से उन्नति होना ससार का नियम है। जो बहुत बडा हुआ है वह गिरता भी है और जब गिरने लगता है तब गिरता ही चला जाता है। ससार के इस नियम से यादव लोग कैसे बचे रह सकते थे? उनमे भी अवनति के कारण घर कर चुके थे। अधिकाश यादव जुआ खेलने, मास खाने, शराब पीने और परदारगमन मे ही अपना जीवन सार्थक मानने लगे थे। वे इन दुर्व्यसनो मे दिन–प्रतिदिन अधिकाधिक फसते जा रहे थे। विवाह आदि अवसरो पर तो ये दुर्व्यसन बहुत ही बढ जाते थे। ऐसे अवसरो पर हजारो–लाखो पशु–पक्षियो का निर्दयतापूर्वक वध कर डाला जाता था। यद्यपि श्रीकृष्ण अपने परिवार मे से इन दुर्व्यसनो को निकाल कर उसे अवनत तथा नाश होने से बचाना चाहते थे परन्तु वे ऐसा करने मे असमर्थ रहे। उनकी राजसत्ता अपने पारिवारिक लोगो मे से नाशकारी दुर्व्यसनो को पूर्ण रूप न निकाल सकी।

ससार का यह भी नियम है कि तत्कालीन बडे माने जाने लोग जो कार्य करते है साधारण जनता भी उस कार्य को अपना लेती है। फिर वह कार्य चाहे अच्छा हो या बुरा साधारण जनता इस बात का विचार नही करती। वह तो उन सब कामो को अच्छा ही समझती है जो उसकी दृष्टि मे बडे माने वाले लोगो द्वारा आचरित है। विवेकहीन बनकर कार्य के औचित्य का निर्णय न करने और धन राज्य आदि के कारण किसी को बडा मानकर उस बडे माने गये व्यक्ति की बुराई अपना लेने से कैसी भयकर हानि होती है, इसके अनेक उदाहरण आज भी देखने को मिलेगे।

भगवान् अरिष्टनेमि के समय मे भारतवर्ष मे यादव लोग बडे आदमी माने जाते थे। अनुकरण करने वाली जनता यादवो द्वारा आचरित बुराइयो का अनुकरण करने लगी। धीरे–धीरे इसका यह परिणाम हुआ कि लोगो मे से मासभक्षणादि से घृणा मिट–सी गई। अधिकाश लोग इन बुराइयो को साधारण कर्तव्य के रूप मे अपना बैठे। उनके लिये मासभक्षण मदिरापान द्यूतक्रीडा और परस्त्रीसेवन ऐसे आवश्यक कार्य हो गये कि इनके बिना जीवन ही व्यर्थ माना जाने लगा।

भगवान अरिष्टनेमि को लोगो द्वारा होने वाला यह महान पाप असह्य हो रहा था। विशेषत मास के लिए मारे जाने वाले पशु–पक्षियो की दया उनके हृदय को करुणार्द्र बना रही थी। वे सोचते थे कि इन बेचारे मूक पशु–पक्षियो को लोग केवल अपने आनन्द के लिए मार डालते है और उन्हे

दु खी बनाने के साथ ही आप भी अपनी आत्मा के लिए नरक की सामग्री बना रहे हैं। लेकिन जब तक ऐसे लोगो के सामने महान् त्याग की शक्ति से पूर्ण दया का आदर्श न रखा जावेगा उन लोगो से यह हिसा न छूटेगी और मूक पशु–पक्षियो की रक्षा भी न होगी। मुझे उचित है कि मैं जनता के सन्मुख महान् त्याग का आदर्श रख कर दीन पशु–पक्षियो की ओर सबका ध्यान आकर्षित करू तथा इस बात का आदर्शपूर्ण उपदेश दू कि विलासी और हिसापूर्ण जीवन की अपेक्षा सादगी और सयमपूर्ण जीवन श्रेष्ठ है और इस प्रकार का जीवन बिताने के लिए ससार मे सबसे अधिक प्रिय मानी जाने वाली वस्तु भी त्याग देनी चाहिए। यदि मैं आदर्शहीन उपदेश दूगा तो वैसे उपदेश का यथेष्ट प्रभाव कदापि नही पड सकता। उपदेश का प्रभाव तभी हो सकता है जब उसके पीछे त्याग की पूर्ण शक्ति हो।

भगवान् अरिष्टनेमि महापुरुष थे तीर्थंकर थे। उनमे जन्म से ही *अनन्त शारीरिक मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक शक्ति विद्यमान थी।* उनके लिए कोई कार्य न तो असभव ही था न कठिन ही। वे लोगो द्वारा होने वाली जीव हिसा को किसी प्रकार का कष्ट उठाये बिना और त्याग किये बिना भी रोक सकते थे। वे बलपूर्वक भी हिसा बन्द करा सकते थे यत्न द्वारा भी हिसा रोक सकते थे और मन तथा आत्मा द्वारा जनता को मत्रमुग्ध–सा बनाकर भी हिसा से विमुख कर सकते थे। लेकिन इस प्रकार रोकी हुई हिसा का महत्त्व बाजीगर के तमाशे से अधिक नही होता। जिस प्रकार बाजीगर ससार क बडे–बडे ओर आश्चर्यकारी पदार्थ दिखा देता है लेकिन वे पदार्थ थोडी ही दर तक टिक पाते हैं उसी प्रकार उक्त उपायो द्वारा रोकी गई हिसा भी अधिक से अधिक दिन न रुक पाती। क्योकि लोगो के हृदय मे सूक्ष्म रूप से हिसा विद्यमान ही रहती निर्मूल न होती और मूल के होने पर कभी विशाल वृक्ष का होना स्वाभाविक ही हे। हृदय से हिसा के सूक्ष्म सस्कार तब तक कदापि नहीं मिट सकते जब तक कि अहिसा का महत्त्व समझ मे नही आ जाय। भगवान् अरिष्टनेमि को अहिसा का महत्त्व बताकर ही हिसा मिटाना अभीष्ट था। इसी कारण उन्होने हिसा को रोकने के लिए अपनी विशेष शक्ति का प्रयाग नही किया। क्योकि अहिसा का महत्त्व लोगा पर तभी प्रभाव डाल सकता था जनता अहिसा के आगे तभी नतमस्तक हो सकती थी जब उसका प्रवर्तक साधारण पुरुष की तरह उसका महत्त्व सिद्ध करे और उसके लिए कुछ त्याग भी करे।

भगवान् अरिष्टनेमि ने अहिसा का महत्त्व बताकर हिसा को रोकने के लिए सबसे पहले तो क्षेत्र तैयार किया। कृष्ण के शस्त्रास्त्र की लीला उन्होने इसी उद्देश्य से की थी। उस लीला के कारण समस्त यादव उनकी ओर आकर्षित हो गये थे लेकिन अभी वह त्याग शेष था जिसका बल होने पर ही अहिसा को महत्त्व मिल सकता था। त्याग की शक्ति से अहिसा को बलवती किये बिना उसका उपदेश देना पूर्णत सफल नही हो सकता था।

सासारिक लोगो के लिए अन्य सब त्याग उतना कठिन नही है जितना कठिन स्त्री का त्याग है और वह भी युवावस्था मे। स्त्री का मोह छूटना कठिन अवश्य माना जाता है। बुद्ध जब अर्द्धरात्रि के समय अपना घर–बार छोडकर निकलने लगे थे तब उन्होने अपनी सोती हुई पत्नी की ओर देख कर कहा था –

त्यागत हू मै आज आपनो यह यौवन–धन।
राज–पाट सर्वस्व बन्धु–बान्धव अरु परिजन।।
सबसो बढि भुजपाश प्रिये! तव तजत मनोहर।
जा को तजिबो या जग मे है अति ही दुष्कर।।

इस पकार बुद्ध ने भी स्त्री–त्याग को दुष्कर माना था। भगवान् अरिष्टनेमि अहिसा का आदर्श रखकर हिसा को बद कराने के लिए ऐसा ही दुष्कर त्याग आवश्यक समझते थे लेकिन अभी तो उनके पास इस प्रकार के त्याग के लिए कुछ था ही नही और अप्रत्यक्ष रूप से किये गये त्याग का वह पभाव नही पडता जो पत्यक्ष रूप से किये गये त्याग का पडता है। अर्थात यदि भगवान दूल्हा बनकर तोरणद्वार तक जाने से ही इनकार कर देते तो वह त्याग कुछ इनेगिने लोग ही जानते ससार के सब लोग नही जानते इसीलिए भगवान अरिष्टनेमि ने विवाह–रचना के समय किसी प्रकार का विरोध नही दर्शाया।

इस कारण के सिवा एक और भी कारण ऐसा था जिससे भगवान अरिष्टनेमि विवाह–रचना का विरोध न कर सके। अपने ज्ञान द्वारा भगवान अरिष्टनेमि यह जानते थे कि राजमती मेरे पूर्व के आठ भव मे मेरी सहचारिणी रही है। पिछले आठ भव मे उसने मेरे साथ सब भाति सहयोग किया है। वह सुख–दुख मे मेरे साथ रही है। अब इस नवे भव मे मै अपना तो कल्याण कर लू और उसे इस ससारजाल मे फसी रहने दू यह कैसे ठीक हो सकता है। कम से कम मै उसे सावधान तो कर दू। यह तो सूचित कर दू कि मै ससार

[illegible]

व्यवहार त्याग कर आत्मा का कल्याण करने और अक्षय सुख प्राप्त करने जा रहा हू। अत यदि तू इस भव मे भी मेरा सहयोग करना चाहती है तो जिस मार्ग को मैं पकड रहा हू, उसे तू अपना। इस विचार से भी भगवान् अरिष्टनेमि ने विवाह की तैयारी मे असहमति प्रकट नहीं की थी।

उग्रसेन के यहा से लौटकर कृष्ण ने राजमती के सौन्दर्य उसकी नम्रता, सरलता अपनी सफलता और उग्रसेन द्वारा लगाये गये बरात विषयक प्रतिबन्ध का वृत्तान्त सबको कह सुनाया। साथ ही उन्होने विवाह–तिथि से भी सबको परिचित किया। कृष्ण द्वारा कहा गया वृत्तान्त सुनकर सब लोग बहुत ही आनन्दित हुए और कृष्ण को बधाई देने लगे।

विवाह–तिथि को दृष्टि मे रखकर कृष्ण ने विवाह की सब तैयारिया करने की आज्ञा दी। सारी द्वारका नगरी सजाई गई। जगह–जगह आमत्रण–पत्र भेजे गये। राजमहल मे स्त्रिया मगलगान करने लगी। बाजे बजने लगे और यादव लोग भगवान् अरिष्टनेमि की बरात मे जाने की तैयारी करने लगे।

उधर उग्रसेन भी विवाह तथा बरात के सत्कार की तैयारी मे लगे हुए थ। उग्रसेन को यह चिन्ता थी कि मैने अपने सिर पर बडे–भारी कार्य का बोझा ले लिया है। यादवो का परिवार ही बहुत बडा है और कृष्ण तीन खण्ड के स्वामी हैं। उनके राजागण भी उनके साथ होगे। इस प्रकार सहज ही बरात बहुत बडी हो जावेगी। यदि मेरी ओर से बरात का उचित स्वागत–सत्कार न बन सका तो बडा उपहास होगा। इस चिन्ता से मुक्त होने के लिए उग्रसेन ने बरात को ठहरान बरात के खाने–पीने और उसका स्वागत–सत्कार होने आदि का समुचित और व्यवस्थित प्रबन्ध किया। जगह–जगह पर बन्दनवार तथा ध्वजा–पताकाए लगाई गई। द्वार एव मडप बनाये गये। यथास्थान पीने क लिए जल का भी प्रबन्ध किया गया और जिस मार्ग से बरात आने वाली थी वह मार्ग विशेष रूप से सजाया गया।

इस प्रबन्ध क साथ ही उग्रसेन ने एक प्रबन्ध और किया था। वे यह जानत थ कि बरातिया का भाजन के साथ मास की भी आवश्यकता होगी। यदि भाजन क साथ मास न हुआ तो अनेक बरातियो को असतोष भी रहेगा आर मेर प्रबन्ध म भी अपूर्णता नजर आवेगी। इसके लिए उन्होंने अनेका पशु–पक्षी एकत्रित कराय। घरलू पशु–पक्षी मूल्य दे देकर खरीदे गये और दन्न्न पशु–पक्षी पकडवा–पकडवा कर मगाये गय। मास के लिए वध करन क एकत्रन किय गय पशु–पक्षी विशाल बाडे तथा पिजरे क अन्दर बन्द किय गद आर उन्ह खिला–पिला कर हृष्ट–पुष्ट किया जान लगा। जिस बाड म

मारे जाने वाले पशु–पक्षी बन्द किये गये थे, वह उग्रसेन के महल से कुछ ही दूर उस मार्ग के ठीक किनारे पर ही था, जिस मार्ग से बरात तोरणद्वार पर आने वाली थी।

उगसेन के महल मे भी बडी चहल–पहल मची हुई थी। कही मगल–गान हो रहा है कही बाजा बज रहा है, कही राजमती से उनकी सखिया ठिठोली कर रही हैं और कही कुछ स्त्रिया बैठी राजमती के भाग्य की सराहना कर रही है। इसी प्रकार कही राजमती के लिए वस्त्र तैयार हो रहे हैं, कही आभूषण बन रहे है और कही दहेज मे दी जाने वाली अन्य सामग्री ठीक हो रही है।

विवाह–तिथि समीप जानकर सुहागिनो द्वारा राजमती के तेल, उबटन होने लगा। स्त्रिया मगल गाती राजमती को तेल चढाने और उबटन करने लगी। राजमती के हृदय मे उस समय अत्यधिक प्रसन्नता थी। वह अपने हृदय मे भविष्य विषयक न मालूम क्या–क्या कल्पनाए कर रही थी। विवाह की तिथि जैसे–जैसे समीप आ रही थी राजमती की प्रसन्नता भी वैसे–वैसे बढती जा रही थी।

होते–होते विवाह का दिन भी आ गया। बरात की तैयारी होने लगी। हाथी घोडे रथ पैदल आदि चतुरगिणी सेना सजाई गई। यादवगण बहुमूल्य वस्त्राभूषण पहनकर अपने–अपने वाहन पर सवार हुए। प्रस्थानकालीन मगलवाध बजने लगे। गायकगण मगलगीत गाने लगे और बन्दीजन यश उच्चारण करने लगे। भगवान् अरिष्टनेमि को भी दूल्हे के रूप मे सजाया जाने लगा।

108 सोने के, 108 चादी के और इतने ही मिट्टी, रत्न, सोना, चादी, स्वर्ण ताम्बा आदि आठ प्रकार के घडो का जल एकत्र किया गया। उस एकत्र जल मे अनेक प्रकार की औषधिया डाल कर उस औषधि–मिश्रित जल से भगवान् अरिष्टनेमि को स्नान कराया गया। फिर उन्हे सुन्दर तथा बहुमूल्य वस्त्राभूषणो से अलकृत किया गया और मुकुट पर मौर बाधा गया। दूल्हा–वेशधारी भगवान् अरिष्टनेमि कैसे शोभायमान दिखते थे, ये बताने के लिए न तो कोई उपमा ही है न वाणी या लेखनी मे ही वर्णन की शक्ति है।

भगवान् को दूल्हा वेश मे देख कर महारानी शिवादेवी और महाराज समुद्रविजय के हर्ष का पार न था। वे अपने हृदय मे भविष्य–विषयक अनेक कल्पनाए कर रहे थे। वे सोच रहे थे कि उग्रसेन–कुमारी राजमती हमारे यहा पुत्रवधू बनकर आवेगी और उसके द्वारा हमे पौत्र की प्राप्ति होगी आदि। इसी

प्रकार वासुदेव, देवकी, कृष्ण सत्यभामा प्रभृति भी बहुत आनन्दित हो रहे थे। कोई किस विचार से आनन्दित हो रहा था,। कोई किस विचार से और बराती लोग इस विचार से ही प्रसन्न हो रहे थे कि दीर्घकाल के पश्चात् राजपरिवार की बरात मे जाने का सुअवसर मिला है।

भगवान् अरिष्टनेमि के बैठने के लिए श्रीकृष्ण का गन्ध नामक प्रधान हाथी अच्छी तरह से सजाया गया था। भगवान् उसी हाथी पर विराजे। भगवान् पर छत्र लगा हुआ था और चवर ढुल रहे थे।

बरात मे सबसे आगे चतुरगिणी सेना सैनिक बाजा बजाती हुई खडी हुई हे। उसके पीछे मगलवाद्य, गायको और बन्दीजनो का समूह था। फिर वे हाथी–घोडे थे जिन पर प्रमुख–प्रमुख पाहुने आरूढ थे। उनके पीछे श्रीकृष्ण का वह गध हाथी जिस पर चवर–छत्र धारण किये हुए भगवान अरिष्टनेमि दूल्हा बने बैठे थे। उस हाथी के दाहिने–बाये घोडो पर सवार भगवान के शरीर–रक्षक थे। पीछे की ओर अपने–अपने वाहनो पर समुद्रविजय वसुदेव बलदेव कृष्ण प्रभृति यादव थे और सबसे पीछे सेना थी। इस प्रकार बरात सजाई गई। यादव परिवार के वृद्ध पुरुष–स्त्रियो ने भगवान् द्वारा कुलाचार की पूर्ति कराई। यह सब हो जाने पर बरात ने गगनभेदी नाद करके शुभ मुहूर्त मे प्रस्थान किया। झूमते हुए मस्त हाथियो हिनहिनाते हुए चपल घाडा गूजते हुए डको ओर उडते हुए निशानो से सुसज्जित भगवान् की बरात पृथ्वी का कपायमान कर रही थी।

स्त्रिया छतो पर वेठकर और पुरुप राजमार्ग के दोनो ओर श्रेणी–वद्ध खड हाकर बरात दख रहे थे। बरात को देखकर तथा कोई श्रीकृष्ण के वैभव का दखकर चकित रहता था कोई कहता था कि वर बहुत सुन्दर है, ऐसा वर ता आज तक किसी भी कन्या ने न पाया होगा। कोई कहता था कि वर का रूप–रग श्रीकृष्ण क रूप–रग से बहुत मिलता–जुलता है कोई अपरिचित व्यक्ति ता दाना को देखकर सहोदर भ्राता ही मानेगा। कोई कहता था हैं भी ता भाइ ही सहादर भाई म ओर चचेर भाई मे अन्तर ही क्या है? कोई कहता था– श्रीकृष्ण अपन इस भाई स वहुत स्नेह करते हे। अपने भाई के लिए वे स्वय ही याचक वने थे। काई कहता था स्नेह होना स्वाभाविक ही हे योग्य भाइ स कान स्नह न करेगा।

इस प्रकार स सव लाग वरात ओर वर को देखकर प्रसन्न होते हुए अपनी–अपनी दृप्टि आर वुद्धि के अनुसार भिन्न–भिन्न सम्मति प्रकट करते थे। दर्शन क लाग भी वडी उमग क साथ दर्शको की वात सुनते भिन्न–भिन्न

प्रकार की चेष्टा करते चले जा रहे थे। कोई महावत अपने हाथी को अकुश लगाकर झुमाता जाता था कोई घुडसवार घोडे को एड लगाकर उसे नचाता—कुदाता जाता था। कोई रथी अपनी मूछो को ऐठता हुआ अपनी युगल बाहु आगे किये बैठा था। बाजा बजाने वाले लोग भी उत्साह से नया—नया राग बजा रहे थे। गायकगण भी नवनिर्मित गीत गाते जा रहे थे और बन्दीजन भी उच्चस्वर मे विरुद सुनाते जा रहे थे।

भगवान् अरिष्टनेमि की बरात उग्रसेन के महल की तरफ चली जा रही थी। विमानो मे बैठकर देवता लोग भी बरात की शोभा देख रहे थे और दूल्हा रूप मे भगवान् अरिष्टनेमि का दर्शन करके प्रसन्न हो रहे थे। दक्षिणार्द्ध लोक के स्वामी शक्रेन्द्र महाराज को जब यह ज्ञात हुआ कि भगवान् अरिष्टनेमि विवाह करने के लिए जा रहे हैं तब उन्हे अत्यधिक आश्चर्य हुआ। वे विचारने लगे कि पूर्व के इक्कीस तीर्थंकर तो यह कह गये है कि भगवान् अरिष्टनेमि बाल—ब्रह्मचारी होगे लेकिन भगवान् अरिष्टनेमि दूल्हा बनकर तथा बरात सजाकर विवाह करने के लिए जा रहे हैं। तो क्या पूर्व के तीर्थंकरो की भविष्यवाणी असत्य होगी। तीर्थंकरो की वाणी तो कदापि असत्य नही हो सकती। इस प्रकार आश्चर्य मे पडकर शक्रेन्द्र महाराज ने अवधिज्ञान का उपयोग किया। अवधिज्ञान द्वारा शक्रेन्द्र को यह मालूम हो गया कि भगवान् विवाह करने के लिए नही जा रहे हैं, किन्तु विवाह के बहाने ससार के सन्मुख एक महान आदर्श रखने जा रहे हैं। यह जानकर शक्रेन्द्र बहुत ही प्रसन्न हुए। उनके हृदय मे भी स्थूल दृष्टि द्वारा भगवान् की अद्भुत बरात देखने की इच्छा हो गई।

बरात देखने के लिए सौधर्मपति शक्रेन्द्र ब्राह्मण का रूप धारण करके आये। वे आकर श्रीकृष्ण से कहने लगे कि आप जिस लग्न मे अपने भाई का विवाह करने जा रहे हैं उस लग्न मे आपके भाई का विवाह हो ही नही सकता। आपको किस मूर्ख ज्योतिषी ने यह लग्न बतलाया है। छद्मवेशधारी शक्रेन्द्र की बात सुनकर और उनकी किसी प्रकार की चेष्टा देखकर कृष्ण समझ गये कि ये ब्राह्मण नहीं हैं, किन्तु कोई दूसरे ही हैं। वे शक्रेन्द्र से कहने लगे कि ब्राह्मणदेव, यद्यपि आपका आगमन आनन्ददायक है और जो—कुछ कह रहे हैं वह भी हमारे हित की दृष्टि मे रखकर ही कहते होगे, लेकिन बिना आमत्रण आना और बिना पूछे ही इस प्रकार की बात कहना मर्यादा—विरुद्ध है। आप कृपा करके अनावश्यक सन्देह या विघ्न डालने की चेष्टा न करिये।

कृष्ण की बात सुनकर शक्रेन्द्र मुस्कराये और कहने लगे कि मेरा उद्देश्य सन्देह या विघ्न उत्पन्न करना नहीं है आप मेरी ओर से किसी प्रकार की शका मत करिये। मैंन तो जो बात मेरी समझ मे आई वह आप से कही हे। में भी यह देखूगा कि भगवान् अरिष्टनेमि का विवाह किस प्रकार से होता हे।

बरात उग्रसेन के महल से कुछ दूर रही तब उग्रसेन अपने परिवार सम्बन्धी और सेना सहित बडी धूम से बरात की अगवानी करने के लिए चले। उग्रसेन के महल से कुछ दूरी पर बरात और अगवानी के लिए गये हुए लोगो का सम्मिलन हुआ। दोनो ओर के लोग परस्पर मिलने और एक–दूसरे की प्रशसा करके प्रसन्नता प्रकट करने लगे। महाराज उग्रसेन दसो भाई समुद्रविजय से तथा श्रीकृष्ण, बलदेव आदि से मिलकर अपने अहोभाग्य का वर्णन करते हुए उनकी प्रशसा करने लगे और उनका उपकार मानने लगे। इस प्रकार कुछ देर तक सम्मिलन का दर्शनीय दृश्य रहा और फिर साथियो सहित महाराज उग्रसेन की बरात को साथ लेकर तोरणद्वार को चले।

बरात आ रही है इससे उग्रसेन के महल मे बडी धूम मची हुई है। राजमती को उसकी सखिया श्रृगार कराने मे लगी हुई हैं। श्रृगार कराती हुई राजमती की सखिया परस्पर विवाह सम्बन्धी हास्यभरी बाते भी करती जा रही हैं। एक कहती है कि अब तो हमारी राजकुमारी भी उसी तरह शोभा पाने लगगी जिस तरह वृक्ष के साथ लता शोभा पाती है।

दूसरी– हा और फिर हम–तुम सब को भी उसी तरह भूल जावेगी जिस तरह चन्द्र को दखकर चकोरी सब को भूल जाती हे।

तीसरी– कही ऐसा भी हो सकता है। राजकुमारी बचपन स जिनके साथ रही ह अपनी उन प्यारी सखिया को केसे भूल सकती हे?

चाथी– तू बडी मूर्ख जान पडती है। प्रिय सखा के मिल जाने पर बचारी सखिया का कान स्त्री नहीं भूल जाती?

पाचवीं– ओर सखा भी केसा मिला ह। जिसकी समानता करन वाला ससार म काइ अन्य पुरुष हे ही नही। ऐसा सखा पाकर सखिया को भूल जाना स्वभाविक भी हे।

छठी– तुम लाग घबराती क्या हा। राजकुमारी हम–तुमका भी अपने साथ ही ल जावगी। हम राजकुमारी अपन स दूर न करगी।

सातवी– राजकुमारी इतनी भाली नही हे कि तुम्ह अपने साथ ल जाव। तुम्ह साथ क्या ल जाव? तुम वहा भी एसी बात करक राजकुमारी को

लज्जित ही तो करोगी। तुम्हारी बातो से लज्जित होकर राजकुमारी को अपने पिय पति से थोडी–बहुत देर के लिए और विलग ही तो होना पडेगा!

राजमती की सखिया राजमती को इस प्रकार की व्यग्यभरी बाते सुना रही हैं। अपनी सखियो की बाते सुनकर राजमती भी मुस्करा रही है। उसके हृदय मे अत्यधिक पसन्नता है फिर भी वह कभी किसी सखी की बात सुन कर रूठ जाती है, किसी पर रुष्ट होने लगती है और किसी से चली जाने को कहती है लेकिन उसके हृदय की प्रसन्नता मुस्कराहट के रूप मे उसके रूठने और रुष्ट होने की कृत्रिमता पकट कर देती है, इस कारण उसकी सखिया ठिठोली–भरी बाते और करने लगती हैं।

भगवान् की बरात तोरणद्वार की ओर चली आ रही थी। चलते–चलते बरात ऐसे स्थान पर आई जहा उग्रसेन के महल से भी दिखाई देती थी।

उग्रसेन के मइल के गोखडो मे खडी होकर महल की स्त्रिया बरात देखने लगी। सखियो सहित राजमती भी बरात को देख रही थी। उसकी दृष्टि बरात पर नही थी किन्तु बरात के नायक पर थी। बरात के नायक भगवान अरिष्टनेमि का दूर से ही दर्शन करके राजमती अपने हृदय मे अनेक पकार के विचार कर रही थी। वह सोचती थी कि मैं बडी सद्भागिन हू, इसी से मुझे भगवान् अरिष्टनेमि ऐसे अलौकिक पति की पत्नी बनने का सौभाग्य पाप्त हुआ है। भगवान् की मुझ पर कैसी कृपा है कि मुझे अपनी अर्धांगिनी बनाकर ले जाने के लिए स्वय ने यहा पधारने का कष्ट किया है। आज मेरा पाणिग्रहण करके भगवान् मुझे अपनी धर्मपत्नी बनावेगे। मैं भी आज भली प्रकार अपने हृदयेश्वर का दर्शन कर सकूगी। भगवान् की पत्नी बनने का सौभाग्य प्राप्त होने के साथ ही मुझे महारानी शिवादेवी और महाराजा समुद्रविजय जैसे सास–ससुर की सेवा का सुयोग भी प्राप्त होगा। मैं त्रिखण्डपति श्रीकृष्ण और बदलेदवजी की अनुजवधू बनूगी। बहन सत्यभामा मेरी जेठानी होगी। धन्य है मुझको! ससार मे मुझ–सी भाग्यशालिनी स्त्री दूसरी कौन होगी!

राजमती इसी प्रकार के आशापूर्ण अनेको विचार करती हुई प्रसन्न हो रही थी। इतने ही मे उसकी दाहिनी आख फरक उठी। साथ ही दाहिना अग भी फडकने लगा। इस अपशकुन ने उसकी प्रसन्नता को चिन्ता मे परिणत कर दिया। उसका प्रसन्न मुख गम्भीर बन गया। अपशकुन ने उसके आशा से भरे विचारो को बडी ठेस पहुचाई। वह सोचने लगी कि क्या मेरी आशाए

अपूर्ण रहेगी? क्या मेरे सब विचार स्वप्न--सुख के समान ही सिद्ध होगे? क्या मैं भगवान अरिष्टनेमि की पत्नी न बन सकूगी!

राजमती की सखिया राजमती को अब तक प्रसन्न देख रही थी। वे बीच-बीच मे राजमती की पसन्नता बढाने के लिए कोई-न-कोई बात कहकर उसकी मुस्कराहट देखने के लिए उसके मुह की ओर देखने लगती थी लेकिन इस बार उन्होने राजमती के मुह की ओर देखा तो उन्हे राजमती के मुह पर प्रसन्नता के बदले चिन्ता का सामाज्य दिखाई पडा। वे आश्चर्य स पूछने लगी- सखी राजमती आप उदास क्यो हो गई? कही हमारी किसी बात स तो रुष्ट नही हुई हैं?

राजमती- नही सखी तुम्हारी बातो से मैं कभी भी रुष्ट नही हुई तो आज क्या रुष्ट होऊगी?

सखी- फिर उदासी का क्या कारण है? अब तक तो आप प्रसन्न थी सहसा किस चिन्ता मे पड गई? कही यह विचार तो नही हो आया कि अब मुझे अपने माता-पिता का घर छोडकर जाना पडेगा?

राजमती- नही सखी यह बात भी नही है।

सखी- फिर ऐसा कौनसा कारण है जिससे आप चिन्तित हो गई हैं? हमे भी बताओ। हम कोई दूसरी तो नही हैं।

राजमती- सखी भावना तो कुछ और हे परन्तु दाहिनी आख और दाहिना अग फरक कर कुछ और ही कहता है। अपशकुन कहते है कि अभागिन राजमती तू! जो-कुछ सोचती हे उसे भूलजा तेरी आशाए निरर्थक ह?

सखी- बस! दाहिनी आख और दाहिना अग फरकने मात्र से इतनी चिन्ता! सखी यह बात तो कोई ऐसी नही हे कि जो इस प्रकार चिन्ता मे पड जाना पड। फरकना खुजलाना आदि तो शरीर का स्वभाव ही हे इस पर इतना विचार करने की क्या आवश्यकता! बरात तोरणद्वार पर आ रही हे अभी थोडी दर म तोरणद्वार पर आ ही जाती हे और आज भगवान अरिष्टनमि के साथ आपका विवाह भी हो जावगा फिर हृदय मे किसी प्रकार की चिन्ता लाने की क्या आवश्यकता हे! आप चिन्ता छाडो और प्रसन्न होओ। एसे शुभ अवसर पर अशुभ की तो आशका ही नही करनी चाहिए।

अध्याय छः

करुणा–अनुकम्पा

महापुरुष या बडे आदमी और साधारण पुरुष या छोटे आदमी मे क्या अन्तर है इस बात का विचार करने पर अनेक ऐसी बाते ज्ञात होगी, जो दोनो के बीच के अन्तर को स्पष्ट करती है। वैसे मनुष्य तो दोनो ही श्रेणी के लोग हैं परन्तु एक मे कुछ विशेषता होती है और दूसरे मे कुछ न्यूनता। गुरुता और लघुता का कारण यही है। विशेषता है वह महापुरुष या बडा आदमी माना जाता है और जिसने विशेषता नही है, अपितु न्यूनता है वह साधारण या छोटा आदमी माना जाता है।

अब देखना यह है कि किन विशेषताओ के कारण तो मनुष्य महापुरुष या बडा आदमी माना जाता है और किस न्यूनता के कारण साधारण या छोटा आदमी माना जाता है। दृष्टिभेद के कारण गुरुता और लघुता के कारणो मे भी भेद हो जाता है। कोई आदमी उसे बडा मानता है, जिसमे शारीरिक बल–पराक्रम अधिक है और कोई उसे छोटा मानता है, जिसमे इसकी कमी है। कोई आदमी उसे बडा मानता है जो बुद्धिमान है और कोई उसे छोटा मानता है जो बुद्धिहीन है। किसी आदमी की दृष्टि मे बडा आदमी वही है जो धन–वैभव सम्पन्न है और जिसके पास धन–वैभव नही है वह छोटा आदमी है। इस प्रकार भिन्न–भिन्न आदमी गौरव और लाघव के कारण भी भिन्न–भिन्न मानते हैं परन्तु धर्म को जानने वाले लोग गुरुता और लघुता के जो कारण मानते हैं वे इन कारणो से सर्वथा भिन्न हैं। उनका कथन है कि शारीरिक बल–पराक्रम का न होना गुरुता–लघुता का कारण नही हो सकता। शारीरिक बल–पराक्रम तो उस आदमी मे होता है जो अनेक पर अत्याचार करता है अनेक को सताता है और अनेक को लूटने–खसोटने का प्रयत्न

करता है। धन–वैभवसम्पन्न होना भी बडप्पन का कारण नहीं हो सकता। अनेक धन–वैभवसम्पन्न लोग ऐसे भी होते हैं जो गरीबो की रोटी छीन–छीन कर धनवान बन जाते हैं और फिर उसी धन के द्वारा अन्याय–अत्याचार करते और पाप फैलाते हैं। बुद्धि भी गौरव का कारण नही हो सकती। क्योकि बुद्धिमान तो वह भी है, जो बुद्धि द्वारा दूसरो को कष्ट मे डालता है। इस प्रकार शारीरिक बल धन, वैभव या बुद्धि के कारण कोई मनुष्य बडा नही कहा जा सकता। हम तो उसे ही बडा कहेगे, जिसमे सहृदयता है सहिष्णुता हे दया है तथा दूसरे के दु ख से दु खी होने और दु खी को सुखी बनाने का स्वभाव है। जो दूसरो को दु ख मे नही डालता है दीन–दु खी की सहायता करता हे जो अपने हित के लिए भी दूसरे का अहित नहीं करता और जिसकी दृष्टि पाप से बचते रहने की है वही बडा आदमी है। ऐसा ही व्यक्ति महापुरुष ह फिर चाहे वह बल–बुद्धि–सम्पन्न हो या न हो। लेकिन यदि उसमे उक्त गुण विद्यमान हैं तो उसकी गणना सज्जनो या महापुरुषो मे ही होगी। इसके विरुद्ध जिसमे गुण नही हैं वह कैसा भी बल, धन बुद्धि–सम्पन्न हो हमारी दृष्टि म वह महापुरुष नही है किन्तु साधारण या छोटा आदमी ही है।

महापुरुष चाहे किसी भी कार्य म लगे हो और कही भी बैठे हो उनकी दृष्टि सदा दु खिया पर ही रहेगी। इस बात का वे सदा ध्यान रखते हैं कि मेरे किसी भी कार्य बात या विचार से किसी को अनावश्यक दु ख न हो। वे दीन–दु खी का कष्ट मिटाने की ही चेष्टा मे रहते हैं इसके लिए वे स्वय का हित भी त्याग देते हैं और स्वय को कष्ट मे भी डाल देते हैं। उनमे यही विशेषता होती ह। इस विशेषता के कारण ही वे जनता के हृदय पर अपना आधिपत्य जमा लेते ह।

भगवान् अरिष्टनमि राजकुमारी राजमती से विवाह करने के लिए जा रहे ह। व अनक वस्त्रालकार धारण किये बेठ ह। उन पर छत्र छाया किये हुए ह चवर ढुल रह हं और अनेक राजा–महाराजा आदि उनके पीछ चल रह हे। साधारण पुरुप क लिए ऐसा समय बड अभिमान का हाता हे भावी सुख क विषय म अनक प्रकार की कल्पनाए करन का हाता ह और प्रसन्नता क आग सबका भुला दन का था लकिन भगवान् अरिष्टनमि साधारण पुरुष न थे जा इन कारणा स दया करुणा सहृदयता आदि का विस्मृत कर देत।

वे तो इस अवसर को करुणा का महत्त्व बताने के लिए ही अत्यधिक उपयुक्त समझते थे। बल्कि इस उपयुक्त अवसर को पाप्त करने के लिए ही उन्होने विवाह की तैयारी का विरोध नही किया था, किन्तु चुपचाप उसमे भाग लेते जा रहे थे। ऐसे अमूल्य अवसर को वे कैसे जाने दे सकते थे? यदि विवाह की प्रसन्नता मे ये इस अवसर को भूल जाते तब तो उनकी गणना महापुरुषो मे न होती और न उनके गुणगान का ही कोई कारण होता।

भगवान् अरिष्टनेमि की बरात तोरणद्वार की ओर आ रही थी। वह उस बाडे और पींजरे के सामने आई, जिसमे अनेक पशु—पक्षी वध करने के लिए बन्द किये गये थे। स्वतत्रता का अपहरण होने से, मरने के भय से और अश्रुतपूर्व नाद एव जन—कोलाहाल से वे पशु—पक्षी व्याकुल हो रहे थे। वे अपनी भाषा मे च्या—म्या आदि शब्द करके विलाप कर रहे थे, लेकिन उस समय उन बेचारो के विलाप पर ध्यान देने, उन पर करुणा करने और उन्हे भयमुक्त करने की फुरसत किसे थी! सब लोग अपनी—अपनी धुन मे मस्त थे। साधारण पुरुष और महापुरुष की परीक्षा का समय भी यही था।

बाडो पीजरो मे बन्द किये हुए वे पशु—पक्षी दु ख के मारे चिल्ला रहे थे। एक दु ख तो उन्हे अपने प्रियजनो के छूटने का दु ख था। किसी के बच्चे और साथी जगल मे ही छूट गये थे और किसी के उस घर मे, जिसमे वह रहता था। प्रियजनो का वियोग सासारिक जीवो को कैसा दु ख देता है, इस बात को ससार के सभी लोग जानते हैं। दूसरा दु ख उन्हे स्वतत्रता छिन जाने का था। वे जगल की खुली हवा मे अपने साथियो के साथ स्वतत्रतापूर्वक विचरा करते थे एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते थे, कभी एक वृक्ष और कभी दूसरे वृक्ष के नीचे या ऊपर बैठते थे परन्तु उनकी यह स्वतत्रता छिन गई। उन्हे बन्धन मे डाल दिया गया था। स्वतत्रता छिनने और बन्धन मे पडने से कैसा दु ख होता है, इस बात का पता तो सारे भारत को ही है। सारा भारत ही यह दु ख अनुभव कर रहा है। भारत एक बडा कारागार है इसलिए यदि इसमे रहने वालो मे से शायद कोई आदमी अभ्यस्त होने के कारण इस कारागार से दु ख न मानता हो उसे छोटे—छोटे जेलखानो के देखने से पता लग ही जावेगा कि बन्धन मे पडने से कैसा दु ख होता है। जेल मे अनेक ऐसे आदमी भी होते हैं, जिन्हे जेल से बाहर रहने पर एक समय भी पेट—भर रोटी

मिलना कठिन है और जेल मे दोनो समय रोटी मिलती है। बहुतो का शरीर भी हृष्ट–पुष्ट हो जाता है, फिर भी उसमे रहने वाला कोई भी आदमी अपने को सुखी नही मानता। सब लोग यही चाहते हैं कि हम इस बन्धन से मुक्त हो जावे तो अच्छा। किसी पले हुए तोते को पिजरे मे बन्द रहने पर अच्छे से अच्छा भोजन मिलता है फिर भी उसमे से वह मौका पा निकल ही भागता है। वह जगल मे एक–एक कण चुनकर खाने मे आनन्द मानता है लेकिन पिजरे मे बन्द रहकर अच्छे–अच्छे भोजन खाना उसे पसन्द नहीं आता। बाडे पिजरे मे बन्द वे पशु–पक्षी भी ऐसा ही दु ख अनुभव कर रहे थे।

इसके सिवाय पशु–पक्षियो को बडा–भारी दु ख मृत्यु का हो रहा था। उनके हृदय मे भय हो रहा था कि हम न मालूम कब मार डाले जावेगे। उस बाडे मे उनको खाने–पीने को मिलता था लेकिन जिस प्रकार फासी पर चढाये जाने वाले को अच्छे से अच्छा भोजन भी बुरा और स्वादहीन मालूम होता है उसी तरह उन पशु–पक्षियो को भी खाना–पीना बुरा लगता था। जिस प्रकार मारे जाने वाले मनुष्य के सामने अपनी मृत्यु ही ताण्डव दिखाया करती है उसी प्रकार उन पशु–पक्षियो के सामने भी उनकी मृत्यु ताण्डव दिखा रही थी।

मनुष्य अपने सुख–दु ख पर से दूसरे का सुख–दु ख सहज ही जान सकता है। वह समझ सकता है कि जिस बात से मुझे दु ख हो सकता है, उसी बात से दूसरे को कैसे सुख हो सकता है। लेकिन स्वार्थ–भावना उसे इस प्रकार के विवेक से शून्य बना देती हैं। स्वार्थरत मनुष्य इस बात को बिलकुल ही भूल जाता है कि मेरे इस कार्य से दूसरे को दु ख होता है या सुख। वह थोडी देर के लिए भी यह नही सोचता कि मैं अपने सुख के लिए दूसरो के साथ जो व्यवहार करता हू, यह दूसरा भी यदि अपने सुख के लिए मेरे साथ ऐसा ही व्यवहार करे तो मुझे कैसा दु ख होगा। पशु–पक्षियो की अपेक्षा मनुष्य अधिक विवेकवान माना जाता है लेकिन विवेकवान होने पर भी मनुष्य स्वार्थवश विवेकहीन बन जाता हे और समझने लगता हे कि दु ख ता केवल मुझे ही होता ह दूसरे को तो दु ख होता ही नही है, या वह दूसरा स्वय दु ख उठाकर मुझ सुख दन क लिए ही पेदा हुआ ह। यदि मनुष्य स्वार्थ–भावना स विवेकहीन न बन और जैसा सुख–दु ख अपने लिए मानता है वैसा ही

दूसरे के लिए भी माने तो वह किंचित् भी पाप मे पवृत्त न हो। लेकिन ससार मे ऐसे बहुत कम मनुष्य निकलेगे जो स्वार्थ छोडकर अपने ही समान दूसरे का भी सुख–दु ख माने या दूसरे को दु ख मे न डालने के लिए दूसरे को सुख पहुचाने के लिए अपना स्वार्थ छोड दे। बल्कि बहुत आदमी तो ऐसे भी निकलेगे जो किसी पकार का स्वार्थ न होने पर भी दूसरे को कष्ट पहुचाते हैं। विवेकहीन माने जाने वाले पशु भी निष्कारण किसी की हानि करने को तैयार नही होते परन्तु विवेकसम्पन्न मनुष्य कभी–कभी पशुओ से भी नीच बन जाता है और अकारण ही दूसरे की हानि करने लगता है। इस विषय मे भर्तृहरि ने भी कहा है कि –

एके सत्पुरुषा परार्थघटका स्वार्थ परित्त्यज्ययेे।
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृत स्वार्थान्विरोधेन ये।।
तेऽमी मानुष राक्षसा परिहत स्वाथीय निघ्नन्ति ये।
ये निघ्नन्ति निरर्थक परहित ते के न जानीमहे।।

भावार्थ– जो लोग अपने स्वार्थ का खयाल न करके दूसरे का भला करते हैं वे अवश्य ही सत्पुरुष हैं और जो दूसरे के भले के साथ–साथ अपना भला भी करते हैं वे साधारण पुरुष हैं। जो अपने भले के लिए दूसरे का काम बिगाडते हैं वे मनुष्य–रूप मे राक्षस हैं और जो बिना कारण ही दूसरो को हानि पहुचाते हैं उन्हे क्या कहे यह हमारी समझ मे नही आता।

ससार के सभी प्राणी सुख चाहते हैं दु ख कोई नही चाहता। बल्कि सभी लोग दु ख से बचे रहने और सुख प्राप्त होने का उपाय करते रहते हैं। मृत्यु, जरा व्याधि या दूसरे मानसिक आदि दु ख से सभी जीव डरते रहते है और ऐसे दु ख से त्राण पाने की खोज मे रहते हैं। यह बात दूसरी है कि सुख की प्राप्ति और दु ख का नाश चाहते हुए भी कोई भ्रमवश विपरीत मार्ग ग्रहण करे, परन्तु उद्देश्य सबका सुख प्राप्त करना ही होता है। ऐसा होते हुए भी मनुष्य दूसरो के लिए यह बात भूल जाता है। बल्कि कभी–कभी तो दूसरो के सुख से ईर्ष्या करने लगता है या दूसरे को दु खी देखकर प्रसन्न होता है। यह नही सोचता कि दु ख मुझे जैसा बुरा लगता है वैसा ही बुरा दूसरे को भी लगता होगा। यदि ससार के सब मनुष्य अपने सुख–दु ख के समान ही दूसरे का सुख–दु ख मानने लगे तो ससार से हिसा झूठ चोरी व्यभिचार और पदार्थ–ममत्व का पाप ही उठ जावे।

भगवान की बरात के बहुत–से लोग भगवान के आगे ही थे, फिर भी उन दीन पशु–पक्षियो की करुण चीत्कार से उनका हृदय द्रवित नहीं हुआ। सभव है कि उन पशु–पक्षियो की हृदयद्रावी पुकार की ओर किसी ने ध्यान ही न दिया हो या किसी का ध्यान गया भी होगा तो वह इस विचार से प्रसन्न हुआ होगा कि मुझे इन हृष्ट–पुष्ट पशु पक्षियो का मास खाने को मिलेगा। नीतिकारो का कथन ही है कि मासभोगी मे दया व मदिरापान करने वालो मे पवित्रता नहीं हो सकती। ऐसी दशा मे उन लोगो का हृदय द्रवित हो तो कैसे! बरात मे आगे की ओर जितने भी आदमी थे वे सब उग्रसेन के महल की ओर आगे को ही बढते गये परन्तु भगवान् अरिष्टनेमि आगे न बढे। किसी अन्य ने तो उन पशु–पक्षियो पर दया नहीं की हो परन्तु भगवान् उनकी उपेक्षा केसे सकते थे? भगवान् का हृदय उन भयग्रस्त जीवो की करुणा से भर आया। भगवान ने उस बाडे–पीजरे के सामने आते ही सारथि से पूछा– सारथि! इन बेचारे सुखाभिलाषी पशु–पक्षियो को बन्धन मे क्यो डाला गया है?

यद्यपि भगवान् अरिष्टनेमि अतिशयज्ञानी होने के कारण इस बात को भली प्रकार जानते थे कि इन पशु–पक्षियो को मास के वास्ते मारा जाने के लिए बन्धन म डाला गया है, लेकिन यदि वे अपनी इस जानकारी के आधार पर ही पशु–पक्षियो पर करुणा करके उन्हे बन्धनमुक्त करा देते तो बरात के लाग तथा दूसर लोग पशु–पक्षियो को बन्धनमुक्त कराने का कारण न समझ पाते आर जिस उद्‌देश्य को भगवान् पूरा करना चाहते थे, वह पूरा न होता। इसलिए भगवान ने सब–कुछ जानते हुए भी सारथि से उक्त प्रश्न किया।

भगवान् क प्रश्न के उत्तर मे सारथि कहने लगा– हे प्रभो ये समस्त भद्रप्राणी आपके विवाह के कारण ही एकत्र किये गये है और बाडे–पिजरे म बन्द रख गय हैं। इनका वध करके आपके विवाहोपलक्ष्य मे लोगो को इनके मास का भाजन कराया जावगा।

सारथि की बात क उत्तर म भगवान् कहने लगे– देखो तो ये दीन जीव मरण–भय स किस प्रकार दु खित हो रह हैं! तृण फल आदि स निर्वाह करन वाल आर किसी की हानि न करने वाले इन जीवो का वध मेर ही विवाह क कारण हागा! यदि मरा विवाह न हा ता य बचारे पशु–पक्षी इस प्रकार के

बन्धन मे क्यो पडे और इन्हे मरण–भय से क्यो दु खित होना पडे! मेरे निमित्त इन जीवो की हिसा मुझे परलोक मे श्रेयस्कर नही हो सकती। मैं तो हिसा को सर्वथा अनुचित समझता हू।

बाड़े–पिजरे मे बन्द पशु–पक्षी की हिसा न तो भगवान् स्वय ही करते थे, न दूसरे से कराते ही थे और वे उन पशु–पक्षियो का मास न खाने पर अनुमोदन के पाप से भी बच सकते थे। ऐसा होते हुए भी भगवान् ने उस हिसा का निमित्त कारण अपने को ही माना लेकिन धर्म को भली प्रकार न जानने वाले बहुत–से लोग समझते हैं कि हम स्वय अपने हाथ से कुछ न करे, बस इससे हमे पाप न होगा। फिर चाहे किसी कार्य मे उनकी प्रत्यक्ष या परोक्ष पेरणा ही क्यो न रही हो या वह कार्य उन्ही के लिए ही क्यो न किया गया हो वे अपने को उस कार्य के पाप से मुक्त समझते हैं और वह केवल इस कारण कि उन्होने उस कार्य को अपने हाथ से नही किया है। उदाहरण के लिए चीन के मास–विकेता अपनी दुकानो पर बोर्ड लगा रखते है कि 'विश्वास रखिये, यह जीव आपके लिए नही मारा गया है।' इस बोर्ड के लगे रहने पर वहा के बौद्ध लोग मास खरीद कर खाते हैं और अपने–आप को पाप से मुक्त तथा अहिसक समझते हैं। यह नही विचारते कि यदि हम मास न खरीदे तो मास के लिए कोई जीव मारा ही क्यो जावे! हम मास खरीदते हैं, इसलिए मास–विक्रेता जीव मारता है और ऐसी दशा मे हम पाप से कैसे मुक्त हो सकते हैं?

चीन के बौद्धो की तरह यहा के अनेक जैन भी अपने–आप को किसी कार्य के पाप से इसलिए मुक्त समझते हैं कि वह कार्य उन्होने अपने हाथो से नही किया है किन्तु अपने नौकरो से या किसी दूसरे से कराया है। कई घरो की स्त्रिया तो इसीलिए रसोई बनाने पानी छानने पानी गरम करने, आटा पीसने साग तरकारी ठीक करने झाडू निकालने पशुओं को घास–दाना देने आदि के लिए नोकर रखती हे और समझती है कि यह काम तो नौकर ने किया है इसलिए हमे इस काम की क्रिया नही लगी। यह नही समझती कि जो काम हमने ही कराया है जो हमारे ही लिए हुआ है और जिसके करने मे हमारी प्रेरणा है हम उस कार्य की क्रिया से कैसे बच सकती है! बल्कि दूसरो से काम कराकर हम और अधिक पाप कर रही हैं। यदि नौकर द्वारा

कराया गया काम हम स्वय करती तो हम श्राविका हैं, इसलिए अनावश्यक किसी जीव को कष्ट न हो इसका अधिक से अधिक ध्यान रख सकती थीं। नोकर लोग इस बात का बहुत कम ध्यान रखेगे, इस कारण वह कार्य अधिक कष्ट या हिसा होने पर सम्पादन होगा और इस प्रकार हमे अधिक पाप लगेगा इस बात को तो वे बिल्कुल भूल जानी हैं। यदि कोई आदमी इस बात की ओर उनका ध्यान खींचता भी है तो कह देती हैं कि वह पाप–कार्य हमने थोडी ही किया, जिसने किया, वह उसका फल भोगेगा। परन्तु वह कार्य किसके लिए किया गया और जिसके लिए किया गया है वह उसके पाप से केसे वच सकता है? यह बात उनके ध्यान मे ही नही आती। केवल स्त्रिया ही नहीं अनेक पुरुप भी ऐसे विचार रखते हैं। वहुत–से पुरुप भी दया करके अपने भोजन की सामग्री हलवाई द्वारा या किसी दूसरे के द्वारा बनवाते हैं अथवा बने हुए पदार्थ ले आते हैं और समझते हैं। कि हमने यह कार्य नही किया इसलिए हम पाप से मुक्त हैं। फिर चाहे एक छोटे चूल्हे के बदले बडी भटटी का आरम्भ क्यो न हुआ हो, वे तो अपने को आरम्भ के पाप से बचा हुआ ही मानत है। ऐसे लोगो के लिए कैसे कहा जा सकता है कि उन्होने धम क मर्म को समझा है? हो सकता है कि भगवान् अरिष्टनेमि के समय मे भी कुछ लाग एसे विचार रखत हो और उन्हे वोध देने के लिए ही भगवान् अरिष्टनमि न यह कहा कि 'मेरे निमित्त होने वाली यह हिसा परलोक मे मेरे लिए श्रयस्कर नही हो सकती।

भगवान् का वन्धन मे पडे हुए पशु–पक्षिया के लिए इस प्रकार करुणार्द्र दखकर सारथि न उन वन्धन मे पडे हुए समस्त पशु–पक्षियो को वन्धनमुक्त कर दिया। वन्धनमुक्त हाते ही वे पशु–पक्षी आनन्दित होते हुए अपने–अपन स्थान को भाग चले। उस समय वे केसे हर्षित हुए हाग यह वात ता वही व्यक्ति जान सकता हे जो मारा जाने के लिए वाध रखा गया हो और किसी एस ही कारण स वन्धनमुक्त हुआ हा।

सारथि क इस कार्य स भगवान् वहुत सन्तुष्ट ओर प्रसन्न हुए। व उन लोगो म स न थ जो प्रसन्न होकर भी कवल मोखिक वाहवाही या धन्यवाद देकर ही रह जात ह। वे जानत थ कि मोखिक वाहवाही या धन्यवाद न तो खान क काम आता ह न पीन क आर न पहिनन क। केवल मोखिक धन्यवाद [illegible]–व्यवहार म एक गृहस्थ की महायता नही कर सकता। न मोखिक धन्यवाद [illegible] ही हा सकती ह। इसलिए भगवान् सारथि पर

केवल प्रसन्न होकर ही न रहे, किन्तु उन्होने अपने शरीर पर धारण किए हुए कुण्डल करधनी (कन्दोरा) प्रभृति बहुमूल्य आभूषण उतार कर सारथि को पुरस्कारस्वरूप प्रदान कर दिये। उन बहुमूल्य आभूषणो को पाकर सारथि भी कैसा प्रसन्न हुआ होगा, इसका अनुमान तो ससार मे प्राय सभी लोग कर सकते है।

सारथि को अपने आभूषण पुरस्कारस्वरूप प्रदान करके भगवान् ने उससे कहा– सखे अब मैं आगे नहीं जाना चाहता इसलिए मुझे लौटा ले चलो। भगवान् की यह आज्ञा सुनकर सारथि को बडा ही आश्चर्य हुआ। वह थोडी देर के लिए अवाक् रह गया और फिर कहने लगा– हे आयुष्मान्! यद्यपि आपकी आज्ञा का पालन करना मेरा कर्तव्य है। आपकी आज्ञा के विरुद्ध कुछ करने या कहने का मुझे अधिकार नही है, फिर भी मैं आपसे यह पार्थना करना उचित समझता हू कि आप एक बार अपनी आज्ञा पर पुन विचार करने की कृपा करिये। विवाह के ठीक अवसर पर तोरणद्वार से लौट जाना उचित न होगा और श्रीकृष्ण प्रभृति माननीय लोग ऐसा करने भी न देगे।

भगवान्– मैं अपने कर्तव्य को भलीभाति सोच–समझ चुका हू, अत तुम्हे किसी प्रकार की चिन्ता करने की आवश्यकता नही है। तुम तो वही करो, जो–कुछ मै कहता हू।

सारथि और कुछ कहने का साहस न कर सका। उसने, जिस रथ पर भगवान विराजे थे उसे पीछे की ओर मोडा। भगवान को पीछे की ओर लौटते देखकर सारी बरात मे कोलाहल मच गया।

उधर अग्रसेन के महल मे राजमती की सखिया राजमती को धैर्य बधा रही थी। वे कह रही थी– सखी राजमती, आप घबराइये मत धैर्य धरिये। दाहिनी आख और दाहिने अग का फरकना ऐसा कोई भयकर अपशकुन नहीं है जिसके कारण इस प्रकार चिन्ता मे पड जाना पडे।

राजमती– सखी तुम कुछ भी कहो, परन्तु हृदय धैर्य नहीं धरता। हृदय बार–बार यही कहता है कि बस! तेरी पुण्यकमाई समाप्त हो चुकी और थोडी ही देर मे उसके अभिनय का अन्तिम पर्दा गिरने वाला है।

सखी– बहन राजमती, आप इतनी क्यो घबरा गई हैं! थोडा तो धैर्य धरो! आप अपनी आखों से देख रही है कि वरराज आपके साथ विवाह करने के लिए पधार रहे हैं, फिर इस प्रकार की आशका का क्या कारण हो सकता है?

राजमती की सखिया इस प्रकार राजमती को समझा रही थीं। राजमती उनकी बाते सुनती हुई सजल नेत्रो से भगवान् की ओर देख रही थी और अपने हृदय मे अनेक प्रकार के अनिष्ट की आशका कर रही थी। इतने ही म उसने देखा कि भगवान के सारथि ने बाडे-पिजरे मे बन्द पशु-पक्षियो को बन्धनमुक्त कर दिया है, भगवान ने अपने आभूपण उतार कर सारथि को दे दिये हैं और भगवान् पीछे की ओर लौट पडे हैं। सारथि द्वारा पशु-पक्षियो की मुक्ति और भगवान् द्वारा सारथि को आभूपणो को दिया जाना देख-देख कर राजमती के हृदय की आशका उग्ररूप धारण करती जा रही थी। भगवान् का लौटना देखकर तो उसका धैर्य बिल्कुल ही छूट गया! वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडी। उसकी सखिया उसको गिरता देखकर उसे सम्हालने दोडी! वे भूमि पर मूर्च्छित हुई राजमती को उठाकर उस पर पखा करने लगी। वरराज वापस लौटे जा रहे हैं इससे राजमती मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडी है यह समाचार सारे महल मे बिजली की तरह फैल गया। महल का आमोद-प्रमोद वन्द हो गया। सब जगह सन्नाटा छा गया। राजमती के माता-पिता के हृदय को राजमती की मूर्च्छा का दु समाचार सुनकर बडा दु ख हुआ। व दोडे हुए राजमती के महल म आये और राजमती की मूर्च्छा दूर करने का प्रयत्न करने लगे।

उग्रसेन के महल मे तो राजमती की मूर्च्छा से खलवली मची हुई थी और वरात म भगवान् अरिष्टनेमि के लौटने से खलवली पडी हुई थी। वरपक्ष और कन्या पक्ष दानो ही मे अशान्ति उत्पन्न हो गई थी। दोना ही ओर का परिवार चिन्ताग्रस्त हा रहा था परन्तु भगवान् अरिष्टनेमि के हृदय मे न अशान्ति थी न चिन्ता, अपितु वे पूर्ववत् प्रसन्न थे।

यह नही भूलना चाहिये कि वाह्य म दिखाई देने वाली शान्ति शान्ति नही परन्तु आग भडकाने वाली बन जाती ह और वाहर दिखाई देने वाली उन्पाद्भविष्य की शान्ति का निमित्त वन सकती हे। इसका सव आधार मूलभूत मनुष्य की भावना पर निर्भर ह।

अध्याय सात
उपदेश

महापुरुषो का यह स्वभाव होता है कि वे जिस कार्य को एक बार बुरा समझ लेते हैं उसे आप तो सदा के लिए त्याग ही देते हैं, साथ ही दूसरे लोगों को भी उस कार्य की बुराई समझा कर उसके त्याग का उपदेश करते हैं। इसी प्रकार जिसे वे एक बार अच्छा समझ लेते हैं, उसे आप भी सदा के लिए अपना लेते हैं और दूसरे को अपनाने का सदा उपदेश करते रहते हैं। वे किसी भी अच्छे या बुरे कार्य या विचार को गोपनीय नही रखते, किन्तु उसे सब पर प्रकट कर देते हैं और साथ ही साथ उसके विषय मे स्वय का जो अनुभव है उसका लाभ भी दूसरे को देते हैं। फिर चाहे ऐसा करने मे उन्हे कितनी ही आपत्तियो का सामना क्यो न करना पडे, वे अपने अनुभूत विचारो का प्रचार करने मे आगे बढते ही जाते हैं। वे घोर से घोर विरोध सहते हैं, कठिन से कठिन तप स्वीकार करते हैं और प्रिय से प्रिय वस्तु भी त्याग देते हैं तथा यह सब–कुछ करते हैं अपने अनुभूत विचारो का प्रचार करने के लिए। कभी–कभी तो ऐसा करने वालो को अपने प्राण तक खो देने पडते है, लेकिन वे महापुरुष अन्त समय तक अपने ध्येय पर दृढ रहते हैं, प्राणो के लोभ मे पडकर अपने निश्चय से विचलित नही होते।

अपने विचार और अनुभव के प्रचार मे उन महापुरुषो का उद्देश्य यह नही रहता कि हमे मान–बडाई मिले लोग हमारे अनुयायी हो या हम महापुरुष माने जावे। उनका लक्ष्य तो केवल ससार का उपकार ही रहता है। वे बुरे कार्य को त्यागकर और अच्छे कार्य को अपनाकर अपना कल्याण तो कर ही लेते हैं परन्तु उनकी दृष्टि मे स्वहित–साधन की अपेक्षा परोपकार का महत्त्व अधिक रहता है। इसीलिए वे सासारिक सुख–वैभव त्याग कर, अनेक

कष्ट सहकर अपने प्राणो की बाजी लगाकर परोपकार–रत हो जाते हैं। उन्हे ऐसा करने से रोकने मे कोई समर्थ नहीं हो सकता। वे इस धर्म मे बाधक होने वाले समस्त बन्धनो को तोड डालते हैं।

भगवान् अरिष्टनेमि ऐसे कार्य के लिए ही उग्रसेन के द्वार पर से लौट पडे थे। वे आये तो थे दूल्हा बनकर, परन्तु विवाह करके अपने–आप को बन्धन मे डाल लेने की अपेक्षा उन्होने उस विचार का प्रचार अधिक महत्त्वपूर्ण समझा जो उनकी दृष्टि मे अच्छा था और जिसका प्रचार होने पर ससार के समस्त प्राणियो को लाभ पहुच सकता था।

भगवान् का रथ पीछे की ओर लौट पडा। श्रीकृष्ण बलदेव समुद्रविजय प्रभृति प्रमुख–प्रमुख यादव भगवान् के पीछे की ओर लौटने का कारण न समझ सके। चिन्तित हृदय वे दौडकर भगवान् के वाहन के पास आये और सारथि से वाहन लौटाने का कारण पूछने लगे। सारथि मे ने बाडे–पिजरे मे वन्द पशु–पक्षियो पर भगवान का करुणार्द्र होना स्वय के द्वारा उन पशु–पक्षियो का वन्धनमुक्त किया जाना और भगवान् का प्रसन्न होकर पुरस्कार प्रदान करना आदि विवरण सुनाकर भगवान् की वह आज्ञा भी सुनाई जिसके अनुसार उसने वाहन लोटाया था। सारथि की बात सुनकर श्रीकृष्ण प्रभृति यादव कहने लगे कि अरिष्टनेमि ने उन पशु–पक्षियो पर करुणा की और उनका वन्धनमुक्त करने वाले को आभूषण पुरस्कार–स्वरूप दे दिये, यह तो ठीक ह हम इसे अनुचित नही कहते परन्तु अब तोरणद्वार की ओर न जाकर पीछ की आर लोटने का क्या कारण? अरिष्टनेमि को वापिस लौटते देख सब लाग क्या कहगे! मुहूर्त के कार्य के समय इस प्रकार लौटना क्या उचित था! जो हुआ सा हुआ अव वाहन पुन तोरणद्वार की ओर चलने दो तोरणद्वार पर पहुचन का समय वीता जा रहा हे!

सब लाग भगवान् अरिष्टनमि के सारथि से यही बात कहने लगे। तब भगवान अरिष्टनमि श्रीकृष्ण का लक्ष्य करके कहने लगे– भ्राता अब आप मुझे जान ही दीजिए राकिय मत!

श्रीकृष्ण– एसा क्या? क्या आप विना विवाह किये ही लोट जावेगे? ओर यदि आप एसा करना भी चाहग तो हम लोग आपको विना विवाह किये कस जान दग? एसा होने पर लोग हम ओर आपको क्या कहेगे? राजकुमारी राजमती की क्या गति होगी?

भगवान का चारा आर स घरकर यादव वरातीगण आदि भगवान् और श्रीकृष्ण की वात सुनन लग। भगवान् न उपदश क लिए इस अवसर को

उपयुक्त समझा। वे श्रीकृष्ण की बात के उत्तर मे कहने लगे– भ्राता, मै यहा तक जिस उद्देश्य के लिए आया था मेरा वह उद्देश्य पूरा हो गया। आप समझते हैं कि मैं राजमती से विवाह करने के लिए आया था, मैं राजमती के लिए दूल्हा बना था परन्तु वास्तविक बात इससे विपरीत है। राजमती से या किसी दूसरी कन्या से न तो मैंने विवाह करना ही स्वीकार ही किया था, और न मै विवाह करना चाहता था। मेरी भावजो ने झूठमूठ ही यह प्रसिद्ध कर दिया था कि मैंने विवाह करना स्वीकार कर लिया और अपने भी भावजो की बात मानकर मेरा विवाह रचवा दिया। ऐसा होते हुए भी मै क्यो चुप रहा, आपके द्वारा की गई विवाह–रचना मे अब तक क्यो सम्मिलित रहा, विरोध क्यो नही किया? इसका कारण आप मुझसे सुनिये।

द्वारका–निवासी यादवो को आज सब प्रकार का सासारिक सुख पाप्त है। ये धन–जन आदि सभी से उन्नत है। यदि ये चाहते तो प्राप्त सुविधाओ द्वारा मर्यादा–पूर्वक सासारिक सुख भी भोग सकते थे, परन्तु उन्हे सन्तोष न रहा। अधिकाश यादव मर्यादा का उल्लघन कर गये और मनुष्य–जीवन की सार्थकता मास मदिरा आदि मे ही मानने लगे। इसके लिए ये अनेक जीवो को कष्ट देते हैं उनकी हत्या करते हैं और ऐसा करने मे अपने–आप के लिए सुख मानते हैं। उनकी दृष्टि मे सुख–दु ख तो केवल उन्ही को होता है दूसरे प्राणियो को सुख–दु ख होता ही नही है या दूसरे प्राणी जैसे प्राणी ही नही हैं। लेकिन वास्तव मे ससार के जितने भी प्राणी हैं, उनमे से कोई भी प्राणी दु ख नही चाहता है और कदाचित् कोई दु ख चाहता भी होगा तो उस दु ख के पीछे सुख है इसी आशा से। यदि कोई आदमी या कोई देवता आप को अपने सुख के लिए दु ख मे डाले तो क्या आप उस दु ख मे डालने वाले का यह कार्य ठीक मानोगे? उस दु ख मे डालने वाले के कार्य को अन्याय या अनुचित न कहेगे? यदि अपने को दु ख देने वाले को अन्याय या अनुचित कार्य करने वाला कह सकते हैं तो अपने सुख के लिए जिन्हे दु ख मे डाला जाता है वे जीव क्या दु ख मे डालने वाले को अन्यायी या अनुचित कार्य करने वाला न कहते होगे? जो बात स्वय को बुरी लगती है, क्या वह दूसरे को बुरी न लगती होगी? जिस कार्य से स्वय को दु ख हो सकता है, क्या उससे दूसरे को दु ख न होगा? परन्तु लोग अपने स्वार्थ मे पडकर इस बात को भूल रहे हैं और यही कारण है कि मास के लिए अनेक पशु–पक्षियो की हत्या कर डालते हैं। जो मगल कार्य माने जाते हैं उन विवाहादि अवसरो

पर भी कितने जीवो का अमगल हो जाता है? कितने जीवो की निर्दयतापूर्वक हिसा कर डाली जाती है? यह कभी किसी ने विचारा है? अपना तो मगल चाहना और दूसरे का अमगल करना, यह भी कोई न्याय है? यदि ये जीव सामर्थ्यवान होते और जो व्यवहार लोग इनके साथ करते हैं वही व्यवहार लोगो के साथ ये भी करने लगते तो लोगो को दु ख होता या नही!

भ्राता! यह मनुष्य–जन्म बडी कठिनाई से प्राप्त होता है। इसकी प्राप्ति से पूर्व न मालूम कितने काल तक वनस्पति, पृथ्वी पर्वत कीडे–मकोडे आदि की योनि मे रहना पडा होगा, और न मालूम कितनी बार उसी तरह के पशु–पक्षी के शरीर मे रहना पडा होगा जिस तरह के पशु–पक्षियो को लोग अपना भक्ष्य समझकर मार डालते हैं। इस प्रकार अनेक जन्म तक कष्ट भोगने के पश्चात् ही यह मनुष्य–शरीर प्राप्त हुआ है। अब क्या इस मनुष्य शरीर को ऐसे कार्य मे लगाना ठीक है कि जिसके कारण फिर नरक–तिर्यंच आदि की योनि भोगना पडे? या ऐसे कार्य मे लगाना चाहिए कि जिससे फिर ससार मे पुन –पुन जन्म–धारण का दु ख न उठाना पडे? जो मनुष्य अपने जन्म का उद्देश्य विषय–भोग ही मान लेता है और इस कारण अधिकाधिक विषय–भोग म प्रवृत्त होता है वह अपने लिए पुन –पुन जन्म–मरण करने की सामग्री एकत्रित करता है। इसके विपरीत जो मनुष्य मनुष्य–जन्म का उद्देश्य जन्म–मरण से मुक्त होना समझता है वह विषय–भोग मे सुख नही मानता, अपितु विषयजन्य सुखो को त्याग देता है और समस्त प्राणियो को अपने समान समझकर सबसे प्रेमपूर्ण व्यवहार रखता है। ऐसा ही व्यक्ति प्रेम और मैत्रीभावना को पूर्णरूपेण विकसित करके ससार मे जन्म–मरण के दु ख से छुटकारा भी पाता ह और अक्षय सुख प्राप्त करता है।

यद्यपि बडी कठिनाई से मिली हुई यह मनुष्य–देह जन्म–मरण से मुक्ति पान क कार्यों म ही लगानी चाहिए परन्तु लोग अधिकाधिक जन्म–मरण क कार्यो म लगा रह ह। यह बात मुझे असह्य हुई। मे अपने लिए तो वह अक्षयसुख प्राप्त करना चाहता ही हू, लेकिन साथ ही जनता का ध्यान भी इस ओर खीचना चाहता था ओर इसके लिए मैं अवसर की प्रतीक्षा म था। विवाह की तैयारी होन पर मैंने सोचा कि विवाह के बहाने मुझे लोगो को उपदेश देने का अच्छा अवसर मिलेगा। यह विचार कर ही मैंन विवाह सम्बन्धी किसी बात का विरोध नही किया। मुझे लोगो को यह बताना था कि मै न राज्य को अधिक समझता हू न राजमती ऐसी ही स्त्री मुझे अधिक प्रिय है ओर न

विषय–जन्य सुखो को ही मैं अच्छा समझता हू। मेरी दृष्टि मे इन सबकी अपेक्षा अहिसा ही अधिक है। इसके लिए मैं समस्त सासारिक सुखो को त्याग सकता हू और इसीलिए मैं वापस जा रहा हू। अब मैं घर–बार आदि किसी प्रपच मे नही रहना चाहता, किन्तु जन्म–मरण से मुक्त हो का उपाय करने के साथ ही ससार को यह पाठ पढाना चाहता हू कि समस्त प्राणियो को अपने ही समान मानकर विषय–जन्य सुखो को त्यागो और वह सुख प्राप्त करो जो अक्षय तथा ध्रुव है। इसलिए अब आप मुझे रोकने की चेष्टा मत करिये मुझे जाने दीजिए।

भगवान् अरिष्टनेमि का उत्तर सुनकर कृष्ण आदि को एक गभीर विचार के साथ ही कुछ निराशा भी हुई। लोगो के हृदय पर भगवान् अरिष्टनेमि के उत्तर का उचित पभाव पडा। भगवान् अरिष्टनेमि के कथन की सत्यता से कोई इनकार न कर सका। श्रीकृष्ण भी निरुत्तर हो गये, लेकिन वे अब दूसरे उपाय से काम लेने लगे। वे कहने लगे– भाई अरिष्टनेमि, आपके कथन की यथार्थता से मै इनकार नही कर सकता, आपने अहिसा का जो कियात्मक उपदेश दिया है वह भी निष्फल नहीं हो सकता लेकिन उग्रसेनकुमारी राजमती के साथ विवाह किये बिना चले जाना ठीक नहीं है। ऐसा करने से यादवो की प्रतिष्ठा को धक्का लगता है, हम सबका अपमान होता है और एक निर्दोष बाला का तिरस्कार होता है। इसलिए आप उग्रसेन के महल को चलकर राजमती का पाणिग्रहण तो कीजिए।

कृष्ण का कथन सुनकर भगवान् ने उत्तर दिया– भ्राता! जब आप त्याग का महत्त्व स्वीकार कर चुके है तब आपका इस प्रकार का आग्रह ठीक नही है। या तो आप सासारिक मान–सम्मान को ही बडा मानिये या सासारिक मान–सम्मान के बलिदान को। मेरी दृष्टि मे तो सासारिक पदार्थो को त्यागने के साथ ही सासारिक मान–सम्मान भी उपेक्षणीय है। इसके सिवा राजमती के साथ विवाह न करने पर आप लोगो का अपमान तब हो सकता है जब मैं राजमती से विवाह न करके किसी दूसरी से विवाह करू। लेकिन मेरे लिए तो राजमती प्रभृति समस्त स्त्रिया माता समान है। मैं उग्रसेन–कन्या राजमती का तिरस्कार भी नही कर रहा हू। वैसे तो मेरे समीप ससार के समस्त विषय–भोग के साधन तिरस्कार के योग्य हैं परन्तु आत्मा की दृष्टि से मैं एक छोटे–से–छोटे प्राणी का भी तिरस्कार नही कर सकता। सासारिक दृष्टि से भी मै। राजमती का तिरस्कार नही कर रहा हू, न ऐसा करने का कोई कारण ही है। क्योकि मैने न तो राजमती को देखा ही है न

उनका कोई अपराध ही सुना है। ऐसी दशा मे मेरी ओर से वह तिरस्कृत कैसे कही जा सकती है?

भ्राताजी! मैं किसी भी सासारिक बन्धन मे नहीं पडना चाहता, किन्तु समस्त सासारिक बन्धनो से मुक्त होना चाहता हू। जब मैं बन्धन मे पडे हुए पशु–पक्षियो को भी बन्धनमुक्त करके स्वतत्रता प्रदान करना चाहता हू, तब मैं स्वय स्वतत्रता खोकर बन्धन मे कैसे पड सकता हू? यद्यपि आप लोग मुझसे स्नेह रखते हैं परन्तु मेरी दृष्टि मे तो कुटुम्ब–परिवार आदि सब बन्धन–रूप ही हैं। मैं चाहता हू कि जिस प्रकार वे पशु–पक्षी बन्धन से मुक्त होते ही आनन्दपूर्वक अपनी दृष्टि से स्वतत्र वातावरण मे विचरने के लिए चले गये उसी प्रकार मैं। भी मुक्त होकर स्वतत्र वातावरण मे विचरू। ससार मे पुन–पुन जन्म–मरण करने के लिए अपनी आत्मा को ऐसे बन्धन मे कदापि नहीं डालना चाहता जिस बन्धन मे पडकर सतत आरम्भ–समारम्भ आदि पाप करना पडता है। मैं चाहता हू कि मैं स्वय ही आरम्भ–समारम्भ आदि पाप से बचू और ससार के लोगो को भी यही पाठ सिखाऊ। इसलिए आप मुझे रोकने की व्यर्थ चेष्टा मत करिये। मैं आपको अपना दृढ निश्चय सुनाये देता हू कि मैं ससार के किसी बन्धन मे न रहूगा किन्तु सयम स्वीकार कर अहिसा, सत्य अस्तय आदि महाव्रतो का पालन करूगा और दूसरे लोगो को भी यही मार्गाचार अपनान का उपदेश दूगा। मतलब यह कि मेरा सयमकाल आ पहुचा ह।

ह भ्राता! प्रत्येक प्राणी के सन्मुख दो बाते रहती हैं एक श्रेय, दूसरी प्रय! जा बात इन्द्रिया ओर मन को प्रिय हैं जिनकी ओर इन्द्रिया और मन स्वाभाविक ही प्रवृत्त हात ह जिनकी ओर इन्द्रिय और मन का आकर्पण होता ह व प्रय ह और जिनसे इन्द्रियो तथा मन की वृत्ति का पोषण नही होता अपितु निराध होता ह व श्रेय हैं। प्राणी के सामने य दाना ही बाते प्रस्तुत रहती ह। वह दाना म स जिस भी चाहे ले सकता हे। यद्यपि इन्द्रिया ओर मन का झुकाव प्रय की ही आर हाता हे लकिन प्रेय को लेना ससार के जन्म–मरण क चक्कर का बढाना हे। श्रेय का न लेकर प्रय को लेने रो इस ससार में पुन–पुन जन्म–मरण करना होता हे ओर अनेक प्रकार क सयोग–वियाग का कष्ट सहन करना पडता हे। इसक विरुद्ध प्रय को त्याग कर श्रय का अपनान न इन्द्रिय आर मन की वृत्ति का पाषण ता नही हाता हे लकिन साथ ही इन्द्रिय आर मन की वृत्ति क पाषण स उत्पन्न कष्ट स भी बच जाता हे और अक्षय सुख प्राप्त करता हे। श्रय का अपनाने स आत्मा वह ध्रुव आर

सुखप्रद स्थान प्राप्त करता है जहा पहुच जाने पर न जन्म–मरण का भय है, न सयोग–वियोग का दु ख। फिर वह जीवनमुक्त हो जाता है।

हे भ्राता! पेय को त्यागने और श्रेय को अपनाने से इस प्रकार का लाभ है, फिर भी लोग इस प्रकार मोह मे पड रहे हैं कि हानिकर प्रेय के लिये श्रेय को ठुकरा देते हैं। बल्कि पेय के प्रभाव मे अपना जीवन ही निरर्थक मानने लगते हैं। पेय की रक्षा के लिए श्रेय की हत्या तक कर डालते हैं। मैं ऐसा करने वाले लोगो के सामने यह आदर्श रखना चाहता हू कि श्रेय के लिए प्रेय को तो त्याग दो लेकिन पेय के लिए श्रेय को मत भूलो। प्रेय मे पडकर जन्म–मरण के कष्ट मत बढाओ किन्तु श्रेय को अपनाकर जीवनमुक्त बनो।

तोरणद्वार की ओर जाते हुए वापस लौट जाने पर भगवान् अरिष्टनेमि का आकर्षण दो ओर से हो रहा था। एक ओर तो श्रीकृष्ण प्रभृति समस्त यादव राजमती या यो कहे कि सासारिक विषय–भोग का आकर्षण था और दूसरी ओर पशु–पक्षी आदि दु खी जीवो की करुणा, यानी विषय–भोग का त्याग भगवान् को अपनी ओर खीच रहा था। एक और, बडे–बडे यादव लोगो का बल प्रत्यक्ष लग रहा था और दूसरी, ओर, दीन–दु खी जीवो की करुणा भगवान् को अपनी ओर खीचने के लिए यादवो के बल को असफल बनाने की चेष्टा कर रही थी। एक ओर यादव लोग भगवान् से कह रहे थे कि बिना विवाह किये लौट जाने पर हम सबका अपमान होगा और दूसरी ओर दु खी जीव अपने अन्तरात्मा द्वारा भगवान से प्रार्थना कर रहे थे कि यदि आप विवाह के झझट मे पड गये तो हम लोगो का रक्षक कोई न रहेगा, हमे आप ही से रक्षा की आशा है यदि आपने भी हमे न्याय न देते हुए निराश कर दिया तो हम लोगो पर अब तक की तरह अन्याय होता ही रहेगा। इस प्रकार दोनो ओर से परस्पर विरोधी आकर्षण था परन्तु एक प्रबल था और दूसरा अप्रबल था। लेकिन अन्त मे यादव राजमती विषय–भोग और अपमान के भय को परास्त होना पडा। भगवान् अरिष्टनेमि इनसे आकर्षित नही हुए किन्तु दीन–दु खी जीवो की करुणा या विषय–भोग से विरक्ति ने भगवान् अरिष्टनेमि को अपनी ओर खीच लिया।

भगवान् अरिष्टनेमि के उपदेशपूर्ण उत्तर ने सब यादवो को चकित कर दिया। यादवो पर भगवान के उत्तर का अत्यधिक प्रभाव पडा और लगभग एक हजार यादवो पर तो ऐसा प्रभाव पडा कि वे भी ससार को बन्धन समझकर उससे विरक्त हो भगवान अरिष्टनेमि का साथ देने को तैयार हो गये। श्रीकृष्ण और दसो दशार्ह आदि भी भगवान् को रोकने की ओर से

हतोत्साह हो गये। उनका साहस भगवान् अरिष्टनेमि से और कुछ कहने का न पडा।

श्रीकृष्णादि यादव लोग तो भगवान् अरिष्टनेमि को रोकने के लिए प्रयत्नशील थे और उधर उग्रसेन के महल मे राजकुमारी राजमती मूर्च्छित पडी थी। अनेक प्रयत्नो द्वारा मूर्च्छा दूर होने पर राजमती कहने लगी-- धिक्कार हे मेरे जीवन को जो प्राणनाथ मुझे छोड कर चले गये। हे प्राणनाथ! हे हृदयेश्वर! आप इस दासी को छोड कर मत जाइये। यदि आप अभागिनी राजमती को छोड कर चले गये तो यह किसी और की नही रहेगी।

राजमती को इस प्रकार विलाप और प्रलाप करते देखकर उसके माता-पिता उसे समझाने लगे। वे राजमती से कहने लगे-- पुत्री राजमती! तू क्या वक रही है! तुझे छोडकर कौन जा रहा है! जरा विचार तो सही कि भगवान अरिष्टनेमि जब बरात सजाकर तेरे साथ विवाह करने आये हैं तो तेरे से विवाह किये बिना ही वे कैसे लौट जावेगे! जब बरात सजाकर आये हैं तो तेरे साथ विवाह करेगे ही। यदि विवाह न करना होता और बिना विवाह किये ही लोटना होता तो वे बरात सजाकर तथा दूल्हा बनकर आते ही क्या? रही उनके लौटने की बात लेकिन इसका कोई और कारण होगा! और अभी वे लौटकर गये ही कहा है! देख वे सामने ही खडे हैं। यदि अरिष्टनेमि बिना विवाह किये लोटना भी चाहेगे तो श्रीकृष्ण आदि यादव उन्हे लोटने कैसे देगे? कदाचित अरिष्टनेमि अपने सब माननीय यादवो का आग्रह टाल कर चले भी जाय तो इसमे अपनी क्या हानि हे? उन्ही का उपहास्य है। फिर भी अभी इस प्रकार की आशका निष्कारण हे। भगवान् अरिष्टनेमि अपने पिता काका भ्राता आदि का कहना न माने यह सम्भव नही। इसलिए तू अभी से निष्कारण अधीर मत हो।

माता-पिता को अपने सामने ओर इस प्रकार समझाते देखकर राजमती कुछ सकुच-सी गई। वह चुपचाप उठकर फिर झरोखे के पास चली गई और सखियो के साथ वहा से बरात तथा भगवान् अरिष्टनेमि को देखने लगी लेकिन उसके हृदय का धैर्य न था। अनिष्ट की आशका उसके हृदय मे उथल-पुथल मचा रही थी। उसकी सखिया उसे धैर्य बधाने के लिए अनेक प्रकार की बाते कहती थी परन्तु इसका यथेष्ट परिणाम न निकला। सखियो की बातो से राजमती की चिन्ता ओर आशका न मिटी किन्तु प्रतिक्षण बढती ही गई।

श्रीकृष्ण पभृति यादवो द्वारा भगवान् को घिरे देखकर कभी क्षण भर के लिए यह आशा हो जाती थी कि भगवान् तोरणद्वार पर आवेगे, लेकिन दूसरे ही क्षण आशका से उत्पन्न निराशा इस आशा को नष्ट कर देती थी। आशा और निराशा का इसी पकार थोडी देर तक युद्ध होता रहा। राजमती के हृदय पर कभी एक का आधिपत्य हुआ, तो कभी दूसरी का, परन्तु अन्त मे आशा को परास्त होना पडा और निराशा की विजय हुई। राजमती ने देखा कि यादवगण भगवान् के सामने से हट रहे हैं। वे भगवान् को रोकने या इस ओर लौटाने मे समर्थ नही हुए हैं और भगवान बरात का साथ छोडकर जा रहे है। यह देखकर राजमती फिर यह कहती हुई मूर्च्छित होकर गिर पडी कि हाय! क्या भाग्य मे यही बदा थी? राजमती की सखिया राजमती को फिर मूर्च्छित होकर गिरती देख बहुत घबराई और फिर उसकी मूर्च्छा हटाने का पयत्न करने लगी।

अध्याय आठ

अस्वीकृता–राजमती

प्रेमी को अपने प्रेमपात्र के वियोग से या प्रेमपात्र के मिलने की आशा न रहने से जो सहज दु ख होता है वह उसे मृत्यु से भी भयकर दु ख अनुभव करता है। वह मृत्यु का दु ख प्रसन्नतापूर्वक सह सकता है, उस दु ख मे भी वह सुख मान सकता है परन्तु प्रेमास्पद के वियोग का दु ख प्रेमी को असह्य हो उठता है। इस दु ख से दु खित होकर ही अनेक प्रेमी पागल हो जाते हैं और आत्महत्या तक कर लेते हैं। फिर चाहे वह प्रेम धन से हो जन से हो या किसी और से। यह नियम लगभग सभी जगह देखने मे आता है। बल्कि जो जिससे जितना अधिक प्रेम करता है उसे उसके वियोग या प्राप्ति की निराशा से उतना ही अधिक दु ख होता है।

राजमती भगवान् अरिष्टनेमि से प्रेम करती थी। वह भगवान् अरिष्टनेमि की अनन्य उपासिका बन चुकी थी, लेकिन सहसा उसकी आशालता पर तुषार–वृष्टि हो गई। भगवान् अरिष्टनेमि बरात के साथ मौर बाधकर आये लेकिन तोरणद्वार से कुछ दूर रह कर ही वापस लौट गये। इस घटना से राजमती के हृदय को कैसा दु ख हुआ होगा इस बात को तो केवल वही व्यक्ति जान सकता हे जो किसी से अत्यधिक प्रेम करता हो फिर भी उस प्रमपात्र स उसका वियोग हा गया हो या उसके मिलने की आशा न रही हो।

श्रीकृष्ण समुद्रविजय वसुदव प्रभृति समस्त यादव भगवान् अरिष्टनेमि का राकन म असमर्थ हुए। भगवान् अरिष्टनेमि के उपदेश स प्रभावित हाकर सद लागा न भगवान का मार्ग छाड दिया। मार्ग मिलते ही भगवान् अरिष्टनेमि अपने महल क लिए चल पड कवल बरात ही रह गई। दुल्हा–विहीन बारात कैसी शाभारहित हा जाती ह और उस समय बरातिया क हृदय म कैसे–कैसे विचार हाते हैं उनक हृदय म कितनी लज्जा तथा कैसी निराशा होती है इस

बात को पत्येक गृहस्थ अनुमान से सहज ही जान सकता है। यही दशा भगवान् अरिष्टनेमि की बरात और बरात मे आये हुए लोगो की हुई परन्तु विवशता थी।

भगवान् अरिष्टनेमि के चले जाने से बरातियो की तो उक्त दशा हुई ही लेकिन उग्रसेन आदि को भी बहुत निराशा हुई। और जिसके साथ भगवान् का विवाह होने वाला था, उस राजमती की दशा का तो कहना ही क्या है! वह तो भगवान् को बरात से बाहर निकलते देख कर ही मूर्च्छा खाकर पृथ्वी गिर पडी। सखियो के बहुत पयत्न करने पर उसकी मूर्च्छा दूर हुई, लेकिन उसे मूर्च्छित अवस्था की अपेक्षा जाग्रत अवस्था अधिक दु खदायिनी प्रतीत हुई। उसके हृदय को धैर्य न था। वह जाग्रत होते ही विलाप करती हुई कहने लगी– हाय! मै। क्या सोचती थी, मेरी भावना क्या थी, मेरा हृदय आशा से उत्पन्न प्रसन्नता से कैसा आह्लादित हो रहा था और मेरी आखे कैसी आतुर थी! मुझे नही मालूम था कि कुछ ही क्षण मे कुछ से कुछ हो जावेगा। मेरा मन भगवान् की पत्नी बनने की उत्कण्ठा मे था। मेरी आखे भगवान का दर्शन करने को आतुर थी, और मेरा हाथ भगवान् द्वारा ग्रहण किये जाने की प्रतीक्षा कर रहा था। परन्तु यह सब व्यर्थ हुआ। भगवान् मुझे स्वीकार किये बिना ही चले गये। मेरी आखो की आतुरता न मिट पाई। हाथ की आशा निराशा मे परिणत हो गई। मन की भावना मन मे ही रह गई। यह सब क्यो हुआ! भगवान् ने मुझे क्यो नही अपनाया! मैंने क्या अपराध किया था! हे नाथ! हे प्रभो! हे करुणासागर! आपने उन बन्धन मे पडे हुए पशु–पक्षियो पर तो करुणा की और मुझ अभागिन को करुणा से क्यो वचित रखा! हे श्याम! मेरे नेत्र पूरी तरह आपका दर्शन भी नही कर पाये! आप इस दासी पर दया करके इसे दर्शन तो दे जाते? हे प्यारे! आप मेरा अपराध तो बता जाते? क्या मैं आपका दर्शन करने योग्य भी नही थी? क्या पापिनी राजमती को आप दर्शन देना भी उचित नही समझते? जब आप ही ने मुझे नही अपनाया तो अब मेरा ससार मे कौन रहा! जब मेरी आशा पर ही वज्र गिर पडा तब मेरा जीवन किस काम का? अब तक मैं जिस आशा अकुर को सीचती रही, उसके फल के समय वृक्ष पर ही तुषारवृष्टि हो गई। यदि आप मुझे नही अपनाना चाहते, यदि आपकी दृष्टि मे मैं इस योग्य नहीं थी, तो आपने मेरी आशा को बढने ही क्यो दिया था? यदि मेरी आशा पहले से ही न बढने पाती तो आज मझे इस सन्ताप का लक्ष्य क्यो होना पडता? हे नाथ! हृदयसर्वस्व! मुझे आशा थी कि मैं महाराजा समुद्रविजय तथा महारानी

शिवादेवी की पुत्रवधू, श्रीकृष्ण वासुदेव तथा राम बलदेव की अनुजवधू और यदुकुल–भूषण भगवान् अरिष्टनेमि की धर्मपत्नी बनूगी लेकिन मेरी ये समस्त आशाए पानी के बुदबुदे की तरह विलीन हो गई। आप मुझे दूर से ही दर्शन देकर लौट गये। जिनका अच्छी तरह से दर्शन करने को मैं लालायित थी, मैं अपने को जिनके चरणकमल की दासी बना चुकी थी और जिनकी सेवा करने को मैं उत्सुक थी हे प्राणेश! वे आप मुझे उपेक्षापूर्वक त्याग गये! मुझसे बात भी न की! मेरे इस घर तक भी न आये। मेरे लिये कोई सन्देश भी नही दिया। मुझे कोई मार्ग भी नही बताया। हे जीवन–आधार! आपने चाहे मुझे अपराधिन जानकर ही त्यागा हो मैं हू तो आप ही की। आपके सिवा मेरे लिए दूसरी गति नही है। चाहे आप मुझे अपने समीप रखे, मेरा सम्मान करे या अपमान करे और मेरे को अपनी माने या न माने मैं तो पहले से ही आपकी हो चुकी हू। अब मेरी जीवन–नौका चाहे आप पार लगाइये या मझधार मे डूबाइये यह आपको अधिकार है।

राजमती इसी प्रकार की बाते कह कर दु ख करने लगी। उसकी सखिया उसे समझाने के लिए अनेक प्रकार की बाते करने लगी, उसे धैर्य दिलाने के लिए अनेक उपाय करने लगी परन्तु राजमती को किसी प्रकार से धैर्य न हुआ।

सखिया के समझाने पर वह अपनी एक सखी से कहने लगी– सखी म एक आर विचारती हू तब तो मुझे प्रसन्नता होती हे लेकिन दूसरी ओर देखती हू ता दु ख होता है। प्राणनाथ ने मुझे गौरव प्रदान किया– मुझे सब स्त्रिया म श्रेष्ठ माना– यह विचार कर तो मुझे प्रसन्नता होती है। ससार मे अनक कन्याए ह लकिन भगवान् उनमे से किसी के लिए भी इस प्रकार बरात सजा कर नही गये। केवल मेरे लिए ही पधारे। वासुदव समुद्रविजय प्रभृति श्रेष्ठ यादवा आर स्वय भगवान् ने मुझे ही इस योग्य माना। साथ ही भगवान दु खी जीवा की करुणा से प्ररित होकर ससार मे करुणा का प्रचार करने दु खी जीवा का शरण दने तथा ससार क जीवो को आत्म–कल्याण की ओर अग्रसर करन आर स्वय भी मोक्ष प्राप्त करने क लिये गय हैं यह भी मेरे लिए गौरव की बात ह।

जब म यह विचारती हू कि भगवान ने दु खी जीवा की करुणा के लिए ही मुझे त्यागा ह तब ता मेरे हर्ष का पार ही नही रहता। उस समय मै अपने आप का बड़ी सद्भागिनी मानती हू और सोचती हू कि मेरे स्वय का जिनके [illegible] किया ह उनकी समता करने वाला आज तक ससार म कोई हुआ

[illegible]

ही नही। पशु–पक्षियो की करुणा के वास्ते युवावस्था मे वह भी ठीक लग्न के समय विवाह न करके आज तक कौन ससार से विरक्त हुआ है? केवल भगवान् अरिष्टनेमि ही ऐसे निकले हैं। सखी, मुझे जब इस बात का ध्यान होता है कि भगवान मुझे वरे बिना तोरणद्वार पर से ही क्यो चले गये, उस समय मेरे को बडा दु ख होता है। मुझे विचार होता है कि यदि भगवान मुझे वर लेते, मेरा पाणिग्रहण कर लेते और फिर जाते तो क्या हर्ज था! मैं सासारिक विकारो की पूर्ति के लिए ही तो भगवान् की अर्धांगिनी बनती नही थी इसलिए भगवान् मुझको वर कर कह सकते थे कि मै सासारिक विषय–भोगो को त्याग कर ससार मे करुणा का प्रचार करने, भव्य जीवो को कल्याण का मार्ग बताने और मुक्तिरूपी लक्ष्मी को प्राप्त करने के लिए जाता हू। यदि भगवान् मुझको वर कर फिर जाते तो क्या मैं उन्हे रोकती! क्या मैं उनके मोक्षमार्ग मे बाधा पहुचाने वाली होती! यदि नही तो फिर भगवान् मुझे वर क्यो नही गये? इस बात का मुझे अत्यधिक दु ख है। मैं समझती हू कि भगवान् ने मुझे जाना तो सही इसलिए उन्होने मुझे गौरवान्वित किया किन्तु पूरी तरह नही जाना इसलिए उन्होने यह विचार कर मुझे नहीं वरा कि फिर यह मेरे मोक्षपथ मे बाधारूप हो जावेगी। यदि इसी विचार से भगवान् मुझे वर कर नही गये हो तो मैं यही कहूगी कि उन्होने मुझे पूरी तरह नही पहचाना। मै क्षत्रिय कन्या हू। क्षत्रिय कन्या अपने पति को, यदि वह युद्ध से भय खाता है तो नम्रतापूर्ण किन्तु मर्मभरे वचनो से युद्धोन्मुख कर देती है और युद्ध के लिए अपने पति को अपने हाथो सुसज्जित करके उसे रणस्थल मे भेज देती है जहा प्राणो की बाजी है। जब हम पति को उस समय भी नही रोकती किन्तु प्रेरणा करके भेजती हैं, तब मैं, कर्म–शत्रुओ से युद्ध करके जीवनमुक्त होने के लिए पति को जाने से क्यो रोकती? मैं उन्हे प्रसन्नता से विदा करती। लेकिन सखी पति ने मुझे क्यो नही वरा यह कारण मै अब समझ सकी हू। मै अब तो यह कहती हू कि पति मुझे वर कर जाते तो मैं स्वय ही उनको विदा कर देती परन्तु जब वे मुझे वर लेते तब मेरे हृदय मे शायद इस प्रकार का विचार न रहता और फिर उन्हे रोकने के लिए मैं अपने नेत्रो से आसू गिराती। उनसे दया–भिक्षा मागती उनके पैर पकड लेती और यही पार्थना करती कि आप मुझे छोडकर मत जाइये। सखी जो ऐसे दयालु है कि पशु–पक्षियो को भी दु खित नही देख सके उन्हे भी दु खमुक्त कर दिया वे मेरी आखो से निकलते हुए आसुओ को केसे देख सकते? मुझे दु खित देखकर भी कैसे चले जाते? मुझे रुदन करती हुई कैसे छोड जाते?

इस प्रकार पति के लिए मैं वाधक ही सिद्ध होती। कोमल हृदय भगवान् ने इसलिए मुझे नहीं वरा ओर द्वार पर से ही चले गये।

राजमती की सखिया राजमती की वाते सुनकर आश्चर्य करने लगती और उसे पुन-पुन धैर्य रखने तथा भगवान् को विस्मृत करने के लिए समझाया करती। परन्तु राजमती का दु ख किसी भी प्रकार कम नही हुआ। वह भगवान् के विरह मे दु खित रहती हुई सखियो पर अपनी विरह वेदना प्रकट करती और भगवान का ही गुणगान करती।

अध्याय नव
परिवर्तन

सज्जन मनुष्यो का यह सहज स्वभाव होता है कि वे दूसरे के लाभ को स्वय का लाभ और दूसरे की हानि को स्वय की हानि मानते हैं। वे दूसरे का हित देखकर प्रसन्न होते है और दूसरे का अहित देखकर दु खी। दूसरे के हिताहित को वे अपना ही हिताहित मानते हैं। बल्कि स्वय के हिताहित से वे प्रसन्न या दु खी नही होते, परन्तु दूसरे का अहित देख-सुनकर दु खी और दूसरे के हित या दूसरे को सुखी देखकर प्रसन्न होना उनका स्वभाव ही होता है। किसी दूसरे को दु खी या उसका अहित देखकर वे यह भाव भी नही लाते कि अब इस समय अपने को अपना अमुक स्वार्थ साध लेना चाहिए। वे दूसरे के हित के लिए अपना स्वार्थ तक त्याग देते हैं, दूसरे के अहित से अपना स्वार्थ साधने की तो बात ही अलग है। इसके विरुद्ध दुर्जनो का स्वभाव सज्जनो के स्वभाव से सर्वथा विपरीत होता है। वे दूसरे के लाभ से अपनी हानि और दूसरे की हानि से अपना लाभ मानते हैं। दूसरे को सुख मे देखकर दु खी होते हैं और दूसरे को दु ख मे देख कर प्रसन्न होते हैं। किसी को विपत्ति मे देखकर सज्जन लोग तो उसकी सहायता करते हैं उसकी विपत्ति मिटाने का प्रयत्न करते हैं, लेकिन दुर्जन लोग, उस दूसरे की विपत्ति को अपनी स्वार्थपूर्ति का एक साधन मानते हैं और समझते हैं कि हमारा कार्य सिद्ध होने के लिए ही इस पर ऐसी विपत्ति आई है। इन्हीं बातो को दृष्टि मे रख कर एक कवि दुर्जनो की निन्दा करता हुआ कहता है-

विषधरतोऽप्यति विषम खल, इति न मृषा वदन्ति विद्वास ।
यद य न कुलद्वेषी, स कुलद्वेषो पुन पिशुन ।।

सज्जनता या दुर्जनता स्वय के सस्कारो से ही, स्वय के स्वभाव से ही होती है। इससे कुल, जाति या माता–पिता का बहुत अधिक सम्बन्ध नही है। एक ही कुल एक ही जाति ओर एक ही माता–पिता से भी दोनो प्रकार के मनुष्य उत्पन्न होते हैं। जिस जाति के जलबिन्दु से सीप मे मोती उत्पन्न होता है उसी से साप मे विप भी उत्पन्न होता है। रावण और विभीपण एक ही पिता के पुत्र थे। कौरव और पाण्डव एक ही कुल के थे और कस तथा अतिमुक्त मुनि भी एक ही माता–पिता से उत्पन्न हुए थे फिर भी दोनो के स्वभाव और विचारो मे कैसी विपमता थी। इससे स्पष्ट है कि दुर्जनता–सज्जनता का कारण स्वय का स्वभाव है। इस विषय मे कुल, वश या माता–पिता ही कारण नही हैं। यद्यपि सन्तान मे माता का स्वभाव भी आता है परन्तु यह नही कहा जा सकता कि सन्तान मे माता–पिता के गुण–दुर्गुण आते ही हैं। कभी ऐसा होता भी है और कभी नही भी होता।

भगवान् अरिष्टनेमि के छोटे भाई का नाम रथनेमि था। यद्यपि रथनेमि ओर भगवान अरिष्टनेमि दोनो सहोदर भ्राता थे लेकिन दोनो के विचारो मे अत्यधिक विपमता थी। भगवान् अरिष्टनेमि जिन विचारो के थे वे तो इस कथा म ज्ञात हो ही गये लेकिन रथनेमि के विचार उन यादवो के ही समान थ जा स्त्री–भाग द्वारा मनुष्य–जन्म सार्थक मानते थे तथा इसके लिए उचित–अनुचित सव–कुछ कर सकते थे। भगवान् अरिष्टनेमि राजमती से विना विवाह किय लोट गये इससे और सव यादवो को तो खेद हुआ परन्तु रथनमि को प्रसन्नता हुई। उनको उत्पन्न परिस्थिति से अनुचित लाभ उठाने का लालच हा ही आया। व सोचने लग कि राजमती ऐसी उत्कृष्ट सुन्दरी का छाडकर भ्राता चल गय इससे जान पडता हे कि वे स्त्रियो के परीक्षक भी नही ह आर शृगार–रस के रसिक भी नही ह। अन्यथा राजमती क साथ विवाह किय विना ही व क्या लोट जात। यदि उन्ह दीक्षा लनी थी ता राजमती क साथ विवाह करक सुख भागन क पश्चात दीक्षा लत। ससार के इस आनन्द का ठुकराकर तथा राजमती का न विवाह कर भ्राता न बहुत गलती की ह। [illegible] उग्रसन दुलारी राजमती का मन देखा ह। वह पोडशी अत्यधिक सुन्दरी ह। मन ता राजमती की समता करन वाली स्त्री आज तक देखी ही नहीं। [illegible] सुकुमारी आर नवयोवना राजमती का त्यागन की भूल यदि कोई [illegible] ह [illegible] कर सकता हे जा स्त्रीरत्न का परीक्षक नहीं है। [illegible] आश्चर्यचकित रह गया। मरा मन मर हाथ स निकल

[illegible]

गया था। परन्तु भ्राता के साथ उसका विवाह हो रहा था इसलिए विवश था, लेकिन भ्राताजी तो राजमती को त्याग गये। अब राजमती क्या करेगी? भ्राताजी के साथ उसका विवाह तो हुआ नही है। वह तो अभी कुमारी ही है, अत अवश्य ही उसका विवाह किसी दूसरे के साथ होगा तब मैं ही उसके साथ विवाह क्यो न कर लूं? ऐसे उत्कृष्ट कन्या–रत्न को किसी दूसरे के हाथ जाने देने और जो कन्या यदुकुल की वधू बनने वाली थी उसे किसी दूसरे की वधू बनने देने की अपेक्षा उसके साथ मुझे अपना विवाह कर लेना, किसी पकार अनुचित भी न माना जावेगा। मेरा जहा तक अनुमान है, राजमती प्रसन्नतापूर्वक मुझे अपना पति बनाना स्वीकार करेगी। इसलिए मुझे इस ओर प्रयत्नशील बनना चाहिए।

इस पकार विचार कर रथनेमि ने राजमती के पास अपने विवाह का प्रस्ताव भेजने का निश्चय किया। इसके लिए उन्होने एक ऐसी दूती को तैयार किया जो उग्रसेन के महल मे आया–जाया करती थी और राजमती से परिचित भी थी। रथनेमि ने उस दूती को अपना प्रस्ताव सुना कर उससे कहा कि यदि तू राजमती से मेरा यह प्रस्ताव स्वीकार करा लावेगी तो मैं तुझे खूब पुरस्कार दूगा।

पुरस्कार के लोभ से दूती रथनेमि का विवाह–प्रस्ताव लेकर राजमती के महल मे गई। उसने जाकर राजमती से कहा कि मुझे आपसे एकान्त मे कुछ कहना है। राजमती सरल स्वभाव की थी। यह एकान्त मे मुझसे क्या कहना चाहती है इसका वह अनुमान भी न कर सकी, न उसको कोई ऐसा कारण ही दिखाई दिया कि जिससे वह इस स्त्री के साथ एकान्त मे बातचीत करने से इनकार कर देती। राजमती उसे महल मे ही एक ओर ले गई और उसने दूती से कहा कि अब तुझे जो कहना है वह कह।

दूती कहने लगी– राजकुमारी जिनके साथ आपका विवाह–सम्बन्ध होने वाला था वे अरिष्टनेमि आपसे विवाह किये बिना ही चले गये, यह तो आप जानती ही हैं। अब वे लौटकर आवेगे और उनके साथ आपका विवाह होगा इसकी भी कोई आशा नही है। ऐसी दशा मे आप अपनी यह शरीर–सम्पत्ति उनके लिए क्यो नष्ट कर रही है? इससे कुछ लाभ भी तो नही होना है! इसके सिवा जिस पुरुष के हृदय मे ससार से विरक्ति है, उसके साथ विवाह करके कौन स्त्री सुख पा सकती है? इसलिए आप अपनी यह युवावस्था और अपना यह सौन्दर्य उनके पीछे नष्ट मत होने दीजिए किन्तु किसी दूसरे अच्छे पुरुष को इसका स्वामी बनाकर ससार का आनन्द भोगिये।

अरिष्टनेमि ने आप के इस रूप–लावण्य का तिरस्कार कर दिया तो क्या हुआ, उनके द्वारा अनादर होने से आपका रूप–लावण्य कुछ दूषित नहीं हो सकता। अरिष्टनेमि ऐसे बल्कि अरिष्टनेमि से भी अच्छे सैकडो पुरुष आपको पाने के लिए लालायित हैं। स्वय अरिष्टनेमि के छोटे भाई रथनेमिजी ही आपके साथ विवाह करने की अभिलाषा करते है। वे अरिष्टनेमि की अपेक्षा सुन्दर भी हैं और युवक भी हैं। अरिष्टनेमि श्यामवर्ण के हैं परन्तु रथनेमि गौर वर्ण के हैं। रथनेमि की अवस्था भी अरिष्टनेमि की अवस्था से कम है। इस प्रकार अरिष्टनेमिजी की अपेक्षा रथनेमिजी सब प्रकार से उपयुक्त वर हैं। उन्होने मेरे द्वारा आपके पास विवाह–प्रस्ताव भी भेजा है। मैं आपको सम्मति देती हू कि आप रथनेमिजी का विवाह–प्रस्ताव स्वीकार कर लीजिए और इस प्रकार शरीर को क्षीण मत करिये।

दूती की बात सुनकर राजमती के शरीर मे सन्नाटा–सा दौड गया। वह विचारने लगी कि क्या रथनेमिजी अपने भ्राता द्वारा परित्यक्त स्त्री से विवाह करने को तैयार है? क्या उनका इतना पतन है? उन्हे यह भी विचार नहीं हुआ कि वह स्त्री होकर भी मेरे भ्राता के सम्बन्ध का इतना विचार रखती है और मै पुरुष होकर भी अपने भ्राता के सम्बन्ध का विचार नहीं रखता! रथनेमि कुलीन हैं भगवान् अरिष्टनेमि के छोटे भाई हैं अत मुझे जो–कुछ भी उत्तर देना है स्वय उन्हे ही क्यो न दू! इस दूती को किसी प्रकार का उत्तर देने से क्या लाभ? वे स्वय जब मेरे सामने होगे और मै युक्तिपूर्वक उनके प्रस्ताव को अस्वीकार करूगी तब सम्भव है कि उनका हृदय सदा के लिए शुद्ध हो जावे।

इस प्रकार विचार कर राजमती ने उस दूती से कहा – रथनेमिजी मुझे चाहते होगे लेकिन मै उनके द्वारा किये गये विवाह–प्रस्ताव का उत्तर तुम्हे न दूगी किन्तु रथनेमिजी को ही दूगी। अत तुम उनसे कह दो कि वे स्वय ही आकर अपने प्रस्ताव का उत्तर ले जावे तथा अपने साथ कोई ऐसा पेय पदार्थ अवश्य लेते आवे जो उनको अधिक से अधिक प्रिय हो। इस विषय मे मै उनके सिवा और किसी से बात भी न करूगी।

राजमती ने दूती को यह उत्तर किसी दूसरे ही अभिप्राय से दिया था किन्तु राजमती के उत्तर से दूती ने यह आशय निकाला कि जब राजमती स्वय ही रथनेमि को अपने यहा बुला रही है तब विवाह–प्रस्ताव स्वीकार करने मे [illegible] वह प्रसन्न होती हुई रथनेमि के पास आई। उसने रथनेमि [illegible] का उत्तर सुनाकर कहा कि मेरी समझ से राजमती आपके

[illegible]

विवाह–पस्ताव को स्वीकार कर लेगी। सम्भवत उसने आपको देखने के लिए ही बुलाया है और पेय (पीने का) पदार्थ शायद यह देखने को मगवाया है कि आप उसकी इच्छा पूरी करते हैं या नहीं? अत आप कोई उत्तम पेय पदार्थ लेकर राजमती के यहा जाइये। मुझे विश्वास है कि वह आपको देखते ही पति– रूप मे स्वीकार लेगी।

दूती द्वारा राजमती का उत्तर सुनकर रथनेमि बहुत ही प्रसन्न हुए। वे अपने मन मे अनेक पकार की कल्पनाए करने लगे और उन कल्पनाओ मे ही आनन्द मनाने लगे। उनका हृदय राजमती के यहा जाने और राजमती द्वारा अपने पस्ताव की स्वीकृति सुनने के लिए उत्सुक हो उठा।

रथनेमिजी अपने शरीर पर अच्छे वस्त्राभूषण सजा कर राजमती के यहा चले। उनके साथ ही एक सेवक रत्न जटित स्वर्णथाल मे कटोरे के भीतर कोई पेय पदार्थ रखकर और ऊपर से बहुमूल्य सुन्दर वस्त्र ढाककर ले चला। बडी उमग के साथ रथनेमिजी राजमती के महल मे गये।

राजमती ने रथनेमि का सत्कार किया। वह उनसे कहने लगी कि वास्तव मे आप सब पकार अच्छे हैं। दूती ठीक ही कहती थी। जब से मेरे पास दूती द्वारा आपका विवाह–प्रस्ताव आया तभी से मैं आपकी प्रतीक्षा कर रही थी। प्रसन्नता की बात है कि आपने मेरे लिए यहा पधाने का कष्ट किया।

राजमती की बाते सुनकर रथनेमि के हृदय मे आनन्द की लहरे उठ रही थी। वे अपने मन मे फूले नही समाते थे और सोचते थे कि अच्छा हुआ जो इसके साथ भ्राता का विवाह नही हुआ और वे द्वार पर से ही लौट गये। जान पडता है कि यह सौन्दर्य की प्रतिमा मेरे ही भाग्य मे थी इसी से भ्राता ने इसके साथ विवाह नही किया। अन्यथा यह त्रिलोक–सुन्दरी मुझे कैसे प्राप्त होती?

राजमती की बात समाप्त होने पर रथनेमि कहने लगे– राजकुमारी मैंने आपके सौन्दर्य और आपकी चातुरी की जो प्रशसा सुनी थी वह बिल्कुल सत्य निकली यह जानकर मुझे बडी प्रसन्नता है। आप सचमुच ससार मे अद्वितीय सुन्दरी हैं। मैंने जब से आपके सौन्दर्य की प्रशसा सुनी और आपको देखा तभी से मेरे हृदय मे आपके साथ विवाह करने की इच्छा उत्पन्न हो गई थी परन्तु बीच मे भाता का सम्बन्ध आपके साथ ठहर गया था इससे मुझे अपनी इच्छा दबा देनी पडी थी। लेकिन जिसकी जिससे सच्ची लगन होती है वह उसे मिल ही जाता है। शायद यह बात सही ठहरने के लिए ही भाता आपके साथ विवाह किये बिना ही लौट गये और मुझे इस सौभाग्य का

सुअवसर प्राप्त हुआ। यद्यपि मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप मेरा प्रस्ताव स्वीकार ही करेगी लेकिन मै आपके मुख से उसकी स्वीकृति सुनने को उत्सुक हू।

रथनेमि की बाते सुनकर राजमती अपने हृदय मे विचार कर रही थी कि हाय! ससार मे पुरुषो का इतना पतन है? मेरे रूप–लावण्य पर मुग्ध होकर ये अपने भाई का भी अनिष्ट चाहते थे! इनके हृदय का भातृ–स्नेह भी सूख गया था! भगवान् ने मुझे किसी भी कारण से त्यागा हो किन्तु उनके त्याग को इन्होने अपना सौभाग्य माना! धिक्कार है उस मोह को जिसके प्रताप से ऐसे और इससे भी भयकर पाप होते हैं! भगवान् मेरे साथ विवाह किये बिना ही लौट गये, लेकिन यदि विवाह कर लेते तो मोहग्रस्त भाई द्वारा उनकी हत्या की चेष्टा होना भी कोई असम्भव बात न होती।

राजमती ने रथनेमि से कहा– मैंने आपके प्रस्ताव का उत्तर देने के लिए तो आपको बुलाया ही है। आप धैर्य रखिये लेकिन मैंने प्रस्ताववाहिका से यह कहा था कि आप अपने साथ मेरे लिए कोई प्रिय पेय पदार्थ भी लेते आवे। क्या आप कोई पेय पदार्थ लाये हैं?

रथनेमि– हा–हा मै आपकी इस सर्वप्रथम आज्ञा का उल्लघन कैसे कर सकता था! आपने मेरे प्रेम की परीक्षा के लिए एक तुच्छ वस्तु ही मगवाई लेकिन यदि आप कोई बडी से बडी वस्तु भी मगवाती तो मैं उसे भी लाने का प्रयत्न करता। यहा तक कि यदि आप मेरे प्राण मागती तो मैं वह भी आपको भेट करने मे न हिचकिचाता।

यह कह कर रथनेमि ने सेवक के पास से थाल ले लिया और उस थाल पर से वस्त्र हटाकर उसमे रखा हुआ पेय पदार्थ का कटोरा राजमती के सामने किया। मुस्कराती हुई राजमती ने थाल मे से पेय पदार्थ का कटोरा उठा लिया। उसने विचारा कि इस समय रथनेमि अत्यधिक मोहग्रस्त है। ये मोह की सबसे ऊची सीढी पर पहुच चुके हैं। इस समय यदि इन्हे मोह की उस सीढी से गिराकर उपदेश दिया जावेगा तो बहुत अच्छा प्रभाव होगा। जो एक ओर जितने ऊपर से गिरता है वह दूसरी ओर उतना ही ऊपर चढता है। यह नियम ही है।

इस प्रकार विचार कर राजमती रथनेमि का लाया हुआ पेय पदार्थ पी गई और ऊपर से पास ही रखी हुई ऐसी औषध खा गई जिसमे तत्काल वमन करने का गुण था। राजमती को अपना लाया हुआ पेय पदार्थ पीते देख कर रथनेमि की प्रसन्नता और भी बढ गई। वे विचारते थे कि मेरा प्रस्ताव

राजमती ने मान लिया है। मेरी लाई हुई भेट को स्वीकार कर लेना, बल्कि तत्काल ही पी जाना, मेरा प्रस्ताव मानने का प्रमाण है लेकिन इसने यह पेय पदार्थ मागकर किन भावो को व्यक्त करने के लिए पीया है। शायद इसने यह बताया है कि जिस तरह मैं आपके इस पदार्थ को अपने मे स्थान देती हू, उसी तरह आपको भी अपने हृदय मे स्थान देती हू।

रथनेमि इसी तरह की कल्पनाए करते हुए अपने हृदय मे हर्षित हो रहे थे। उसका अनुमान था कि अब राजमती के मुह से यही निकलने वाला है कि मैंने आपका पस्ताव इसी तरह स्वीकार कर लिया है, जिस तरह आपके लाये हुए पेय पदार्थ को स्वीकार कर लिया है। लेकिन क्षण–भर के बाद ही उनकी यह आशा मिट्टी मे मिल गई। उन्होने देखा कि राजमती के मुह से स्वीकृति के शब्द निकलने के बदले मेरा लाया हुआ वही पेय पदार्थ निकल रहा है, जिसे इसने क्षण–भर पहले पीया था और उस वमन को राजमती उसी कटोरे मे ले रही है, जिसमे रख कर मैं वह पेय पदार्थ लाया था। यह देखते ही रथनेमि काप–से उठे। वे इस दृश्य के विषय मे कुछ भी निश्चय न कर सके। उन्हे इस आशका से खेद हो रहा था कि कही मेरे लाये हुए इस पदार्थ मे कोई दूषण तो नही था जिससे राजकुमारी को वमन हो गई। वे इस तरह सोच ही रहे थे इतने ही मे राजमती ने वह वमन से भरा हुआ कटोरा रथनेमि के सामने किया और उनसे कहा– राजकुमार! लीजिए, यह पी लीजिए।

वमन के कटोरे को अपने सामने देखकर रथनेमि पीछे की ओर हट गये। क्रोध ने उनके हृदय की सारी प्रसन्नता को नष्ट कर दिया और उसके स्थान पर अपना आधिपत्य जमा लिया। उनकी आखे लाल हो गई होठ फडकने लगे। वे उसी क्रोधावेश मे राजमती से कहने लगे– तुम्हे अपने रूप–लावण्य का इतना गर्व है! तुम किसी भद्र पुरुष को अपने यहा बुलाकर उसका इस तरह अपमान करती हो! क्या तुमने मुझे कौआ या कुत्ता समझ रखा है, जो अपने द्वारा वमन की गई वस्तु पिलाना चाहती हो!

रथनेमि की क्रोधपूर्ण बाते सुनकर राजमती ने उन्हे उपदेश देने का अच्छा अवसर समझा। उसने रथनेमि से कहा– राजकुमार! क्रुद्ध मत होइये धैर्य रखिये। यह तो मैं आपके प्रेम की परीक्षा कर रही हू। मैं जानना चाहती हू कि आप वास्तव मे मेरे साथ विवाह करना चाहते हैं या केवल यो ही कह रहे हैं?

रथनेमि– क्या इसकी परीक्षा का यही साधन था!

राजमती– हा।

रथनेमि– वाह! परीक्षा का बडा अच्छा उपाय सोचा! ससार मे और कोई उपाय तो जैसे था ही नही।

राजमती– इस उपाय के सिवा आपके प्रेम की परीक्षा हो ही नहीं सकती थी। यदि आप इस कटोरे के पदार्थ को पी जाते तो मैं समझती कि आप मुझे अपना सकेगे।

रथनेमि– क्या मैं वमन किया हुआ पदार्थ पी जाता?

राजमती– वमन किया हुआ पदार्थ हुआ है तो क्या हुआ! है तो वही न जो आप लाये थे और जो आपका अत्यधिक प्रिय है। इसके रग रूप या स्वाद मे भी कोई अन्तर नहीं आया है क्योकि यह तो केवल मेरे पेट तक गया ही था और वैसे ही निकल आया है।

रथनेमि– तब भी क्या हुआ है तो वमन किया हुआ ही न!

राजमती– लेकिन जो मेरे साथ विवाह कर सकता है उसके लिए वमन किया पदार्थ पीना कोई कठिन कार्य नही है।

रथनेमि– क्यो?

राजमती– इसलिए कि जिस प्रकार यह पदार्थ मेरे द्वारा वमन किया हुआ है त्यागा हुआ है उसी प्रकार मैं भी आपके बडे भ्रात द्वारा त्यागी हुई हू। आप मुझसे बहुत प्रेम करते हैं इसलिए मुझे तो दूसरे के द्वारा त्यागी हुई होने पर भी अपनाने को तैयार है, फिर इस पदार्थ ने कौनसा अपराध किया है जो इसे आप नही अपनाते? यह भी तो आपको बहुत प्रिय है न! इसके सिवाय किसी और के द्वारा त्यागा हुआ भी नही है किन्तु ऐसे व्यक्ति के द्वारा त्यागा हुआ है जिस पर आप मुग्ध हैं। उसको पाने मे तो आप अपना अपमान मानते है और मुझे अपनाने मे मेरे साथ विवाह करने मे अपना अपमान नही मानते इसका क्या कारण? जिस प्रकार त्यागी हुई होने पर भी मेरे रूप–लावण्य मे कोई खराबी नही आई है उसी प्रकार त्यागा हुआ होने पर भी इस पदार्थ के रग–रूप मे कोई बुराई नही आई है। फिर इसे पीने वाले को तो कौए या कुत्ते के समान मानते है और मुझे अपनाने मे यह विचार क्यो नहीं होता?

राजमती की युक्तिपूर्ण बात सुनकर रथनेमि बहुत लज्जित हुए। लज्जा के मारे उनकी गर्दन झुक गई। रथनेमि को इस प्रकार लज्जित देखकर राजमती ने विचार किया रथनेमि आखिर है तो कुलीन। कुलीन पुरुष सच्ची बात के सामने झुक भी जाता है और उसे अपने दुष्कृत्य पर लज्जा भी होती है।

राजमती, रथनेमि से फिर कहने लगी— यादव कुमार मेरे साथ विवाह करने का प्रस्ताव करने मे आपको कुछ तो विचार होना चाहिए था। मैं आपके बडे भ्राता की परित्यक्ता पत्नी हू, फिर भी आप मोहवश मेरे साथ विवाह करने को तैयार हो गये। अपने बडे भाई के सम्बन्ध का आपको कुछ भी विचार नही हुआ? बल्कि आपके बडे भाई मुझे त्याग कर चले गये, इसे आपने अपना सौभाग्य माना। कुछ तो विचार करो। आपके ये विचार आपको उन्नति की ओर ले जावेगे या अवनति की ओर यह तो सोचो।

रथनेमि लज्जा के मारे जैसे पृथ्वी मे गडे जा रहे थे। वे सोच रहे थे कि मैने यह क्या किया? राजकुमारी राजमती का कथन बिल्कुल ठीक है। एक स्त्री के लिए मैं अपने भाई का सम्बन्ध भी भूल गया। धिक्कार है मुझे।

रथनेमि राजमती से कहने लगे— राजकुमारी, तुमने मुझे शायद यह उपदेश देने के लिए ही यहा बुलाया था। तुमने मुझे अपने उपदेश द्वारा पवित्र बना दिया। आप मेरे अपराध क्षमा करिये। मैं। अपने कृत्य पर बहुत लज्जित हू। अब मैं जाता हू। आप शीघ्र ही सुनेगी कि रथनेमि ने अपने दुष्कृत्य का प्रायश्चित्त कर डाला।

यह कह कर रथनेमि चुपचाप राजमती के महल मे चल दिये। उनके हृदय मे लज्जा और ग्लानि थी। साथ ही ससार से विरक्ति भी थी। वे सोचते थे कि भ्राता ने जाने के समय जो उपदेश दिया था, वह मुझे उस समय अरुचिकर हुआ था परन्तु अब उस उपदेश का रहस्य मेरी समझ मे पूरी तरह आ गया है। मैं समझ गया हू कि यह ससार कैसा है और ससार—व्यवहार मे फसे रहने पर मनुष्य किस प्रकार से घृणित कार्य कर सकता है। इसलिए अब मैं भी ससार—सम्बन्ध तोडकर भ्राता का अनुगमन करूगा।

अध्याय दस
पति प्रेम

भारत की स्त्रियो का रहन–सहन और उनकी सस्कृति प्राचीनकाल से ही अन्य देशो के रहन–सहन और वहा की सस्कृति से भिन्न रही है। यह भिन्नता आज भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। भारत की स्त्रिया सदा उच्च और आध्यात्मिक आदर्श को सामने रखती आई हैं। सीता मदनरेखा दमयन्ती द्रौपदी आदि के चरित्र को भारत की स्त्रिया बडे आदर से देखती हैं। अपने लिए आदर्श मानती हैं और उनके चरित्र को अपनी जाति के लिए गौरवपूर्ण समझती ह। यद्यपि पाश्चात्य देशो का अनुकरण करने के लिए भारत की स्त्रिया भी विवाह–सम्बध–विच्छेद तथा पुनर्विवाह आदि कानूनो की माग करन लगी हैं परन्तु यह माग कुछ ही अग्रेजी शिक्षा से प्रभावित स्त्रियो की ह भारत की अधिकाश स्त्रिया तो इस प्रकार के कानूनो की माग की भावना को हृदय म स्थान दना ही पाप समझती हैं और जिन स्त्रियो की ओर से इस प्रकार की माग हुई उनम से भी बहुत–सी अब यह समझने लगी हैं कि इस प्रकार क कानूना का परिणाम कैसा बुरा होता है तथा भारतीय सस्कृति को मिटान स कसी हानि होगी। जिन दशा मे विवाह–विच्छद कानून प्रचलित हे उन दशा क पति–पत्नी आज दाम्पत्य जीवन की ओर स कैस दु खी हो रहे ह वहा दुराचार का कैसा ताण्डव होता ह यह कहा नही जा सकता। कवल इग्लण्ड म और वह भी घरलू झगडा क कारण प्रतिवर्ष 15 हजार पत्निया पतिया का छाड दती है और 3500 पति पत्नी का [illegible] क कारण जल जात हैं।

भारत की सभ्यता का न समझन वाल पाश्चात्य लाग भारत की [illegible] चाह करत हा परन्तु उनका यह उपहास [illegible] ह [illegible]। तु[illegible] न कहा ह –

द्वारे टाट न दै सकहि, तुलसी जे नर नीच।
निदरहि बलि, हरिचन्द्र कह, कहु का करण दधीच।।1।।
भलो कहहि जाने बिना, की अथवा अपवाद।
तुलसी गावर जानी जिय, करब न हर्ष विषाद।।2।।

अर्थात्– अपने दरवाजे पर टाट भी नही दे सकते, ऐसे नीच लोग राजा बलि तथा हरिश्चन्द्र जैसे दानी की भी निन्दा करते हैं। और कर्ण तथा दधीचि जैसे दानी तो उनकी दृष्टि मे जैसे कुछ हैं ही नहीं। लेकिन यदि कोई जाने बिना किसी की निन्दा या पशसा करता है तो वह निरा गवार है, यह समझ कर उनकी निन्दा या पशसा से न दु ख करना चाहिये, न प्रसन्नता।

यह बात उन पाश्चात्य लोगो के लिए भी समझनी चाहिए जिनके यहा व्यभिचार तो कोई अपराध या पाप ही नही है फिर भी जो सीता दमयन्ती, द्रौपदी आदि सतियो की निन्दा करते हैं। आज भारत के लोग दाम्पत्य जीवन की ओर से इग्लैण्ड आदि देशो की तरह दु खी नहीं हैं, इसका एकमात्र कारण भारत की स्त्रियो के हृदय मे भारत की प्राचीन स्त्रियो का आदर्श होना है। भारत मे कोई स्त्री ऐसी शायद ही निकले जो सीता, दमयन्ती आदि सतियो का नाम न जानती हो उनके चारित्र से यत्किचित् भी परिचत न हो या उनके चरित्र को आदर की दृष्टि से न देखती हो। सीता और दमयन्ती ऐसी स्त्रिया भारत मे ही हुई हैं जो अनेक कष्ट पडने और पति द्वारा त्यागी जाने पर भी पति–परायणा ही रही।

सीता, मेणरया दमयन्ती आदि भी जितनी पतिव्रता और पति–परायणा स्त्रिया प्राचीन काल मे हुई हैं राजमती उन सबसे बढकर है। सीता आदि और सतियो का अपने पति द्वारा पाणिग्रहण हो चुका था। वे थोडा–बहुत पति–सुख भोग चुकी थी और इस कारण यदि वे पतिभक्ता नहीं रहती हैं तो उनके लिए लोकापवाद अवश्यभावी था। लेकिन राजमती के लिए इनमें से कोई बात नही थी। राजमती का तो भगवान् अरिष्टनेमि के साथ विवाह भी नही हुआ था और भगवान के लोट जाने के पश्चात् यदि वह किसी के साथ अपना विवाह करती तो कोई उसकी निन्दा भी नहीं कर सकता था। लौकिक नीति के अनुसार विवाह नही हुआ था इसलिए राजमती भगवान् अरिष्टनेमि की स्त्री नही बनी थी। फिर भी राजमती ने भगवान अरिष्टनेमि को अपना पति मानकर उत्कृष्ट पतिप्रेम का जो परिचय दिया उसके कारण राजमती

भारत की समस्त सती–स्त्रियो मे अग्रणी मानी जाती है। राजमती के सतीत्व का उच्च आदर्श भारत के सिवा किसी देश वालो की कल्पना मे भी आना कठिन है।

भगवान् अरिष्टनेमि तोरणद्वार पर से लौटकर अपने महल को आये। भगवान् अरिष्टनेमि विवाह किये बिना ही लौट आये यह जानकर इन्द्रादिक देव बहुत प्रसन्न हुए। भगवान् के महल मे पहुचते ही लोकान्तिक देव उनकी सेवा मे उपस्थित हुए। वे भगवान् से प्रार्थना करने लगे कि हे प्रभो, अब आप धर्मतीर्थ प्रवर्तने की कृपा करिये। ससार के लोग विषय भोगो मे ही अपने जीवन की सफलता मानते हैं और इसके लिए अनेक दीन जीवो की हिसा कर रहे हैं। आप धर्मोपदेश की गगनभेदी दुदुभी बजाकर दु खी जीवो की रक्षा करिये तथा जो लोग अपने सुख के लिए दूसरे जीवो को दु ख देकर घोर पाप कर्म मे प्रवृत्त हो रहे हैं उनको भी पाप करने से बचाइये।

लोकान्तिक देवको की यह प्रार्थना स्वीकार करके भगवान् अरिष्टनेमि वार्षिकदान देने लगे। राजमती के यहा से लौटकर रथनेमि भी ससार से विरक्त की भाति रहते हुए भगवान् की दीक्षा की प्रतीक्षा करने लगे। इसी प्रकार भगवान् के उपदेश से प्रभावित यादव भी ससार से विरक्त रहने लगे। उग्रसेन ने जब यह सुना कि भगवान् अरिष्टनेमि वार्षिकदान दे रहे हैं और वार्षिकदान की समाप्ति पर दीक्षा लेगे तब उन्होने राजमती का विवाह किसी दूसरे के साथ करने का विचार किया। लेकिन इसके लिए जब तक राजमती की स्वीकृति न मिले तब तक वे राजमती का विवाह–सम्बन्ध किसी दूसरे पुरुष के साथ नही कर सकते थे। इसलिए अपनी पत्नी सहित वे राजमती को समझाने और किसी दूसरे पुरुष के साथ विवाह करने की स्वीकृति लेने के लिए राजमती के पास आये। वे राजमती से कहने लगे– पुत्री तू अरिष्टनेमि के लिए इतना दु ख क्या कर रही है! अभी अरिष्टनेमि का और तेरा सम्बन्ध ही क्या हुआ! विवाह तो हुआ ही नही था जो तुझे किसी प्रकार की चिन्ता करनी पडे! तू अभी कुमारी है। तेरा विवाह दूसरी जगह करने मे नीति धर्म या समाज किसी का भी अपवाद नही है। यद्यपि हम पहले तेरा विवाह अरिष्टनेमि के साथ ही करना चाहते थे लेकिन हमने सुन रखा था कि अरिष्टनेमि विवाह करना नही चाहते इससे हमने इस विषय मे कोई विचार नही किया था। फिर जब कृष्ण स्वय ही आये और उन्होने मुझसे अरिष्टनेमि के लिए तेरी याचना की तभी मैंने यह विवाह–सम्बन्ध स्वीकार

किया था। इतना होने पर भी अरिष्टनेमि चले गये तो इससे अपनी क्या हानि हुई? यह तो उनके पिता, भ्राता आदि का ही अपमान हुआ, जिन्होने मुझसे तेरी याचना की थी और जो बरात सजा कर आये थे? एक तरह से यह अच्छा ही हुआ कि अरिष्टनेमि तेरे साथ विवाह किये बिना ही लौट गये। यदि विवाह हो जाता और फिर वे तुझे त्याग जाते या दीक्षा ले लेते तो जन्म–भर दु ख रहता। अब तू अरिष्टनेमि के लिए किचित् भी दु ख या चिन्ता मत कर। हम तेरा विवाह किसी दूसरे राजा या राजकुमार के साथ कर देगे।

माता–पिता की अन्तिम बात सुनकर राजमती को बडा ही दु ख हुआ। वह अपने माता–पिता से कहने लगी कि पूज्य पिताजी! आर्यपुत्री का विवाह एक ही बार होता है दो बार नही होता। चाहे वह पति द्वारा परित्याग कर दी गई हो या विधवा हो गई हो, आर्यपुत्री स्वप्न मे भी दूसरे पुरुष को नही चाहती। मेरा विवाह एक बार हो चुका है अत अब मैं अपना विवाह और कैसे कर सकती हू, और आपकी दूसरा विवाह करने की सम्मति भी कैसे उचित हो सकती है? अब मेरा किसी और पुरुष के साथ विवाह करना, दूसरा विवाह होगा। आप मेरे सामने दूसरा विवाह करने का तो नाम भी न लीजिए।

माता– हम तेरे से दूसरा विवाह करने का कब कह रहे हैं? क्या हम आर्य–पद्धति से अपरिचित हैं।

राजमती– फिर आप क्या कह रही हैं? यदि अब मेरा किसी दूसरे पुरुष के साथ विवाह हुआ तो क्या वह पुनर्विवाह न माना जावेगा?

माता– नही।

राजमती– क्यो?

माता– इसलिए कि अभी तेरा विवाह नही हुआ है।

राजमती– आप भ्रम मे है, मेरा विवाह हो चुका है।

माता– किसके साथ?

राजमती– भगवान् अरिष्टनेमि के साथ।

माता– समझ मे नही आता कि तू कह क्या रही है। कही तू कोई स्वप्न की बात तो नही कह रही है? भगवान् अरिष्टनेमि अपने घर तक भी नही आये, उन्होने तेरे को और तूने उनको भली प्रकार देखा भी नही, हमने कन्या–दान करके तेरा हाथ भी उन्हे नही सौंपा और तू कहती है कि विवाह हो गया!

राजमती– वे यहा तक नहीं आये या आपने मेरा हाथ उनके हाथ में नही सोपा तो इससे क्या हुआ? क्या विवाह के लिए ऐसा होना आवश्यक है?

माता– आवश्यक क्यो नही है?

राजमती– नही माता! आवश्यक नही है। यह तो एक बाह्य क्रिया है, जिसका होना या न होना इच्छा और परिस्थिति पर निर्भर है।

माता– फिर विवाह का अर्थ क्या होगा?

राजमती– हृदय से किसी को पति–रूप या पत्नी–रूप स्वीकार करना यही विवाह है। विवाह के इस अर्थ से ससार का कोई भी व्यक्ति इनकार नही कर सकता और इसी अर्थ को लेकर मैं। कह रही हू कि मेरा विवाह भगवान अरिष्टनेमि के साथ हो चुका। मैं भगवान् अरिष्टनेमि का हृदय से पति–रूप स्वीकार कर चुकी हू, अत अब मैं किसी और पुरुष के साथ विवाह करके आर्य–कन्या के कर्तव्य को दूषण नही लगा सकती।

माता– राजमती! तू विवाह का जो अर्थ लगा रही है उससे हम इनकार नही करते लेकिन हृदयगत भावो को ससार के सभी लोग नहीं जान सकते। इसलिए विवाह–सम्बन्धी स्थूल क्रिया का होना आवश्यक है और जब तक वह न हो जावे कोई पुरुष या स्त्री विवाह–बन्धन से बद्ध नही माने जा सकते।

राजमती– कोई दूसरा मुझे विवाह–सम्बन्ध मे बद्ध माने या न मानें मै तो अपने को ऐसी मानती हू! विवाह–सम्बन्धी स्थूल क्रिया देखने की आवश्यकता तो तब है जब मैं अपने हृदय के भावो को छिपाऊँ। विवाह–सम्बन्धी स्थूल क्रिया भी हृदय के आश्रित है केवल विवाह ही नही समस्त कार्य का मूल हृदय है। जिस बात को हृदय एक बार स्वीकार कर चुका है केवल सासारिक विषय–सुख के लिए उससे मुकरना और विवाह सम्बन्धी स्थूल क्रिया न होने का आश्रय लेना कम से कम मैं ऐसा अपने लिए उचित नही समझती।

माता– तू चाहे विवाह क्रिया को न माने लेकिन ससार तो मानता है न! यदि तू अभी किसी से यह कहे कि मैं अरिष्टनेमि की पत्नी हू, तो क्या ससार के लोग इस बात को मानेगे! और तो और क्या स्वय अरिष्टनेमि ही यह स्वीकार करेगे कि राजमती मेरी पत्नी है?

हृदय से मुझे पत्नी माना भी हो, तब भी वे विवाह–सम्बन्धी स्थूल क्रिया न होने के कारण अपने–आप को विवाह–सम्बन्ध मे न बधा हुआ मान सकते हैं, लेकिन मैं ऐसा क्यो मानू! मेरा हृदय जैसा पहले था वैसा ही अब है। जैसा पहले भगवान् अरिष्टनेमि को अपना स्वामी मानती थी, वैसा ही अब मानती हू। फिर मै स्थूल किया क्यो देखू! रही ससार के लोगो की बात, कि वे मुझे भगवान् अरिष्टनेमि की पत्नी नही मान सकते, परन्तु ससार के लोग ऐसा माने या न माने मुझे इससे क्या है! यह मै क्यो देखू! मुझे यह देखने की आवश्यकता तो तब ही हो सकती है, जब मै भगवान् अरिष्टनेमि को भी विवाह–सम्बन्ध मे बधा हुआ कहूँ, और ससार के लोगो से न्याय कराने जाऊ। मै भगवान अरिष्टनेमि को कहती ही नही हू, न मुझे इस विषय मे ससार के किसी आदमी से किसी पकार का न्याय ही कराना है। फिर ससार के लोग चाह कुछ भी कहे मुझे उससे क्या मतलब है!

माता– देख राजमती, तू इतनी उतावली बनकर अपने लिए इस प्रकार का निर्णय मत कर। काम–विकार की प्रचण्ड तरगो मे बडे–बडे बह जाते हैं, तू तो अभी लडकी है। तू आज तो इस प्रकार की बाते कहती है परन्तु जब काम की ज्वाला शरीर को दग्ध करने लगेगी उस समय तेरी ये बाते न मालूम कहा चली जावेगी और तब विवाह की स्थूल क्रिया का ही आश्रय लेना पडेगा। जिस स्थूल क्रिया को आज ठुकरा रही है, थोडे दिन बाद उसे ही महत्त्व देना कितना बुरा रहेगा इसे जरा विचार। सारा ससार विवाह की स्थूल क्रिया को ही देखता है और उस क्रिया के होने पर ही विवाह हुआ मानता है। यदि तू उसे न मानेगी तो फिर आगे क्या परिणाम होगा, इसे सोच ले।

राजमती– माता आपका यह कथन ठीक है। काम के सामने बडो–बडो को नतमस्तक होना पडता है यह भी मै मानती हू। लेकिन यदि मेरे विवाह की स्थूल क्रिया हो गई होती और मै वह क्रिया होते ही विधवा हो जाती तो क्या उस दशा मे काम मुझ पर प्रकोप न करता! यदि करता, तो उस काम–प्रकोप से बचने के लिए आप मुझे क्या सम्मति देती? क्या उस दशा मे आप मुझे दूसरा विवाह कहने का कहती? उस समय तो आप भी मुझे धैर्य रखने का ही उपदेश देती। जो कार्य मे स्थूल क्रिया से विवश होकर करती वही कार्य हृदय की प्रेरणा से क्यो न करू? ससार के लोग बुद्धिमान हैं इसी से वे स्थूल क्रिया न होने के कारण दूसरा विवाह करना अनुचित न मानते

होगे, परन्तु मेरे मे इस प्रकार का विचार करने की बुद्धि ही नहीं है। मैं तो अपनी बुद्धि भी उन्ही को समर्पित कर चुकी हू, जिन्हे मैंने हृदय से पति माना है। मेरे तो पति भगवान् अरिष्टनेमि ही हैं, फिर चाहे मै स्थूल शरीर से उनसे न भी मिल सकू, परन्तु मेरा हृदय तो उनसे मिल ही गया। विवाह सम्बन्धी स्थूल क्रिया न होने के कारण जो स्त्रिया दूसरे पुरुष के साथ विवाह करती हैं मैं उनकी निन्दा नही करती परन्तु मै स्वय तो ऐसा कदापि न करुगी।

राजमती का अन्तिम उत्तर सुनकर उसके माता–पिता राजमती का विवाह करने की ओर से हताश हो गये। उन्होने राजमती से अधिक कुछ कहना–सुनना आवश्यक न समझा और राजमती से यह कह कर वहा से चले गये कि तू इस विषय पर शान्ति से विचार कर। उन्होने राजमती की सखियो से भी कहा कि तुम लोग राजमती को सब बातो का ध्यान दिलाकर समझाओ। इस प्रकार का झूठ पकडने का परिणाम इसके लिए अच्छा न होगा।

राजमती के माता–पिता के चले जाने के पश्चात राजमती की सखिया राजमती को समझाने लगी। वे कहने लगी– सखी ससार मे कोई भी मनुष्य सुख–दुख से बदलना नही चाहता न कोई भी आदमी अपने को बलात् दुख मे डालता है। यह बात दूसरी है कि विवश होकर दुख सहना पडे परन्तु प्रयत्न सुख–प्राप्ति का ही करते है। दुख–प्राप्ति का प्रयत्न कोई नही करता फिर आप अपने लिए दुख मोल क्यो ले रही है? जब आपका विवाह अभी हो सकता है तब इस सुख–सुयोग को क्यो ठुकरा रही हैं? महाराजा और महारानी ने आपसे जो–कुछ कहा है उस पर भली प्रकार विचार करो और विवाह का सुअवसर न जाने दो। अन्यथा, फिर बहुत पश्चात्ताप करना पडेगा।

सखियो की बात सुनकर राजमती कहने लगी– सखियो! मुझ बुद्धिहीन की समझ मे तुम लोगो की बात जरा भी नही आती। मै विचार करने बैठती हू तब भी मेरे विचार मे भगवान अरिष्टनेमि के सिवा और किसी का ध्यान तक नही आता। सच्ची बात तो यह है कि अब मेरे मे या तो बुद्धि ही नही रही या वह परतन्त्र बन गई। बुद्धि पर भी भगवान् अरिष्टनेमि का आधिपत्य हो गया है। मै तो बिल्कुल वह विक्षिप्ता हू, जिसे केवल भगवान अरिष्टनेमि की ही धुन है। हृदय कहता है कि इस जन्म के लिए तो तू भगवान् अरिष्टनेमि को अपना पति बना चुकी है। अब तुझे दूसरा पति बनाने का अधिकार नहीं।

है। हा मस्तक दूसरा पति बनाने के विषय मे विचार कर सकता था, परन्तु हृदय ने उसे भी अपने पभाव से प्रभावित कर लिया है। ऐसी दशा मे तुम्हारी बात मेरी समझ मे आवे तो कैसे! सखियो, इस प्रकार की बाते करके मुझ दु खिनी के हृदय को और दु खित न करो। मेरे लिए पति का विरह ही असह्य हो रहा है। मेरे लिए एक–एक दिन वर्ष के समान बीतता है और एक–एक रात युग के समान बीतती है। मेरा हृदय प्राणनाथ के वियोग से जल रहा है। उस जलते हुए हृदय पर तुम इस तरह की बाते करके नमक मत लगाओ। कहा तो मै सोचती थी कि विवाह होते ही मै पति के साथ आनन्दपूर्वक सुख करूगी आगामी शरद्काल की स्वच्छ निर्मल–रात पति के साथ सुखपूर्वक बिताऊगी और चकोरी की तरह पति के चन्द्रमुख को देखकर आनन्दित होऊगी लेकिन कहा आज यह विरह–वेदना सहनी पड रही है! सखियो का कर्तव्य ऐसे समय मे मुझे विरह–वेदना से मुक्त करने का पयत्न करना तथा धैर्य देना है लेकिन आप लोग तो ऐसी बाते करती हो कि जिससे मेरा दु ख वृद्धि पाता है। सखियो, इसमे तुम लोगो का किचित् भी अपराध नही है। यह तो मेरे पूर्व पापो का ही कारण है। यदि ऐसा न होता तो प्राणनाथ मुझे विरह–ज्वाला मे जलने के लिए छोडकर ही क्यो चले जाते! और आप भी सखियो के योग्य कर्त्तव्य को क्यो भूलती! फिर भी मैं तुम लोगो से यह अनुरोध करती हू कि इस प्रकार की बाते करके मुझे कष्ट न पहुचाओ। मैं भगवान् के सिवा ससार के और समस्त पुरुषो को पिता–भ्राता के समान मानती हू। मेरे पति तो भगवान ही है। मैं उन्ही के नाम पर अपना जीवन बिताऊगी।

सखियो तुम मुझे यह भय दिखाया करती हो कि किसी दूसरे के साथ विवाह न करने पर जब काम का प्रकोप होगा तब दु ख पाओगी, लेकिन क्या काम मुझ अबला को ही कष्ट देगा? पति को कष्ट न देगा? पति ने मुझे त्याग कर किसी दूसरी का पाणिग्रहण तो किया ही नही है जो उसके कारण पति को काम–पीडा न हो और मुझे ही हो। जिस स्थिति मे पति है उसी स्थिति मे मैं हू। जब वे काम से होने वाले कष्ट सहेगे तो मैं क्यो न सहूँ? मैं उन कष्टो से भय खा कर अपने विचार से पतित क्यो हो जाऊ? स्त्री का कर्तव्य पति का अनुगमन करना है। अत जिस प्रकार पति कष्ट सहे उसी प्रकार मुझे भी कष्ट सहने चाहिए और यदि पति काम पर विजय प्राप्त करे तो मुझे भी वैसा ही करना चाहिए। इसलिए तुम लोग मुझे इस प्रकार भय न दिखाओ किन्तु पति का अनुसरण करने की ही शिक्षा दो।

राजमती की बातो से सखिया चुप हो गईं। उन्होने फिर भी राजमती को समझाने और विवाह करना स्वीकार करने के लिए बहुत प्रयत्न किया परन्तु उनका सब प्रयत्न निष्फल हुआ। राजमती भगवान् अरिष्टनेमि के प्रेम मे ऐसी रग गई थी कि अब उस पर किसी की बातो से कोई दूसरा रग चढता ही न था।

राजमती को दिन–रात भगवान् अरिष्टनेमि का ही ध्यान रहता था। वह कभी तो भगवान् के सौन्दर्य की प्रशसा करती थी कभी उनके बल–पराक्रम की और कभी उनके द्वारा की गई पशु–पक्षियो की करुणा की। इसी प्रकार कभी वह अपने पूर्व–कर्म की निन्दा करती थी कभी इस जन्म के पापो के आलोचना करने लगती थी और कभी अपने दुर्भाग्य को कोसने लगती थी। उसने समस्त शृगार–सामग्री त्याग दी। वह राग–रग से विमुख हो गई और पति–विरह का कष्ट भोगती हुई वैरागिनी की तरह समय बिताने लगी।

अध्याय ग्यारह
दीक्षा

भारत की सती महिलाए पति के जीवन से ही अपना जीवन मानती है। वे पति से भिन्न अपना अस्तित्व ही नही समझती हैं, किन्तु पति के अस्तित्व मे ही अपना भी अस्तित्व मानती हैं। पति की सेवा, पति की आज्ञा का पालन, पति के सत्कार्यो का अनुकरण करना वे अपना साधारण कर्तव्य मानती है। वे पति के सुख मे अपने को सुखी और पति के दु ख मे अपने को भी दु खी मानती हैं। किसी भी समय और किसी भी दशा मे वे पति से असहयोग नही करती, न पति से विमुख ही होती हैं। बल्कि इस नियम का पालन वे उस समय विशेष रूप से करती हैं जब पति सासारिक सुख–विहीन हो गया हो या पति ने सासारिक सुखो का परित्याग कर दिया हो। इस प्रकार वे दाम्पत्य जीवन को विषयजन्य सुखो के लिए भी वे इस जीवन का आश्रय लेती हैं और फिर इस जीवन से निकल कर अपने आत्मा की उच्च दशा पर पहुचा देती है।

राजमती को भगवान् अरिष्टनेमि की ओर से न तो विषयजन्य सुख मिले ही थे न मिलने की आशा ही थी। फिर भी वह भगवान् अरिष्टनेमि पर अनुरक्त थी। किसलिए? केवल इसीलिए कि मैं पति प्रेम के द्वारा ससार के प्राणी–मात्र से प्रेम करना सीख सकूगी। यदि वह विषयजन्य सुखो की ही इच्छुका होती तो भगवान् अरिष्टनेमि के चले जाने के बाद अवश्य ही किसी और पुरुष के साथ विवाह करना स्वीकार कर लेती और यदि वह ऐसा करती तो उसे कोई लौकिक मर्यादा से भ्रष्ट न कह सकता। लेकिन वह विषयजन्य सुखो के लिए ही भगवान् अरिष्टनेमि से प्रेम नही करती थी, किन्तु उनकी सेवा द्वारा, उनके पदानुगमन द्वारा अपनी आत्मा को उन्नत बनाना चाहती

थी। इसी से जब भी उसको विषयजन्य सुखो का प्रलोभन दिया गया और किसी दूसरे पुरुष के साथ विवाह करने के लिए कहा गया, उसने ऐसे प्रस्ताव को ठुकरा ही दिया। वह सोचती थी कि मेरा काम पति का अनुकरण करना ह। जब मेरे पति ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे हैं, तब मेरा भी कर्तव्य ब्रह्मचर्य का पालन करना ही है। इस समय की लौकिक प्रथा के अनुसार पुरुष अनेक स्त्रियो से विवाह कर सकते हें, फिर भी भगवान ने किसी दूसरी स्त्री के साथ विवाह नही किया तो में। अपना विवाह किसी दूसरे पुरुष के साथ कैसे कर सकती हू! मैं स्वप्न मे भी अपना विवाह किसी और पुरुष के साथ नही करुगी किन्तु जिस प्रकार भगवान अरिष्टनेमि अपना जीवन व्यतीत करेगे उसी तरह म भी अपना जीवन व्यतीत करुगी। मैं अपना कल्याण पति भक्ति द्वारा ही सरल रीति से कर सकती हू। रही पति से दूर होने की बात लेकिन वियोग मे प्रेम का जैसा आधिक्य होता है वैसा आधिक्य समीप होने पर नहीं रहता। इसलिए पति–वियोग की इस विषम स्थिति को भी मैं अपने कल्याण की सहायिका ही मानूगी।

राजमती भगवान अरिष्टनेमि के प्रेम मे मग्न होकर इसी प्रकार के विचार किया करती थी। इसी दशा मे एक साल के लगभग समय बीत गया, फिर भी उसके हृदय म भगवान अरिष्टनेमि के प्रति कोई दूसरे भाव पैदा नही हुए। उसन किन्हीं दूसरे भावो को अपने मे उठने ही न दिया। जब कभी भगवान अरिष्टनमि की ओर से उसे कुछ दूसरा विचार होता, तभी वह उन विचारा का तत्क्षण दबा दती ओर सोचती कि जब म पति के अस्तित्व मे ही अपना अस्तित्व मानती हू तब उन्हाने जो–कुछ भी किया वह अपने ही साथ किया ह मर साथ क्या किया! मेरा कर्तव्य तो उनकी प्रसन्नता से प्रसन्न रहना ह।

उधर भगवान् अरिष्टनमि का वार्षिकदान समाप्त हुआ। भगवान् अरिष्टनमि का दीक्षा महात्सव मनान क लिए इन्द्रादिक देव उपस्थित हुए। श्रीकृष्ण न भगवान क दीक्षा महात्सव की तेयारी करवाई। अन्तत श्रावण शुक्ला 6 का भगवान् अरिष्टनमि न समस्त ससार–सम्बन्ध त्याग कर सयम स्वीकार किया। भगवान् अरिष्टनमि क साथ ही रथनमि आदि एक सहस्र यादवकुमार भी सयम म दीक्षित हुए।

भगवान् का दर्शन कर लेती तब भी मुझे कुछ सतोष हो जाता, परन्तु अब तो यह आशा भी टूट गई, अब मैं किस आशा के सहारे जीवन व्यतीत करूगी। मेरे इस दु खमय जीवन से तो मरना ही श्रेष्ठ है। धिक्कार है इस जीवन को जिसमे पति–वियोग का दु ख सहना पडे। मैंने ऐसे कौनसे पाप किये थे जिसके फलस्वरूप मुझे इस तरह का कष्ट भोगना पड रहा है।

राजमती इस पकार व्याकुल होकर अपने पापो की आलोचनाओ और उनके विषय मे पश्चात्ताप करने लगी। भगवान् अरिष्टनेमि के अनन्य प्रेम से, एकाग्रचित्त होकर एव पापो की निन्दा करने से सहसा राजमती को जाति–स्मृति ज्ञान हो गया। जातिस्मृति ज्ञान होने पर उसे मालूम हुआ कि मेरा और भगवान् अरिष्टनेमि का पूर्व मे आठ भव तक प्रेम–सम्बन्ध रहा है और इसी सम्बन्ध का यह नौवा भव है। इस नौवे भव के प्रेम को भगवान् सासारिक सुखो के नितान्त त्याग मे लगाना चाहते थे, इसीलिए भगवान् ने सयम स्वीकार किया है। सयम द्वारा भगवान् जो अक्षय सुख प्राप्त करना चाहते हैं, मैं उससे वचित क्यो रहूँ? किन्तु मैं भी वह सुख प्राप्त करने का प्रयत्न करू। मुझे ये सूचना देने के लिए ही भगवान् यहा तक पधारे थे। अब मेरा भी कर्तव्य है कि मै अब एक सच्ची पत्नी की तरह उसी श्रेष्ठ मार्ग को ग्रहण करू जो मार्ग पति ने ग्रहण किया है। अब मैं भी, ससार के झझटो से अपने को अलग करके सयम लूगी और फिर उस स्थान पर पति से भेट करूगी जहा वियोग का दु ख हो ही नही सकता।

इस प्रकार विचार कर राजमती सयम लेने के लिए तैयार हुई। उसके मुख पर प्रसन्नता दिखाई देने लगी। उसकी आखो की सजलता भी अपूर्व तेज मे परिणत हो गई और उसके हृदय का सब खेद मिट गया।

राजमती की माता ने जब भगवान् की दीक्षा का समाचार सुना तब वह राजमती को फिर समझाने आई, लेकिन उसने देखा कि राजमती प्रसन्न है। उसे किचित् भी खेद नही है और वह स्वय भी दीक्षा लेने की तैयारी मे लगी हुई है। राजमती को सयम देने के लिए तत्पर देख राजमती की माता उसे कहने लगी– प्यारी पुत्री क्या तू सयम लेने की तैयारी कर रही है? क्या सयम कोई खिलौना है जिसे सब ले? सयम का पालन करना कोई सहज काम है? सयम का पालन करना लोहे के चने चबाने के समान बहुत कठिन कार्य है। बडे–बडे योद्धा भी सयम का पालन करने मे समर्थ नही होते तो तुझ–सी सुकुमारी सयम का पालन किस प्रकार कर सकती है? तू महलो मे पली है कोमल शैया पर सोई है अच्छे–अच्छे पदार्थों का भोजन करती रही हे और

अनेक दासियो द्वारा सेवित रही है। ऐसी दशा मे सयम लेकर नगे पाव चलने कठोर शैया पर सोने और भिक्षा माग कर रूखा–सूखा भोजन करने के कष्ट कैसे सह सकती है? क्या तू भिक्षा माग सकेगी? उस समय मान–अपमान का विचार तुझे न होगा? भिक्षा मागने पर न मिलने पर तुझे खेद न होगा? इन सब बातो पर विचार कर और सयम को सरल मत समझ। सयम मे बडे–बडे कष्ट सहने पडते हैं, जिनको सहन करने योग्य तेरा यह सुकुमार शरीर नही है। और कष्ट तो दूर रहे, तू अपने मस्तक का एक केश तो उखाड कर देख कि कैसा कष्ट होता है। एक केश उखाडने मे जब इतनी वेदना होती है, तब मस्तक के समस्त केश उखाडने मे कैसी वेदना होती होगी! इसके सिवा अभी कुछ देर पहले तो तुझे कुमार अरिष्टनेमि के साथ विवाह न होने का या वे बिना विवाह किये चले गये इसका दु ख था और अब क्षण–भर बाद तेरे मे ससार से विरक्ति कैसे हो गई? सयम लेने की धुन कैसे समाई? सासारिक भोग विलास भोगते हुए हम लोगो की इतनी आयु बीत गई, फिर भी हमे ससार से वैराग्य नहीं हुआ तो तुझे कैसे हो गया? इस प्रकार के क्षणिक आवेश मे कोई कार्य कर डालना अपने–आप के लिए आपत्ति मोल लेना है। इसलिए तू सयम लेने के विचार को तो बिल्कुल त्याग दे। हम तेरे हितैषी हैं शत्रु तो नही हैं। यदि तू हम पर विश्वास करती है तो हम कहे वैसा ही कर। हमारी इच्छा के विरुद्ध कार्य करने का विचार भी मत कर।

माता के कथन का उत्तर मे राजमती कहने लगी– माताजी मैं आपसे ही पूछती हू कि पत्नी के लिए पति की आज्ञा मानना आवश्यक है या मा–बाप की? इसके उत्तर मे आप यही कह सकती हैं कि पत्नी के लिए प्रधानत पति की आज्ञा ही मान्य है जब इस बात को भी मानती हैं तब आपकी आज्ञा न मानकर सयम लना अनुचित तो नही हो सकता। पहले तो उनकी आज्ञा ही ऐसी है और कदाचित् उनकी आज्ञा न भी हो तब भी किसी उचित कार्य म पति का अनुगमन करन के लिए पति की आज्ञा प्राप्त करना आवश्यक नही है।

माताजी भगवान् मुझे कुछ शिक्षा देने के लिए यहा तक आये थे। उन्होने मुझे दूर से ही दर्शन देकर यह शिक्षा दी कि तू मेरा अनुगमन करने के लिए ही मेरे साथ विवाह करना चाहती है तो मेरा अनुगमन कर और जिस तरह मैं ससार से अपना सम्बन्ध–विच्छेद करता हू, उसी तरह तू भी ससार सम्बन्ध से अलग हो जा! मैं ससार–सम्बन्ध से जकडे रहने मे आत्मा का कल्याण नही देखता अत तू भी ससार–सम्बन्ध से बाहर निकल।

माताजी, मुझे यह सीख देने के लिए ही भगवान् ने यहा पधारने का कष्ट किया था। भगवान् के पधारने का उद्देश्य मुझे सीख देने के साथ ही चाहे कुछ और भी रहा हो, परन्तु मैं तो यही मानूगी कि भगवान् मेरे पर कृपा करने के लिए ही पधारे थे। मैं इस बात को अब तक नही समझ सकी थी और इस कारण भगवान् से ससारिक प्रेम की ही आशा रखती थी, लेकिन भगवान् ने दीक्षा ले ली, समाचार सुनकर मैं विचारने लगी कि क्या भगवान् ने मेरे साथ अन्याय किया है? विचारने पर मुझे मालूम हुआ कि भगवान् ने मेरे साथ अन्याय नही किया है, अपितु मुझ पर दया की है। अज्ञानपूर्ण इच्छा की पूर्ति के लिए मेरे साथ अपवित्र प्रेम–सम्बन्ध न जोडकर भगवान् ने मुझे ससार मे पुन–पुन जन्म–मरण करने से बचा लिया है। वे मेरे पूर्व के कई भवो के नाथ हैं मैं यह नही जानती थी, परन्तु वे जन्म से तीन ज्ञान के धारण करने से हमारा पूर्वापूर्व सम्बन्ध जानते थे अत मुझे यह शिक्षा देने के लिए ही पधारे थे कि राजमती! क्या तू इस भव को भी अपवित्र प्रेम–सम्बन्ध मे ही बिताना चाहती है? आ अब वह पवित्र प्रेम–सम्बन्ध स्थापित कर जिसमे न तो वियोग का दु ख है और न जन्म जरा मृत्यु आदि का ही दु ख। यह शिक्षा देकर भगवान् वैसा ही प्रेम–सम्बन्ध स्थापित करने की तैयारी करने के लिए वापस पधार गये थे परन्तु मेरे अज्ञान ने अब तक भगवान् की इस मूक शिक्षा को मेरी समझ मे न आने दिया और इस कारण मैं इतने दिन सासारिक प्रेम–सम्बन्ध के लिए दु ख पाती रही। अब मेरे हृदय का अज्ञान दूर हुआ है, इससे मै भगवान् के यहा पधारने और फिर बिना विवाह किये ही लौट जाने का रहस्य समझ सकी हू। इसलिए अब मैं भी भगवान् की ही तरह सब जीवो से वह पवित्र प्रेम–सम्बन्ध जोडूगी, जिसमे सकुचितता को स्थान ही नही है।

माता सयम मे कष्ट होते हैं या नही, इस विवाद मे मैं नही पडना चाहती। मैं तो यह जानती हू कि भगवान् अरिष्टनेमि भी, जो मेरी ही तरह सुख मे पले हैं और वे भी तो राजकुमार हैं! जब वे सयम का पालन कर सकते है तब मुझे क्यो कठिनाई होगी? मैं भी सयम का पालन कर सकती हू। इसलिए मै सयम लेकर पति की अनुगामिनी बनूगी और जिस सुख को वे प्राप्त करना चाहते हैं, उसे मै भी प्राप्त करूगी। मै आपसे यही प्रार्थना करती हू कि आप मेरे इस विचार को प्रोत्साहन दे मेरे विचार के विरुद्ध कोई परिस्थिति खडी न करे। मै ससार–व्यवहार मे अब एक क्षण भी कठिनाई से बिता रही हू।

राजमती की माता ने समझ लिया कि पुत्री से अब अधिक–कुछ कहना इसके हृदय को दुखाना है। उन्होने उग्रसेन से सब वृत्तान्त कह सुनाया। अन्त मे दोनो इस निश्चय पर पहुचे कि जिस श्रेष्ठ मार्ग को राजमती अपना रही है उसमे बाधा न डालनी चाहिए और वह जिसमे सुख माने वैसा कार्य उसे करने देना चाहिए।

राजमती ने अपने उपदेश से अपनी सखी–सहेलियो आदि बहुत–सी स्त्रियो मे वैराग्य भावना भर दी। उसका साथ देने के लिए सातसो स्त्रिया तैयार हो गई। राजमती इन सबके साथ दीक्षा लेने की तैयारी करने लगी।

अपनी सातसौ सखियो सहित राजमती सयम लेने के लिए तैयार हुई। उग्रसेन ने राजमती का निष्क्रमण महोत्सव मनाया। श्रीकृष्ण बलराम आदि यादवा ने भी उसमे भाग लिया। राजमती ने अपने सुन्दर घुघराले और रेशम की तरह केशो का अपने हाथो से लुचन करके सयम स्वीकार किया। राजमती की सातसो सखिया राजमती की शिष्या बनी। श्रीकृष्ण उग्रसेन आदि राजमती के विषय मे शुभकामना करते हुए कहने लगे कि हे इन्द्रियो का दमन करने वाली सती! तू इस घोर ससार–सागर से शीघ्र पार होना। इस प्रकार राजमती रा कहकर ओर उसे वन्दना–नमस्कार करके उग्रसेन श्रीकृष्ण आदि सब लोग अपने–अपने घर गये। अपनी शिष्याओ सहित सती राजमती तप–सयम की आराधना एव जनकल्याण करती हुई विचरने लगी। थोडे ही समय म वह अनेक सूत्रो की जानकार बहुसूत्रा भी हो गई।

अध्याय बारह
फिर पतन की ओर

शास्त्र मे ब्रह्मचारी के लिए स्त्री–दर्शन यानी उसके अगोपाग देखने का निषेध है। इतना ही नही, किन्तु स्त्री से सभाषण करना, स्त्री का स्मरण, स्त्रियो की कथा करना तथा स्त्री का चित्र देखना भी मना है। यही बात ब्रह्मचारिणियो के लिए पुरुष के विषय मे भी समझनी चाहिए। शास्त्र का निषेध निष्कारण नही है किन्तु सकारण है। ससार मे ऐसे बहुत कम स्त्री–पुरुष निकलेगे जो उक्त कारणो के विद्यमान रहते हुए भी ब्रह्मचर्य को सुरक्षित रख सके। शास्त्रकारो ने ब्रह्मचर्य की रक्षा की दृष्टि से ही इन बातो का निषेध किया है।

ब्रह्मचारी को एकान्त मे स्त्री के मिल जाने (इसी तरह ब्रह्मचारिणी के लिए एकान्त मे पुरुष के मिल जाने) से मन का विकृत होना सम्भव है। ब्रह्मचारी तो दूर की बात है किसी भी पुरुष या स्त्री को एकान्त मे या स्त्री पुरुष का मिलना बुरा है। एकान्त मे स्त्री या पुरुष के मिलने से जिस पुरुष या स्त्री का मन स्थिर रह सके वह धन्यवाद का पात्र है। क्योकि ऐसे समय मे मन का स्थिर रहा बहुत ही कठिन है और मन के अस्थिर होते ही मन की चचलता के कारण पतन अवश्यभावी है। यह बात दूसरी है कि कोई शरीर से पतित होने से बच जावे लेकिन उस समय मानसिक पतन तो हो ही जाता है। ससार–व्यवहार को घृणापूर्वक त्यागने वाले बडे–बडे त्यागी ऐसे समय मे विचलित हो उठते हैं तो दूसरे की बात ही क्या है। राजमती के उपदेश से रथनेमि ने ससार को बहुत ही घृणा की दृष्टि से त्यागा था परन्तु वही राजमती उन्हे एकान्त मे मिल गई तब रथनेमि का मन विचलित हो ही उठा। यदि उस समय राजमती का मर्मभेदी उपदेश उन्हे न मिलता, रथनेमि की तरह

राजमती भी विचलित हो गई होती तो पतन तो हो ही चुका था। लेकिन राजमती पूर्ण तथा दृढ ब्रह्मचारिणी थी इस कारण ऐसा विकट अवसर होने पर भी वह स्वय भी बच गई तथा रथनेमि को भी अधिक पतित न होने देकर सदा के लिए दृढ बना दिया। इस प्रकार की घटनाओ को दृष्टि मे रखकर ही यह उपदेश दिया गया है कि चाहे कोई कैसा भी त्यागी पुरुष हो उसे यह सोचकर कि मैं इन्द्रिय दमन करने वाला हू, किसी स्त्री से– फिर चाहे वह वृद्धा कुरूपा या माता ही क्यो न हो– एकान्त मे बातचीत नही करनी चाहिए न मिलना ही चाहिए। क्योकि मन और इन्द्रियो का समूह किस भी समय बिगड खडा होगा यह नही कहा जा सकता।

राजमती के हृदय मे भगवान् अरिष्टनेमि का दर्शन करने की पहले से ही प्रबल उत्कण्ठा थी। दीक्षा लेने के पश्चात उसके हृदय मे भगवान् का दर्शन करने की भावना उग्ररूप से बढ गई। इस उच्च भावना को पूरा करना श्रेयस्कर समझकर अपनी शिष्याओ सहित सती राजमती भगवान् का दर्शन करने के लिए चली। उस समय भगवान् अरिष्टनेमि गिरनार पर्वत पर विराजते थे। सती राजमती भी भ्रमण करती हुई और जनसमूह का कल्याण करती हुई गिरनार पर्वत के समीप आ पहुची। अब मुझे अपने चिरप्रेमी उस भगवान अरिष्टनेमि का दर्शन होगा जो मुझे दूर से ही दर्शन देकर लौट आये थे जिनका दर्शन करने की मेरे हृदय मे बहुत दिनो से उत्कण्ठा है और जो जन्म–मरण का चक्कर काटने के लिए सासारिक सुखो को त्याग कर इस पर्वत पर विराजते हैं। इस प्रकार के विचार करती हुई सती राजमती अपनी शिष्याओ सहित गिरनार पर्वत पर चढने लगी। राजमती और उसकी शिष्याए पर्वत पर चढ रही थी इतने ही मे आधी–पानी का भयकर तूफान आ गया। उस समय ऐसी प्रचण्ड आधी चली कि एकदम से अधेरा–सा हो गया। अधेरा और धूलि के कारण अपना हाथ दिखना भी कठिन था। शिष्याओ सहित राजमती उस प्रचण्ड आधी के वेग मे घिर गई। परिणामत सबका साथ छूट गया। कोई कही रह गई और कोई कही निकल गई।

वस्त्र सुखा लेना अच्छा है। इस प्रकार विचार कर राजमती उस गुफा मे गई। उसने देखा कि गुफा मे कोई आदमी नही है। गुफा को निर्जन समझ कर राजमती ने अपने शरीर के वस्त्र उतार कर उन्हे यत्र–तत्र फैला दिया।

जिस गुफा मे राजमती ने नग्न होकर अपने वस्त्र सूखने के लिए फैलाये थे उसी गुफा मे रथनेमि धर्म–चिन्तन रहे थे। रथनेमि गुफा मे भीतर की ओर अधेरे मे थे, इस कारण वे राजमती को नहीं दिखे। राजमती गुफा के उस भाग मे थी, जहा अधेरा था। इस कारण राजमती तो रथनेमि को न देख सकी, लेकिन रथनेमि ने राजमती को देख लिया। रथनेमि बैठे तो थे धर्म–चिन्तन करने के लिए परन्तु राजमती का नग्न शरीर देखकर उनका धैर्य टूट गया। उनमे काम–वासना जाग्रत हो उठी। उन्होने राजमती को पहचान लिया। उनके सामने पूर्व की समस्त घटनाए, चित्र की तरह आ खडी हुई। एकान्त मे राजमती जैसी सुन्दरी और वह भी नग्न शरीर को देखकर जो धैर्य रख सके जिसमे काम–विकार जाग्रत न हो ऐसे महापुरुष बहुत कम निकलेगे। रथनेमि जैसे व्यक्ति का अधीर हो उठना तो स्वाभाविक ही था। रथनेमि स्त्री–भोग की इच्छा से पराजित हो गये। इस इच्छा से पराजित होने के कारण वे ज्ञान–ध्यान सब भूल गये। उनमे राजमती के साथ भोग भोगने की भावना प्रबल हो गई सयम की अपेक्षा न रही। वे सोचने लगे कि इस तरह की सुन्दरी राजमती के साथ भोग भोगने से ही जीवन सार्थक हो सकता है। यद्यपि मै इस पर पहले से ही मुग्ध था, परन्तु उस समय इसने मेरे को स्वीकार नही किया था किन्तु मुझे ऐसा उपदेश दिया था कि जिससे मैंने ससार–व्यवहार से विरक्त हो, भ्राता के साथ सयम ले लिया। लेकिन आज मे इस अनुपम सुन्दरी को देखकर यह समझता हू कि ऐसी सुन्दरी के साथ भोग भोगने मे ही आनन्द है, सयम मे आनन्द नही है। यह स्थान एकान्त है। यहा इसके और मेरे सिवा तीसरा कोई नही है तथा यह नग्न भी है। इसके सिवा, जब इसने मेरे साथ विवाह करना अस्वीकार किया था तब इसमे भ्राता का तीव्र प्रेम था जा समय के साथ ही साथ कम हो गया होगा। इसलिए अब यह मुझे अवश्य स्वीकार कर लेगी। विशेषत आज वर्षा हुई है। यह वर्षा से भीग गई है। वर्षा के समय स्त्रियो मे पुरुष की चाह अधिक रहती है इसलिए भी आज मेरा मेनोरथ अवश्य ही पूर्ण होगा।

इस प्रकार का विचार कर रथनेमि विकार–पूर्ण चेष्टा करने लगे। रथनेमि की चेष्टाओ से राजमती का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हुआ। पहले तो उसने सोचा कि भीतर की ओर कोई पशु–पक्षी होगा लेकिन जब उसने

दृष्टि गडाकर देखा तब उसे मालूम हुआ कि गुफा मे कोई पुरुष है यह जानकर राजमती लज्जा व भय से काप उठी। वह सोचने लगी कि मैंने कैसा अनर्थ किया जो इस गुफा को निर्जन समझकर नग्न हो गई। मुझे अकेली और नग्न देखकर कहीं यह पुरुष मेरा शील भग करने के लिए बलात्कार न करे। यदि इसने ऐसा किया तो मैं क्या करूगी? मैं अकेली तो हू ही साथ ही नग्न हू। अब वस्त्र पहनने मे भी विलम्ब होगा। इस समय मुझे क्या करना चाहिए?

इस प्रकार राजमती को क्षण–भर के लिए बडा असमजस रहा परन्तु वह असमजस अधिक देर तक न ठहर पाया। उसने उसी क्षण साहस धारण करके सोचा कि मैं वीर–बाला हू। मुझे इस प्रकार भयभीत होना ठीक नही। भयभीत होने पर तो मैं कुछ भी न कर सकूगी। इस समय मुझे धैर्य तथा साहस से काम लेना चाहिए। ससार मे किसी भी पुरुष की यह शक्ति नही हो सकती कि वह बलात् किसी का शील छीने। फिर मुझ वीरबाला का शील भग तो कोई कर ही कैसे सकता है! मैं जब तक हो सकेगा शरीर मे रहती हुई शील की रक्षा करूगी और जब देखूगी कि शरीर मे रहती हुई शील–रक्षा नहीं कर सकती तब इस शरीर को भी त्याग दूगी परन्तु शरीर रहते शील को नष्ट नहीं होने दूगी। इस समय विलम्ब होगा इसलिए अभी वस्त्र पहनना ठीक नहीं। सभव है कि वह पुरुष मुझ पर शीघ्र ही आक्रमण कर दे। इसलिए पहले मुझे शील नष्ट न हो ऐसा प्रबन्ध कर लेना चाहिये।

इस प्रकार विचार कर राजमती मर्कटासन लगाकर बैठ गई। उसने अपने दोनो पावो से अपना गुप्ताग ढाक लिया और पावो को हाथो से जकड लिया। इस प्रकार वह शील–रक्षा की चिन्ता से बहुत–कुछ मुक्त हो गई।

राजमती रथनेमि को न तो पूरी तरह देख ही सकी थी न पहचान ही सकी थी लेकिन राजमती को रथनेमि ने पहचान लिया था। राजमती के चेहरे का उतार–चढाव और उसे मर्कटासन लगाकर बैठते देख रथनेमि ने समझ लिया कि राजमती भयभीत हो गई है। वे अपने स्थान से उठकर राजमती के पास आये और राजमती से कहने लगे हे राजमती! तुम भय मत करो। मैं और कोई नहीं हू, तुम्हारा पूर्व–प्रेमी रथनेमि ही हू। मेरे द्वारा तुम्हे किसी प्रकार का कष्ट न होगा अपितु सुख ही प्राप्त होगा। हे सुन्दरी! हे मधुर भाषिणी! तुम [illegible] त्याग दो और आओ हम–तुम मनुष्योचित भोग भोगें। यह स्थान एकान्त है यहा कोई देखने वाला नहीं है। यह मनुष्य–भव बहुत दुर्लभ है। इस भव को पाकर भी मनुष्य–जन्म सम्बन्धी सुखों से वंचित रहना ठीक नहीं

रथनेमि की बात सुनकर तथा उसे पहचान कर राजमती को इस विचार से कुछ धैर्य हुआ कि कुछ भी हो रथनेमि है कुलीन। वह बलात् मेरा शील नष्ट करने का दु साहस तो नही करेगा। यद्यपि इस समय यह कामविकार से अस्थिर चित्त हो रहा है, फिर भी इसे सुमार्ग पर लाना कठिन नही है। पहले भी जब इसने मेरे साथ विवाह करना चाहा था, इसे समझाने मे विलम्ब न लगा था और उस समय मेरे उपदेश का इस पर ऐसा प्रभाव पडा था कि यह ससार-सम्बन्ध त्याग कर मुनि हो गया। अब भी इसे समझाने पर यह अपने कर्तव्य पर स्थिर हो सकेगा।

राजमती का भय कुछ कम हुआ। वह मर्कटासन त्याग कर अपने वस्त्र पहनने लगी। राजमती अपने वस्त्र पहन रही थी और रथनेमि वही खडा-खडा कह रहा था- हे सुआननी मेरे हृदय मे पहले तुम्हे पत्नी बनाने की जो इच्छा हुई थी वह तुम्हारे उपदेश से उपशान्त तो अवश्य हो गई थी और उस तुम्हारे उपदेश से प्रभावित होकर ही मैंने सयम भी स्वीकार किया परन्तु उस इच्छा का विनाश नही हुआ था। आज तुम्हे देखकर मेरी वह उपशान्त इच्छा फिर जाग उठी। मेरे हृदय मे तुम्हारे प्रेम का जो अकुर उत्पन्न हुआ था और तुम्हारे उपदेश के कारण जो मरझा गया था, वह आज फिर लहलहा उठा। वास्तव मे तुम हो ही ऐसी सुन्दरी। तुम जैसी सुन्दरी के प्रति हृदय मे एक बार जो प्रेम उत्पन्न हो जाता है, उसका नाश न होना स्वाभाविक है। इसलिए तुम मेरी प्रेम-याचना पूरी करो मुझे अपने शरीर के स्पर्श से सुखी बनाओ और स्वय भी आनन्द अनुभव करो।

रथनेमि इसी प्रकार की बाते करता रहा, परन्तु राजमती ने उस समय तक उसकी बात का कुछ भी उत्तर न दिया, जब तक कि वह कपडे न पहन चुकी। कपडे पहन चुकने पर राजमती रथनेमि से कहने लगी- अरे रथनेमि! तुम तो साधु हुए हो न? साधु होकर भी ज्ञान-ध्यान की बाते छोड ऐसी बाते करते हो?

रथनेमि- हा, मैं साधु अवश्य हू, परन्तु इस समय तुम्हारे सिवा मुझे कुछ नही सुहाता। इस समय मैं ज्ञान-ध्यान विस्मृत हो चुका हू।

राजमती- तुमने सयम स्वीकार करने के समय क्या प्रतिज्ञा की थी वह कुछ याद है?

रथनेमि- सब याद है।

राजमती- क्या इन बातो से तुम्हारी प्रेम-प्रतिज्ञा को दूषण नही लगता?

रथनेमि– दूषण लगे तो लगे मैं उसका प्रायश्चित्त कर डालूगा और अभी मैं जो कुछ भी करूगा उसका तो प्रायश्चित्त भी करना होगा।

राजमती– क्यो?

रथनेमि– इसलिए कि यह स्थान एकान्त है हम तुम जो–कुछ करेगे उसे तीसरा कोई न जान सकेगा।

राजमती– तो जिस पाप को कोई और न जाने उसका प्रतिफल नही भोगना पडता! क्यो? क्या तुम्हारे कृत्यो के लिए तुम्हारी आत्मा साक्षी नही है? क्या इस प्रकार छिपकर पाप करने की इच्छा रखने वाला साधुपने मे दीक्षित होकर साधुपने को दूषित नही करता? इस प्रकार छिपकर पाप करने की भावना रखना तो महान् अपराध है! इसके सिवा, कदाचित् तुम तो इस प्रकार छिपकर पाप करने को तैयार भी हो जाओ लेकिन मैं ऐसा करके अपनी साधुता को कलकित क्यो करू?

रथनेमि– अच्छा तो आओ अपन दोनो सयम त्याग कर ससार के भोग भोग और फिर जब भुक्तभोगी हो जावेगे तब सयम का आचरण करेगे।

राजमती– ठीक है परन्तु फिर उस समय मैंने तुम्हारा लाया हुआ जो पेय पदार्थ तुम्हे दिया था वह तुमने क्यो नही पीया था।

रथनेमि– इसलिए कि वह तुम्हारे ही द्वारा उगला हुआ था।

राजमती– लेकिन यदि वह तुम्हारे ही द्वारा उगला हुआ होता तब तो तुम उसे पी जाते न?

रथनेमि– उगले हुए को मैं फिर कैसे पी सकता था?

राजमती– उसी तरह जिस तरह कि इस समय अपने त्यागे हुए कार्य का आचरण करने को तैयार हुए! तुम अपने द्वारा त्यागे हुए काम–भोग तो भोगना चाहते हो तो फिर अपने द्वारा त्यागे हुए पेय पदार्थ को पीने मे कौनसी बुराई थी? अरे रथनेमि सयम लेकर और सासारिक भोगो को त्याग कर फिर इस समय उन्हे भोगने के लिए तैयार हुए हो? तुम्हे लज्जा भी नही आती? तुम यशस्वी महाराज अन्धकवृष्णि के पौत्र महाराजा समुद्रविजय के पुत्र और यदुकुल–कमल–दिवाकर भगवान अरिष्टनेमि के छोटे भाई होकर कुत्ते की तरह अपने द्वारा त्यागे गये को अपनाना चाहते हो? तो तुम अपने कुल को [illegible] दूषित बना रहे हो? तुम कुलवान मनुष्य होकर भी उस मर्यादा का उल्लघन करना चाहते हो जिस मर्यादा के वश मे होकर साप भी अप[illegible]।

का साप अपने उगले हुए विष को कदापि नही चूसता। हा, अग्नि मे गिरकर अपने प्राण अवश्य दे देता है। जब एक साप भी अपने उगले हुए को चूसने की अपेक्षा प्राण त्यागने को अच्छा समझता है तो तुम तो मनुष्य हो। तुम्हे अपनी पतिज्ञा की रक्षा करने के लिए क्या करना चाहिए, इसे सोचो! कदाचित् तुम अपने उगले हुए को चूसने के लिए तैयार भी हो जाओ, त्यागे हुए विषय–भोग फिर भोगने भी लगो, लेकिन मैं तो प्राण रहते ऐसा कदापि नही कर सकती। मैं महाराज भोजवृष्णि की पौत्री हू। मैं अपनी प्रतिज्ञा पर अन्त तक दृढ रहूगी और अगधन जाति के साप की भाति पाणो का ममत्व अवश्य छोड दूगी लेकिन जिन भोगो को त्याग चुकी हू, उनमे कदापित प्रवृत्त न होऊगी। यदि तुम साक्षात् इन्द्र के समान ही वैभव एव प्रभावशाली हो जाओ, तुम्हारा रूप वैश्रमण धनपति के समान भी हो, और भोग–विलास मे तुम नलकुबर के समान भी होओ तब भी मैं अपनी प्रतिज्ञा का उल्लघन नही कर सकती। हे अपयशकामी रथनेमि! मैं तुमसे भी यही कहती हू कि तुम अपने कुल को कलकित मत करो विषय–भोग की इच्छा के आगे नतमस्तक होकर गधन जाति के साप की तरह उगले हुए को मत चूसो किन्तु अगधन जाति के साप की तरह यश की रक्षा करो। तुम कहते हो कि भुक्तभोगी होकर फिर जिन–मार्ग का आचरण करेगे परन्तु यह तुम्हारा भ्रम है। जो एक बार जान–बूझकर पतन की ओर अग्रसर होता है, वह फिर पतित ही होता जाता है। इसलिए काम–क्रोध और राग–द्वेष त्याग कर जो प्रतिज्ञा की है उसका पालन करो। यदि तुम ग्राम–नगर मे विचरते हुए स्त्रियों को देखकर इसी प्रकार के बुरे भाव लाते रहोगे तो तुम्हारा पतन किसी दिन उसी प्रकार अवश्यभावी है जिस प्रकार प्रबल पवन के लगने से हरड का वृक्ष उखड कर गिर पडता है। तुम अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करो और छिपकर या प्रकट मे प्रतिज्ञा के विरुद्ध कार्य करने की भावना भी न लाओ। ऐसा करने पर ही अपना कल्याण कर सकोगे, अन्यथा सयम लेकर भी ससार मे बार–बार जन्म–मरण करना पडेगा।

राजमती के इन उपदेशपूर्ण वचनो को सुनते–सुनते रथनेमि के हृदय का काम–विकार नष्ट हो गया। वे राजमती के समस्त उपदेश को ध्यानपूर्वक आद्योपान्त सुनते रहे। इस उपदेश से वे उसी प्रकार सयम मे दृढ हो गये जिस पकार अकुश लगने से हाथी अपने स्थान पर आ जाता है।

रथनेमि का मस्तक राजमती के आगे लज्जा के मारे झुक गया। उनकी कामवासना शान्त हो गई। वे राजमती से अपने व्यवहार के विषय मे

क्षमा मागने लगे और कहने लगे– हे सती! आपने मुझ पर बहुत उपकार किया। मैं आपके इस उपकार को कदापि विस्मृत नही कर सकता। अपनी ओर से तो मैं पतित हो ही चुका था परन्तु आपने मुझ पतित को भी पावन बना लिया और यद्यपि मैं अपनी पूर्व की प्रतिज्ञाओ मे दूषण लगा चुका हू, तथापि आज फिर प्रतिज्ञा करता हू कि अब से मैं कदापि किसी स्त्री पर मन न चलाऊगा किन्तु सयम मे दृढ रहुगा।

रथनेमि की प्रतिज्ञा सुनकर राजमती ने उन्हे धन्यवाद दिया और कहा– रथनेमि घबराओ मत। घबराने से कुछ न होगा। जो हुआ सो हुआ अब भी तुम यदि स्वय के द्वारा की गई प्रतिज्ञा पर दृढ रहे, तो समस्त पूर्व–पाप से भी मुक्त हो सकोगे तथा आत्म–कल्याण भी कर सकोगे। अब मैं तुम से यही कहती हू कि आज की इस प्रतिज्ञा से कभी विस्मृत मत होना। सदा याद रखना। और यदि प्रतिज्ञा मे कभी कोई दूषण लग भी जावे तो उसे दबाना मत किन्तु निन्दा–गर्हा द्वारा प्रकट करके शुद्ध हो जाना।

रथनेमि ने राजमती की यह बात स्वीकार कर ली। राजमती गुफा से निकल कर पर्वत के शिखर पर जाने वाले मार्ग पर आई। वहा उसकी शिष्याए बैठी हुई उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। शिष्याओ से मिलकर राजमती ने उनसे कुशल–प्रश्न किया और फिर उनके साथ शिखर पर चढने लगी।

अध्याय तेरह
वियोगान्त

अनन्य प्रेम की महिमा विचित्र है। इस प्रकार के प्रेम मे महान् शक्ति होती है। ऐसा प्रेमी, अपने प्रेमास्पद को प्राप्त करके ही रहता है। किसी को चाहे कठोर बन्धन मे डाल दिया जावे, त्रिलोक के राज्य का प्रलोभन दिया जावे या मृत्यु–दण्ड दिया जावे, फिर भी यदि वह अनन्य प्रेमी है तो अपने प्रेमास्पद को विस्मृत नही कर सकता, उससे प्रेम नहीं त्याग सकता और उसके बदले किसी दूसरे को प्रेमास्पद नहीं बना सकता। अनन्य प्रेमी अपने प्रेमास्पद के लिए ससार की कठिन से कठिन यातनाओ को भी हर्षपूर्वक सहता रहता है और महान् से महान् प्रलोभन को भी घृणापूर्वक ठुकरा देता है। चाहे जैसा और चाहे जितना प्रयत्न किया जावे वह अपने प्रेमास्पद की तुलना मे ससार के किसी भी पदार्थ या व्यक्ति को तुच्छ समझता है। भ्रमर को पुष्प से अत्यन्त प्रेम होता है। भ्रमर का पुष्प के प्रति जो अनन्य प्रेम है, उसे मिटाने के लिए चाहे कोई उसे पुष्प से भी अधिक सुगन्धित तथा कोमल पदार्थ दे लेकिन वह उस पदार्थ को तुच्छ समझकर उसकी अवहेलना ही करेगा उस पर मुग्ध होकर पुष्प के प्रति जो अनन्य प्रेम है उसे कदापि न त्यागेगा। इसी प्रकार चाहे कोई उसे कठोर बन्धन मे डाल दे या मार भी डाले तब भी उसके पुष्प–प्रेम मे किचित् भी न्यूनता न होगी। अनन्य–प्रेमी अपने प्रेमास्पद के दोष भी नही देखता। प्रेमास्पद चाहे उसे ठुकराता भी रहे उसकी उपेक्षा भी करे उससे प्रेम न भी करे तब भी अनन्य प्रेमी के हृदय मे उसके प्रति वैसा ही प्रेम रहता है।

अनन्य प्रेम के विषय मे अनेक कथाए प्रसिद्ध हैं। रावण ने सीता को खूब प्रलोभन भी दिया लेकिन सीता के हृदय से राम का प्रेम कम न हुआ।

रुक्मिणी को अनेक प्रकार के कष्ट दिये गये और अत्यधिक प्रलोभन भी दिये गये लेकिन रुक्मिणी का कृष्ण–प्रेम अडिग ही रहा। यह अनन्य प्रेम की ही महिमा थी। अनन्य प्रेम न होने पर थोडा–सा भय या प्रलोभन प्रेमी को प्रेमास्पद की ओर से विमुख कर सकता है लेकिन अनन्य प्रेम को कोई कभी नही मिटा सकता।

वह प्रेम जिसमे केवल विषय–भोग की ही लालसा है अनन्य प्रेम नही हो सकता। विषयजन्य प्रेम विषय–सुख के अभाव मे नष्ट हो जाता है या दूसरी ओर पलट जाता है अनन्य प्रेम नही रहता। अनन्य प्रेम तो चाहे प्रेमास्पद की ओर से सुख मिले या दु ख, किसी दूसरे की ओर से प्रेमास्पद द्वारा होने वाले सुख की अपेक्षा सहस्र लक्ष गुणा सुख भी मिलता हो या घोर आपत्ति मे भी डाला जा रहा हो किसी भी दशा मे नष्ट या न्यून नही होता। विषय–सुख के लिए किये गये प्रेम मे यह बात नही हो सकती। वह प्रेम तो घटता भी है और नष्ट भी हो जाता है। ऐसा प्रेम वेश्या के प्रेम–सा होता है जिसका होना भी न होना ही है।

राजमती के हृदय मे भगवान् अरिष्टनेमि का अनन्य प्रेम था। उसका यह अनन्य प्रेम केवल इसी भव से नही था, किन्तु आठ भव–पूर्व से था। यदि राजमती विषय–सुख की लालसा से ही भगवान् से प्रेम करती तव तो भगवान् क लाट जान पर उसका प्रेम भी टूट जाता और वह किसी दूसरे को अपना प्रेमास्पद वना लती । लेकिन उसने माता–पिता और रथनेमि द्वारा किये गये विवाह क प्रस्ताव का घृणा की ही दृष्टि से देखा। इससे स्पष्ट है कि राजमती भगवान अरिष्टनमि से कवल विषय–सुख की लालसा से ही प्रेम नही करती थी किन्तु उसका स्वाभाविक अनन्य प्रेम था। पति से अनन्य प्रेम करने वाली कुलागनाए विषय–सुख क लिए ही पति से प्रेम नही करती हैं किन्तु उनम पति क प्रति सहज प्रम हाता ह और इसी कारण वह प्रेम अनन्य प्रेम की सीमा तक पहुचता ह।

मोक्ष–पद को पाप्त करने के लिए भगवान् पयत्नशील थे, उसी के लिए राजमती भी पयत्नशील थी। इस पकार भगवान् का पदानुगमन करती हुई राजमती भगवान् का दर्शन करने के लिए भगवान् की सेवा मे उपस्थित हुई। उसको यह विचार कर पसन्नता थी कि आज मुझे भगवान् का दर्शन करने के लिए भगवान् की सेवा मे उपस्थित हुई। उसको यह विचार कर प्रसन्नता थी कि आज मुझे भगवान् मेरे प्रेम के विषय मे किसी पकार का उपालम्भ नहीं दे सकते। यदि मैंने इनका पदानुसरण न किया होता तो मुझे आज भगवान् को मुह दिखाने मे भी सकोच होता तथा भगवान् भी मुझसे यह कह सकते थे कि यदि तेरे मे मेरे प्रति प्रेम होता तो तू मेरा अनुगमन करती। लेकिन मैंने अपने कर्तव्य का पालन किया है, इसलिए मुझे किसी प्रकार का भय या सकोच नही हो सकता।

इस पकार के विचारो से प्रसन्न राजमती चिरअभिलषित भगवान् अरिष्टनेमि का दर्शन करके बहुत हर्षित हुई। उसका रोम–रोम विकसित हो उठा। उसने अपनी शिष्याओ सहित भगवान् को विधिपूर्वक वन्दन–नमस्कार किया और फिर प्रार्थना करने लगी कि हे प्रभो, मुझ पर पूर्व के आठ भव मे आपकी जो कृपा रही है आपने इस भव मे मुझ पर उससे भी अधिक कृपा की है। उन आठ भव के प्रेम के मध्य तो वियोगादि के अनेक कष्ट सहने न पडे वैसे प्रेम के रहने पर तो जन्म–मरण का कष्ट भोगना ही पडता है इसलिए आपने इस भव को अपना पूर्व–प्रेम सुदृढ और ध्रुव बनाने मे लगा दिया है। आपका यह कार्य जब तक मेरी समझ मे नहीं आया था तब तक तो मैं। दु खित रही परन्तु जब मुझे आपके कार्य का महत्त्व मालूम हो गया तब मेरे को अत्यधिक प्रसन्नता हुई ओर मैंने भी अपने प्रेम को अविचल बनाने के लिए वही मार्ग अपनाया जिसे आपने अपनाया है तथा जिसको अपनाने के लिए आपने मुझे द्वार तक पधार कर सूचना दी थी। प्रभो! अब आप कृपा करके मुझे ऐसा उपदेश दीजिए जिससे मेरा मार्ग सुगम बने और मैं उस स्थान को शीघ्रातिशीघ्र पाप्त कर सकू, जहा पहुचने पर अपना प्रेम सदा के लिए स्थाई बन जावेगा।

राजमती की प्रार्थना सुनकर भगवान् ने कहा– सती राजमती! तुम ने जिस सयम मार्ग को अपनाया है उस पर दृढ रहना उसमे प्रमाद न करना यही उस स्थान– मोक्ष–को प्राप्त करने का उपाय है। मै जानता हू कि तुम सयम की आराधना भली प्रकार कर रही हो तथा आगे भी करोगी और तुम

कब मोक्ष प्राप्त करोगी यह भी जानता हू, फिर भी तुम्हारे पूछने पर, मैंने तुम्हे सयम मार्ग पर दृढ रहने की जो सावधानी दी है, वह दूसरे लोगो के लिए हितकर होगी इस दृष्टि से दी है।

भगवान् की वाणी सुनकर राजमती गद्गद हो गई। उसके नेत्र भगवान् के दर्शन की ओर से अतृप्त ही बने रहे। राजमती केवल भगवान् की वाणी सुनकर या उनका दर्शन करके ही नहीं रही, किन्तु उसने सयम तथा तप की अच्छी तरह आराधना की। तप सयम की आराधना से राजमती को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। अन्त मे राजमती भगवान् श्री अरिष्टनेमि से 15 दिन पहले मोक्ष प्राप्त करके सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो गई।

उपसंहार

यह कथा हिसा और विषय–भोग के त्याग का आदर्श सामने रखती है। इसमे बताया गया है कि भगवान् अरिष्टनेमि ने हिसा और विषय–भोग के त्याग की कैसी उत्तम शिक्षा दी है, और ऐसा करने के लिए उन्होने क्या–क्या किया था। यदि उन्हे स्वय का ही कल्याण अभीष्ट होता, तो वे प्रत्यक्षज्ञान के स्वामी थे अत ध्यान, मौन और तपादि द्वारा सहज रीति से ही आत्मकल्याण कर सकते थे। लेकिन तीर्थंकर के जन्म लेने का उद्देश्य ससार के सामने कोई विशेष आदर्श रखना होता है। भगवान् अरिष्टनेमि ने ससार के सन्मुख अहिसा, दया का उत्कृष्ट आदर्श रखा और यह आदर्श रखने के लिए उन्होने अनुपम त्याग भी किया। भगवान् अरिष्टनेमि ने ससार के सामने जो आदर्श रखा उस आदर्श के रखने मे उन्होने ज्ञानादि विशेषता की सहायता नही ली। यदि वे अपनी विशेष शक्ति का उपयोग करते तो अहिसा और विषय–सुख के त्याग का महत्त्व कम हो जाता। लोग कहते कि भगवान् अरिष्टनेमि असाधारण पुरुष हैं हम साधारण लोग उनका अनुसरण नही कर सकते इसलिए अहिसा और ससार से वैराग्य होना असाधारण पुरुष के लिए ही सभव है। जनता मे इस तरह का विचार फैलने पर भगवान् द्वारा रखे गये अहिसा और वैराग्य के आदर्श से जनता पूर्णतया लाभ न ले सकती। इसलिए भगवान् ने वही मार्ग ग्रहण किया जो साधारण पुरुष के लिए भी असाध्य नही है और जिसके द्वारा एक कुशल उपदेशक लोगो पर अपने उपदेश का प्रभाव भी डाल सकता है।

यह कथा सती राजमती की तो है ही इसलिए उसके चरित्र मे विशेषता होना स्वाभाविक ही है। राजमती ने अपने चरित्र द्वारा ससार की

स्त्रियो को यह शिक्षा दी है कि तुम जिससे प्रेम करो, उससे अनन्य प्रेम करो, केवल दिखावटी प्रेम मत करो। अपने प्रेमास्पद के सामने ससार के अन्य पुरुषो को पुरुष ही मत समझो और अपने प्रेम के लिए सब–कुछ त्याग दो। साथ ही, यह भी शिक्षा दी है कि सकुचित और अपवित्र प्रेम की अपेक्षा विशाल और पवित्र प्रेम को विशेषता दो। पति से केवल सासारिक भोग भोगने के लिए ही प्रेम मत करो, किन्तु पति के उचित कार्य का अनुकरण करने के लिए प्रेम करो, फिर चाहे ऐसा करने मे तुम्हे सासारिक भोग–विलास को तिलाजलि ही क्यो न देनी पडे। कोई दूसरा पुरुष, किसी स्त्री का सतीत्व हरण करना चाहे तो उस समय उस स्त्री का क्या कर्तव्य है, इसके लिए भी राजमती का चरित्र मार्गदर्शक है। उसने रथनेमि को दो बार उपदेश देकर अपने शील की रक्षा की थी और अतिम बार तो एकान्त का ऐसा विशेष अवसर था कि जहा पुरुष से स्त्री के लिए अपने शील की रक्षा करना महान् कठिन था। लेकिन उस समय भी राजमती ने शील–रक्षा की ओर से अपना साहस नही त्यागा। पहले तो उसने उस आसन का उपयोग किया था जो पुरुष से रक्षा करने मे समर्थ था। लेकिन इसके आगे उसने अगधन साप का उदाहरण देकर यह भी स्पष्ट कर दिया था कि मैं अगधन साप की तरह मरना श्रेष्ठ समझूगी, परन्तु उगले हुए यानी त्यागे हुए विषय–भोग को फिर स्वीकार न करूगी।

राजमती का चरित्र पति–प्रेम धैर्य, दृढता त्याग, ब्रह्मचर्य और तप का अप्रतिम आदर्श है। भगवान् अरिष्टनेमि और सती राजमती के चरित्र जैसा आदर्श से भरा हुआ दूसरा चरित्र ससार मे मिलना बहुत कठिन है। इन दोनो का प्रत्येक कार्य आदर्श था। इनकी नव–भव की वह प्रीति जो आगे चलकर अक्षय बन गई, दूसरे किसी चरित्र मे नही मिल सकती।

भगवान् अरिष्टनेमि का चरित्र, उपदेश देने वाले लोगो के लिए भी बहुत शिक्षा देने वाला है। बहुत–से लोग थोथा उपदेश देने के लिए खडे हो जाते हैं, उस उपदेश के पीछे क्रियात्मक आदर्श नही रखते और उपदेश को केवल श्रोताओ के लिए ही आचरणीय मानते हैं स्वय के लिए नही। ऐसे लोगो को भगवान् अरिष्टनेमि ने अपने चरित्र से स्पष्ट बता दिया हे कि

उपदेश को सफल बनाने के लिए उपदेशक को जनता के सामने उपदेश से भी उच्च आदर्श रखना चाहिए और उपदेशक को तभी उपदेश देना चाहिए, जब वह उपदेश की या उससे ऊची बातो का आचरण स्वय भी करता हो। उपदेश के साथ जब तक त्याग का बल न होगा, तब तक उपदेश का प्रभाव नही पड सकता।

सती राजमती और भगवान् अरिष्टनेमि के चरित्र को अपने जीवन मे उतारने वाले स्त्री, पुरुष, सासारिक जीवन भी सुखपूर्वक व्यतीत करेगे और उन्हे परलोक मे भी सुख पाप्त होगा। बल्कि कभी–न–कभी जन्म–मरण के चक्कर से छूटकर सिद्ध बुद्ध और मुक्त बनकर अक्षय सुख प्राप्त करेगे।

सती मदनरेखा

कथारम्भ

भारतवर्ष मे सुदर्शनपुर नाम का एक नगर था। सुदर्शनपुर के राजा का नाम था मणिरथ। मणिरथ न्याय–नीति–कुशल और क्षत्रियोचित गुणसम्पन्न था। मणिरथ के छोटे भाई का नाम युगबाहु था। युगबाहु अपने भाई की तरह वीर और कलाकुशल होने के साथ ही विनम्र भी था। जिसकी यह कथा है, वह सती मयणरेहा या मदनरेखा युगबाहु की धर्मपत्नी थी।

मणिरथ और युगबाहु, दोनो भाइयो मे परस्पर पूर्ण स्नेहभाव था। मणिरथ अपने छोटे भाई युगबाहु को पुत्र की तरह मानता था, उस पर पूर्ण विश्वास रखता था और उसकी सुविधा का भी समुचितरूपेण पूर्वध्यान रखता था। इसी प्रकार युगबाहु अपने बडे भाई को अपने पिता के समान आदरणीय मानता उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य न करता, तन–मन से उसकी सेवा करता उसके प्रति विनम्र एव आज्ञाकारी रहता और स्वप्न मे भी अपने हृदय मे उसके प्रति दुर्भाव नही आने देता था। तात्पर्य यह कि दोनो भाइयो मे आदर्श स्नेह था। दोनो दो देह, एक आत्मा के समान रहते थे।

एक दिन मणिरथ ने विचार किया कि मेरा भाई युगबाहु वीर विनम्र न्याय–नीति–कुशल और मेरा पूर्ण भक्त है। वह मेरा उत्तराधिकारी होने के सर्वथा योग्य है। इसलिए यही अच्छा होगा कि मैं युगबाहु को युवराज पद देकर अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दे। अभी राज्य का कार्यभार मुझ अकेले पर ही है लेकिन जब मैं युगबाहु को युवराज बना दूगा, तब कुछ भार उस पर भी पड जायेगा जिससे मेरा भार हलका हो जावेगा। इस प्रकार विचार कर उसने युगबाहु को अपना युवराज बनाने का निश्चय किया।

दूसरे दिन प्रात काल मणिरथ अपने निश्चय पर प्रसन्न होता हुआ वैठा था। उसी समय युगबाहु आया। अन बडे भ्राता को प्रणाम करके उसकी कुशल जानने एव कोई सेवा–कार्य हो तो उसे सुनने के लिए युगबाहु नित्य

प्रात काल मणिरथ की सेवा मे उपस्थित हुआ करता था। उसने अपने लिए ऐसा नियम ही बना लिया था। इस नियम के अनुसार युगबाहु मणिरथ के सामने उपस्थित हुआ और उसने मणिरथ को प्रणाम किया। मणिरथ ने युगबाहु को नित्य से अधिक स्नेह एव आनदपूर्वक आशीर्वाद दिया। पारस्परिक कुशल–प्रश्न के पश्चात् युगबाहु ने मणिरथ से कहा– आज मैं आपको नित्य से बहुत आनदित देख रहा हू। क्या मैं यह जानने के योग्य हू कि आज ऐसा कौनसा हर्ष–समाचार है, जिसने आप जैसे गम्भीर पर भी अत्यधिक प्रभाव डाला है ?

युगबाहु का कथन सुनकर मणिरथ और भी अधिक प्रसन्न हुआ। उसने युगबाहु से कहा– क्या कोई ऐसी बात भी हो सकती है जो मैं तुम से गुप्त रखू ? मैंने आज तक तुम से न तो कोई बात गप्त रखी ही है, न भविष्य मे गुप्त रखने की इच्छा ही है, और जिस बात के लिये तुम पूछ रहे हो, वह बात तो विशेषत तुम्हीं से सबधित है, इसलिए उसे गुप्त रखने का कोई कारण ही नहीं है। प्रिय युगबाहु, मुझे आज अवश्य ही अत्यधिक प्रसन्नता है और प्रसन्नता का कारण है तुम्हे युवराज बनाने का मेरा निश्चय। मैंने तुम्हे अपना युवराज बनाने का निश्चय किया है। इस महान् शुभ निर्णय के कारण ही मुझे प्रसन्नता है। मैंने सोचा कि इस समय राज्य का कार्यभार मुझ अकेले पर ही है। जब मैं तुम्हे युवराज बना दूगा तब मेरे ऊपर जो भार है वह दो भागो मे बट जायेगा और अर्द्ध भाग तुम्हारे कन्धो पर आ पडेगा।

मणिरथ का कथन सुनकर युगबाहु सकुचाकर इस तरह नम्र हो गया जैसे उस पर कोई विशेष जिम्मेदारी आ पडी हो। उसकी आखे नीची हो गईं। उसने मणिरथ से कहा– पूज्य भ्राताजी, क्या बिना युवराज पद पाये मैं आपकी सेवा करने और आपका भार बटाने मे कुछ आनाकानी करता था, जो आपने मुझे युवराज पद देने का निश्चय किया ? युवराज पद लेकर उसके बदले मे सेवा करना मेरे लिए कलक जैसी बात होगी। यह तो मेरी तुच्छता होगी। आपने जो विचार किया, उससे तो यही स्पष्ट है कि मैं राज्य के लोभ के बिना आपकी सेवा न करता। समझ मे नही आता कि मेरे किस व्यवहार के कारण आपके हृदय मे मेरे प्रति यह विचार पेदा हुआ ?

युगबाहु का कथन सुनकर मणिरथ आह्लादित होकर कहने लगा कि प्रिय बन्धु ! तुम्हारा यह कथन मेरे लिए आनदकारी ही हुआ हे। मेने यह निश्चय न तो किसी प्रकार के सन्देह या अविश्वास के कारण ही किया है, न तुम्हे तुच्छ बनाने के लिए ही। किन्तु तुम्हारी नम्रता सेवा एव तुम्हारे गुणो

से पभावित होकर मैंने अपना उत्तराधिकारी बनाने के लिए ही ऐसा निश्चय किया है। मैं अपना निश्चय पूर्ण करने एव अपनी यह आज्ञा शिरोधार्य करने के लिए तुम से अनुराध करता हू। मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम मेरा यह अनुरोध अवश्य ही स्वीकार करोगे।

मणिरथ के कथन के उत्तर मे युगबाहु ने कहा कि मै आपकी आज्ञा का पालन करना कदापि अस्वीकार नहीं कर सकता, चाहे ऐसा करने मे मुझे अपना सिर ही क्यो न देना पडे। मै अपना शरीर आपकी सेवा के लिए ही मानता हू। आपकी सेवा करते हुए यदि यह शरीर नष्ट हो जाये तो मेरे लिए बडे सौभाग्य की बात होगी। मेरी तो आप से केवल यही पार्थना है कि आप मुझे युवराज बनाने का अपना निश्चय बदल दीजिये। युवराज पद एक उपाधि है। उपाधि पाप्त करने पर सेवा का मार्ग अधिक कठिन हो जाता हे। मै इस समय निष्काम सेवा कर रहा हू। मैं चाहता हू कि निष्काम ओर उपाधिरहित रह कर आपकी सेवा करू। कृपा करके आप मुझे उपाधिमुक्त ही रखिये।

युगबाहु की प्रार्थना सुनकर मणिरथ ने कहा– वत्स ! तुम भूल रहे हो। मैं तुम पर अपनी सेवा का अधिक भार डालना चाहता हू। तुम राज्य की रक्षा द्वारा मेरी अधिक सेवा कर सको इसी उद्देश्य से मै तुम्हे यह पद दे रहा हू। यह पद उपाधि तो अवश्य है, लेकिन सेवा के लिए। तुम जब मेरी सेवा करना स्वीकार करते हो तो मेरे द्वारा सौंपे जाने वाले सेवा–कार्य का भार उठाने मे आनाकानी करना उचित नही है।

मणिरथ की बात का युगबाहु कुछ उत्तर न दे सका। वह इस विचार मे पड गया कि मुझे क्या करना चाहिए और बडे भाई को क्या उत्तर देना चाहिए। युगबाहु को विचार मे पडा देखकर मणिरथ ने उससे कहा– युगबाहु ! तुम अधिक विचार मे न पडो। मेरी बात मानो। मैंने जो निश्चय किया है वह बहुत सोच–विचार कर किया है। तुम्हे यह पद देने मे में राज्य की रक्षा और प्रजा का हित समझता हू। विचार करने पर मेरा निश्चय तुम्हे भी उचित जान पडेगा।

मणिरथ के इस कथन पर भी युगबाहु चुप ही रहा। वह किसी निश्चय पर न पहुच सका। कुछ देर तक चुपचाप खडे रहने के पश्चात युगबाहु मणिरथ को पणाम करके अपने महल के लिए चल पडा। मार्ग मे वह सोचता जाता था कि मुझे क्या करना चाहिए ओर इस सबध मे किसकी सम्मति लेनी चाहिए ! इस प्रकार सोचता हुआ युगबाहु अपने महल मे आया।

युगवाहु की पत्नी मदनरेखा समकितधारिणी श्राविका थी। वह अक्षुद्र–वुद्धि थी, हलकी बुद्धिवाली न थी। जो क्षुद्र–वुद्धि होता है वह थोडी सम्पत्ति से ही इतरा जाता है और थोडी विपत्ति से घवरा भी जाता हे। जिस प्रकार क्षुद्र नदिया थोडे जल से ही पूर हो जाती हैं और थोडी गर्मी में ही सूख जाती हैं, उसी प्रकार क्षुद्र–बुद्धि वाले लोग भी थोडी ही सम्पत्ति–विपत्ति से अभिमान करने लगते हैं या धैर्य त्याग कर सूख जाते है। लेकिन अक्षुद्र–वुद्धि वाले वडी से वडी सम्पत्ति पाकर भी न तो अभिमान ही करते हैं और न वडी से वडी विपत्ति मे घवराते ही हैं। वे किसी भी दशा मे मर्यादा का उल्लघन नही करते, न छोटी–छोटी बातो पर ध्यान ही देते हैं। अक्षुद्र–बुद्धि वालो मे जो विशेषता होनी चाहिए, वह सब विशेषता मदनरेखा मे थी। वह ऐसी श्राविका थी कि जिसके व्यवहार से धर्म की प्रशसा हो। श्राविका होने पर भी कई स्त्रिया ऐसी होती हैं जो अपने व्यवहार से धर्म की निदा कराती हैं ओर श्राविकाए अपने व्यवहार से धर्म की प्रशसा कराती हैं। जो अयोग्य व्यक्ति होता है वह धर्म की निदा कराता हे ओर जो योग्य व्यक्ति होता है वह धर्म की प्रशसा कराता है। मयणरेहा का व्यवहार धर्मप्रशसा कराने वाली श्राविका के योग्य था। लौकिक व्यवहार मे कुशल होने के साथ ही वह पारलौकिक व्यवहार मे भी पूर्ण विवेक रखती थी। वह धार्मिक तत्त्वो एव कथाओ को जानने वाली थी और धर्म मे उसकी पूर्ण श्रद्धा थी। साथ ही वह अत्यन्त रूपवती, सुन्दर आकृति वाली एव सौम्य स्वभाव वाली थी। ससार मे माना जाता हे–''यत्र्याक्रते तत्र गुणा वसन्ति।'

यानी जिसकी आकृति अच्छी होती हे उसमे गुण भी अच्छे होते हैं। वल्कि गुण तो फिर देखने मे आते हैं पहले तो आकृति ही देखी जाती है। यह मनुष्य अच्छा हे या बुरा इसकी पहली पहचान आकृति की अच्छाई या वुराई हे। वेसे तो कई अच्छी आकृति वाले लोग भी दुर्गुणी तथा बुरे स्वभाव वाले होते हें ओर कई बुरी आकृति वालो मे भी सद्‌गुण एव अच्छा स्वभाव होता हे परन्तु व्यवहार मे विशेपत यही माना जाता हे कि जिसकी आकृति अच्छी ह उसमे सद्‌गुण भी हें ओर जिसकी आकृति खराव हे उसमे सद्‌गुणा की भी कमी ह।

मयणरेहा सुन्दर आकृति एव रूप वाली थी ओर उसमे सव सद्‌गुण भी थ तथा उसका स्वभाव भी अच्छा था उसकी आकृति सोम्य थी। उसके सम्पर्क म जो भी स्त्री आती थी उस स्त्री पर मयणरेहा की सोम्य प्रकृति एव उसके सद्‌गुणो का प्रभाव पडता ही था। जिस प्रकार पुष्प अपनी गन्ध दूसरी

वस्तु मे तो भर देता है परन्तु दुर्गन्ध मे पड जाने पर भी अपने मे दुर्गन्ध नही आने देता इसी प्रकार कई व्यक्ति भी ऐसे होते हैं कि जो अपने सद्‌गुण तो दूसरे मे भर देते है परन्तु अपने मे दूसरे के दुर्गुण नही आने देते। मयणरेहा ऐसी ही स्त्री थी। वह अपने सम्पर्क मे आने वाली स्त्री को अपने सद्‌गुण तो देती थी, परन्तु उसके दुर्गुण अपने मे नही आने देती थी। वह सरल स्वभाव की थी उसमे न तो अहकार था, न छल–पपच। वह साहसिन एव निर्भय थी। उसे भय था तो केवल पाप का। वह झूठ से घृणा करती थी और सत्य से प्रेम करती थी। उसमे उदारता कूट–कूट कर भरी हुई थी। वह सबका हित ही चाहती थी और हित ही करती थी किसी का अहित न तो चाहती ही थी और न करती ही थी। मतलब यह कि उसका जन्म अच्छे कुल और अच्छी जाति मे हुआ था उसको माता–पिता के यहा अच्छी शिक्षा मिली थी, इस कारण उसमे वे सभी बाते थी जो एक गृहिणी या श्राविका मे होनी चाहिये। वह कृतपुण्य थी जिससे उसको पति भी ऐसा मिला था कि जो प्रत्येक दृष्टि से उसके अनुरूप एव उसका तथा उसके सद्‌गुणो का सम्मान और विकास करने वाला था। पति–पत्नी मे निष्कपट प्रेम था। मयणरेहा ने चन्द्र का स्वप्न देखकर एक पुत्र को जन्म दिया था, जिसका नाम चन्द्रयश था। चन्द्रयश भी माता–पिता की तरह सुशील माता–पिता का आज्ञाकारी और होनहार था। चन्द्रयश के सिवाय उसके गर्भ मे एक और बालक था जिसके गर्भ मे आने के समय उसने यह स्वप्न देखा था कि कल्पवृक्ष आकर मेरे पेट मे उतर गया है।

मणिरथ के समीप से चलकर युगबाहु अपने महल मे मदनरेखा के पास आया। पति को आया देखकर मदनरेखा को प्रसन्नता हुई, परन्तु उसने देखा कि आज पति के मुखकमल पर चिन्ता छाई हुई है और वे कुछ उदास है। उसने पति का स्वागत–सत्कार करके उन्हे आदरपूर्वक बैठाया। तत्पश्चात उसने उनसे कहा– नाथ आज आप उदास क्यो हैं ? आज तक मैंने आपको कभी भी चिन्तित नही देखा। आज आपको किस कारण चिन्ता हुई है ? पुरुष को पधानत पहली चिन्ता अपनी पत्नी की ओर से होती है। इसके लिए मैंने अपना चरित्र तपास कर देखा सो उसमे ऐसी कोई त्रुटि नही दिखाई दी जिसके कारण आपको चिन्तित होना पडे। दूसरी चिन्ता सन्तान की ओर से होती है। अपनी सन्तान मे अभी एक पुत्र है जो बालक हे और आपकी आज्ञा का पालन करने वाला है। तीसरी चिन्ता आय–व्यय सबधी होती हे। अपने यहा इसका भी कोई कारण नही हे। चौथी चिन्ता राज्य की ओर से होती

है। आपको यह चिन्ता भी नहीं हो सकती। क्योकि यहा के राजा आपके बडे भ्राता ही हैं, जो आपसे पूर्ण स्नेह रखते हैं और आपको अपने पुत्र के समान मानते हैं। इस प्रकार मैं यह निश्चय न कर सकी कि आपको किस बात की चिन्ता है। इसलिए मैं यह जानना चाहती हू कि आप किस कारण से चिन्तित हैं?

मदनरेखा द्वारा किये गये प्रश्न के उत्तर मे युगबाहु ने उससे कहा– प्रिये ! मुझे न तो तुम्हारी ओर से चिन्ता हुई है, न सन्तान की ओर से, न और किसी कारण से। मैं बडे भाई को वन्दन करने गया था। वहा उन्होने मुझे युवराजपद देने का अपना निश्चय सुनाया। मैंने यह पद न देने के लिए भाई से बहुत–कुछ कहा–सुना, लेकिन मेरी एक भी बात न चलने दी। बल्कि उनकी स्नेह एव कृपापूर्ण बातो ने जैसे मेरे मुह मे ताला डाल दिया। मुझे चुप ही रहना पडा। भाई के इस निश्चय ने ही मुझे चिन्तित बनाया है। मैं भाई की अब तक निष्कपट एव नि स्वार्थ भाव से सेवा करता रहा हू और आगे भी मेरी इच्छा इसी प्रकार सेवा करते रहने की है, परन्तु बडे भाई का निश्चय मेरी इस इच्छा मे किसी समय भी बाधक हो सकता है। राज्य का लोभ मनुष्य को किसी समय भी चक्कर मे डाल सकता है और सत्ता का मद किसी भी समय ध्येय–भ्रष्ट कर सकता है। इस प्रकार एक ओर तो नि स्वार्थ सेवा छूटने का भय है और दूसरी ओर भाई की आज्ञा का प्रश्न है। मुझे क्या करना चाहिए, और मैं पद के प्रपच से कैसे बच सकता हू, यह निश्चय न कर पाने के कारण ही मुझे चिन्ता है। क्या तुम इस सकट से निकलने का मार्ग बता सकती हो ?

युगबाहु का कथन समाप्त होने पर मदनरेखा ने उससे कहा– आपके बडे भाई आपको युवराजपद देकर अपना उत्तराधिकारी बनाते हैं। वे इस प्रकार राज्य दे रहे हैं लेकिन आप यह पद नही लेना चाहते और इस प्रकार मिलते हुए राज्य को भी छोड रहे हैं। यह जानकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई है। ससार मे ऐसे लोग बहुत कम निकलेगे जिन्हे राज्य का लोभ न हो या राज्य प्राप्त होने पर अनुचित कार्य से बचे रहते हो। यदि किसी दूसरे को यह पद मिल रहा होता, तो वह प्रसन्नन होता बल्कि वह ऐसा पद प्राप्त करने के लिए उचित–अनुचित प्रयत्न भी करता तथा मेरे स्थान पर कोई दूसरी स्त्री होती तो वह भी इस विचार से प्रसन्न होती कि आज मेरे पति युवराज बन रहे हें और मैं युवराज्ञी बन रही हू एव भविष्य मे मेरे पति राजा और मैं रानी बनूगी। लेकिन आपको भी राज्य का लोभ नही है और मुझे भी

युवराज्ञी या रानी बनने की लालसा नही है। इस दृष्टि से तो मुझे आपको यही राय देनी चाहिए कि आप किसी भी तरह युवराजपद स्वीकार न कीजियेगा। मैं आपके कथन का पूरी तरह समर्थन करती हू और आपके तथा मेरे लिए राम तथा सीता के आदर्श पर चलना उचित मानती हू, परन्तु अपने यहा की स्थिति दूसरी है। यदि आप अपने बडे भाई की इच्छानुसार युवराजपद ग्रहण न करेगे तो उन्हे दु ख होगा, जो अवाछनीय है। मेरा तथा आपका यही कर्तव्य है कि बडे भाई जिससे प्रसन्न रहे और आज्ञा दे वह करना। इसके सिवाय बडे भाई की सेवा युवराजपद मिलने पर भी की जा सकती है। इसलिए मैं आपको यही सम्मति देती हू कि लोभ से नही, किन्तु बडे भाई की आज्ञा का पालन करने एव उनको प्रसन्न रखने के लिए आप युवराजपद स्वीकार कर ले। हा इसके साथ मै यह निवेदन कर देना उचित समझती हू कि युवराजपद पाकर अपने मे किसी प्रकार का अहकार न आने दे भाई की सेवा न भूले और न्याय–नीति विस्मृत न करे। मुझे विश्वास है कि आप ऐसा ही करेगे।

मयणरेहा के इस तरह समझाने से युगबाहु ने भी युवराजपद लेना ठीक माना। इस प्रकार दोनो की सम्मति यही ठहरी कि युवराजपद स्वीकार कर लिया जाये।

मणिरथ ने युगबाहु को युवराजपद देने के लिए तैयारी कराई। अन्त मे उसने नियत समय पर उत्सवपूर्वक युगबाहु को युवराजपद प्रदान किया और अपना उत्तराधिकारी बनाया। सब लोग मणिरथ के इस कार्य से बहुत ही प्रसन्न हुए। कोई दोनो भाइयो के पारस्परिक स्नेह की प्रशसा करता था कोई छोटे भाई पर पूर्ण कृपा रखने के कारण मणिरथ की प्रशसा करता था और कोई युगबाहु की नम्रता, सरलता वीरता एव भ्रातृ–भक्ति की प्रशसा करता था।

मणिरथ और युगबाहु आनद से रहने लगे। दोनो भाइयो मे आदर्श प्रेम था। दोनो प्रजाहित एव राज्यरक्षा का ध्यान रखते थे। दोनो मे भेदरहित स्नेह था। इस प्रकार दोनो भाइयो के दिन सुखपूर्वक बीत रहे थे।

कामासक्ति

समाषयेत् स्त्रिय नैव पूर्वं दृष्ट्वा च न स्मरेत्।
कथा च वर्जयेत्तासा नो पश्येल्लिखितामपि।।

नीतिकारो ने इस श्लोक मे कहा हे कि 'स्त्री से वातचीत नहीं करनी चाहिए, पहले देखी हुई स्त्री का स्मरण भी नही करना चाहिए। स्त्री सवधी कथा भी नहीं करनी चाहिए और स्त्री का चित्र भी नहीं देखना चाहिए। नीतिकारो ने इन कार्यो मे ऐसी क्या हानि देखी जो इनसे वचने के लिए कहा? और यहा तक कह डाला कि स्त्री साक्षात् देखना तो दूर रहा स्त्री का चित्र भी नहीं देखना चाहिए? यही कि इन वातो के होने पर हृदय मे काम–विकार जाग्रत् होना वहुत सम्भव है और जिसमे काम–विकार जाग्रत् हो जाता है, किसी–न–किसी दिन उसका सदाचार नष्ट हो जाये यह स्वाभाविक है। नीतिकारो की दृष्टि मे सव वाते काम–विकार जाग्रत् करने वाली हैं। काम–विकार जाग्रत् होने के दूसरे भी बहुत–से कारण हैं, परन्तु ये कारण प्रधान हें और इन कारणो मे भी स्त्री को देखना सवसे अधिक भयकर है इसलिए इस सवध मे इतना अधिक निपेध किया गया हे कि स्त्री का चित्र भी नहीं देखना चाहिए। स्त्री को देखने पर हृदय मे स्त्री के प्रति विकारजन्य आकर्पण होता हे। वह आकर्पण मनुष्य को स्त्री की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने को विवश कर देता हे ओर उसको सर्वनाश के अभिमुख रख देता हे। नीतिकारो का यह उपदेश शास्त्रसम्मत भी हे। उत्तराध्ययनसूत्र के सोलहवे अध्याय मे व्रह्मचर्य की रक्षा के उपाय वताते हुए कहा हे–

नो इत्थीण इदियाइ मणोहराइ।
मणोरमाइ आलोइत्ता निज्झाइत्ता भवइ।।

अर्थात (व्रह्मचारी का) स्त्रियो के मनोहर एव रम्य अग न देखना ओर न निहारना चाहिए। ऐसे एक–दो नही दस विधान ह।

इस प्रकार नीतिकारो के इस कथन का समर्थन शास्त्र भी करते हैं। यह बात उन लोगो के अनुभव की भी अवश्य होनी चाहिए जो सदाचार से पतित हुए हैं। सदाचार से पतित होने वाले अर्थात् ब्रह्मचर्य नष्ट करने वाले अथवा परदार—गमन करने वाले लोगो के विषय मे यदि इस बात का पता लगाया जाये कि ये लोग किस कारण पतित हुए है, तो सम्भवत ऐसे लोगो की सख्या अधिक ही मिलेगी जो स्त्री के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर सदाचार से भ्रष्ट हुए हो। ऐसे लोगो ने यदि नीतिकारो द्वारा और शास्त्र मे बताये हुए 'स्त्री को न देखने' के नियम का पालन किया होता, स्त्री को न देखा होता, तो वे स्त्री के रूप—सौन्दर्य पर मुग्ध होकर पतित क्यो होते ! इसलिए सदाचार का पालन करने के वास्ते यह आवश्यक है कि स्त्री की ओर न देखे। इसका यह अर्थ नही है कि अपनी आखे ही फोड ली जाये या बन्द रखी जाये, किन्तु अर्थ यह है कि स्त्री को विकृत दृष्टि से न देखा जाये, दृष्टि मे आते ही स्त्री की ओर से दृष्टि फिरा ली जाये और सहज दृष्टि से स्त्री के सबध मे जो—कुछ देखा गया है, उसका स्मरण न किया जाये, उसे सर्वथा विस्मृत कर दिया जाये। ऐसा न करने पर यानी स्त्री को विकृत दृष्टि से दृष्टि गढाकर देखने पर और जो—कुछ देखने मे आया है उसे विस्मृत न कर देने पर मनुष्य किस तरह पतित होता है, यह बात मणिरथ के चरित्र से ज्ञात होगी।

मणिरथ अपने छोटे भाई युगबाहु से अत्यन्त स्नेह करता था। इसलिए अनुज—वधू मदनरेखा को अवश्य ही पुत्री के समान मानता होगा। लेकिन उसने जब से अनुज—वधू मदनरेखा को देखा, तब से उसके सौन्दर्य पर मोहित होने के कारण वह नीति—मर्यादा की सब बातो को भूल गया। फिर उसके हृदय से सदाचार की भावना भी निकल गई और पुत्री के समान मानी जाने वाली अनुज—वधू को अपनी बनाने के लिए कैसे प्रपच करने लगा, आदि बाते इस प्रकरण से प्रकट होगी।

एक दिन गर्भवती मदनरेखा अपने महल की छत पर उच्चासन पर बैठी हुई थी। उसके आस—पास उसकी सखिया बैठी हुई थी और आपस मे विनोद की बाते कर रही थी। मदनरेखा भी आनदपूर्वक सखियो की बातो मे भाग लेती थी तथा अपनी सखियो मे से किसी को वस्त्र किसी को आभूषण आदि पुरस्कार दे रही थी और किसी को भविष्य मे उचित उपहार देने का आश्वासन दे रही थी। जिस समय यह सब हो रहा था उसी समय राजा मणिरथ भी मन बहलाने के लिए अपने महल की छत पर गया। उसके साथ उसके हितैषी सेवक भी थे। जो समय—समय पर मणिरथ का चित्त अपनी

बातो से प्रसन्न किया करते थे। महल की छत पर जाकर मणिरथ सहज रीति से ही इधर–उधर देखने लगा। सहसा उसकी दृष्टि युगबाहु के महल की छत तथा उस पर बैठी हुई मदनरेखा पर पडी। मदनरेखा वैसे भी बहुत सुन्दरी थी ओर उस समय उसके गर्भ मे एक महापुरुष था, इसलिए उसका सौन्दर्य और भी चमक उठा था। ऐसी सुन्दरी मदनरेखा को देखकर मणिरथ मन ही मन उसके सौन्दर्य की प्रशसा करने लगा। मयणरेहा के रूप–सोन्दर्य से मणिरथ का हृदय मयणरेहा की ओर आकर्षित हो गया। वह एकटक मदनरेखा की ओर देखने लगा। मणिरथ को मदनरेखा की ओर देर तक टकटकी लगाये देखकर मणिरथ के साथियो मे से एक ने मणिरथ से कहा– महाराज यह युवराज का महल है। गर्भवती युवराज्ञी महल की छत पर बैठी हुई आमोद–प्रमोद कर रही हैं। इस समय अपना यहा आना ठीक नही रहा और युवराज्ञी अथवा उनकी सखियो ने भी अपने को नही देखा, नही तो वे अवश्य ही आड मे हो जाती। जो हुआ सो हुआ, लेकिन अब हम लोगो को लौट चलना चाहिए। अनुज–वधू की ओर इस प्रकार नहीं देखना चाहिए। अनुज–वधू को इस प्रकार देखना मर्यादा का उल्लघन करना है।

राजाओ को पहले सच्ची सलाह देने वाले स्पष्टवक्ता और निर्भय व्यक्ति कम ही मिलते हैं। किन्तु ऐसे लोग अधिक मिलते हैं जो राजा की हा मे हा मिलावे, राजा को प्रसन्न रखना ही अपना कर्तव्य माने और समय पर भी उचित बात न कहे। कदाचित् स्पष्टवक्ता निर्भय हितैषी मिल भी जाये तो ऐसे राजा भी कम ही निकलेगे, जो उचित सम्मति को माने, सम्मति देने वाले पर रुष्ट न हो तथा सम्मति देने वाले को हितैषी समझे।

उसके हितैषी सेवक ने मणिरथ से मर्यादा की रक्षा के लिए ठीक ही कहा था कि आपको इस प्रकार अनुज–वधू की ओर नही देखना चाहिए अपितु लौट चलना चाहिए। लेकिन मणिरथ को हितैषी द्वारा कही गई बात उसी प्रकार अरुचिकर हुई जिस प्रकार कई रोगियो को वैद्य की बात अरुचिकर होती है। अपने साथी की बात को मानने के बदले मणिरथ उस पर और रुष्ट हो गया। वह क्रोधपूर्वक उस सम्मति देने वाले साथी से कहने लगा– क्या मै अज्ञानी हू, मर्यादा नहीं जानता हू या आचरणभ्रष्ट हू, जो तू ऐसा कहता है? मैं जानता हू कि वह युगबाहु की पत्नी हे और यह जानकर ही मैं देख रहा हू कि युवरानी एव उसकी सखियो का पारस्परिक व्यवहार केसा हे? में राजा हू, मेरा कर्तव्य है कि में प्रत्येक व्यक्ति के विचार एव चेष्टा आदि का ध्यान रखू। इस सम्बन्ध मे मुझे तेरे से कुछ सीखने या तुझे कुछ

सिखाने की आवश्यकता नही है। मैं निर्दोष दृष्टि से किसी को देखना अनुचित नही मानता।

इस पकार कहकर मणिरथ ने अपने साथी को डाट दिया और कह दिया कि तुम लोग मेरे साथ रहने योग्य नही हो, इसलिए सब नीचे जाओ। बेचारे नौकरो की हिम्मत ज्यादा कहने की कैसे पड सकती थी ? इसलिए राजा की आज्ञानुसार सब साथी नीचे चले गये। अपने साथियो को भगाकर मणिरथ फिर उसी प्रकार मदनरेखा की ओर देखने लगा और अपने मन मे उसके सौन्दर्य एव सहज हावभाव की पशसा करने लगा। वह सोचने लगा कि ऐसी रूपवती स्त्री तो मैंने आज तक नही देखी। इसके समान सुन्दर स्त्री दूसरी कौन होगी! मेरी समझ से इसकी तुलना मे स्वर्ग की अप्सराए भी नही ठहर सकती तो कोई मानवी ठहर ही कैसे सकती है?

मदनरेखा की ओर देखता हुआ मणिरथ इस प्रकार सोचता जाता था और मदनरेखा पर अधिकाधिक मुग्ध होता जाता था। मदनरेखा का सौन्दर्य देखकर मणिरथ की न्याय–नीति सब लुप्त हो गई। वह मदनरेखा पर उसी प्रकार मोहित हो गया जैसे पतगा दीपक पर मोहित होता है। सहसा उसको ध्यान हुआ कि मैने जिन साथियो को भगा दिया है वे मेरे विषय मे न मालूम क्या–क्या कहते होगे और यदि किसी ने युगबाहु से यह बात कह दी तो वह भी रुष्ट हो जायेगा। इसी प्रकार मदनरेखा या उसकी सखियो मे से कोई मुझे इस प्रकार निहारते देख लेगी तो उस समय लज्जित होना पडेगा।

इस प्रकार भय और लज्जा के वश होकर मणिरथ महल की छत से नीचे उतरा लेकिन उसका हृदय स्थिर न था। उसके हृदय मे मदनरेखा का सौन्दर्य बस गया था तथा मदनरेखा के प्रति दुर्भावना उत्पन्न हो गई थी। उसके हृदय मे रह–रहकर यही विचार होता था कि मदनरेखा अत्यन्त सुन्दरी है। युगवाहु बडा ही सद्भागी है जो उसे ऐसी पत्नी प्राप्त हुई है। उसकी अपेक्षा मैं हतभागी हू आदि ।

मणिरथ को खाते–पीते और सोते–बैठते मयणरेहा का ही ध्यान रहने लगा। वह सोचने लगा कि मदनरेखा को प्राप्त किये बिना मेरा जीवित रहना व्यर्थ है। मेरा जीवन तभी सफल है, जब मैं मदनरेखा का आलिगन करू और उसके साथ भोग भोगू, अन्यथा सरेस के वृक्ष के समान मेरा जीवन निष्फल ही है। परन्तु उसे प्राप्त कैसे किया जाये! जब तक वह युगबाहु के साथ है तब तक उसे प्राप्त करने का मेरा प्रयत्न सफल नहीं हो सकता। जब युगबाहु उसके पास न हो किन्तु वह अकेली हो, तभी मेरा प्रयत्न सफल हो

सकता है और उस समय मैं उसे प्रलोभन मे फसाकर अपने हृदय को शान्त कर सकता हू। मूल्यवान वस्त्राभूषण और उसके साथ पटरानी पद के प्रलोभन मे कौन स्त्री नहीं फस सकती ! कैसी भी सती हो, इस महान् प्रलोभन मे पडकर उसे अपना सतीत्व दूसरे पुरुष के हाथ वेच ही देना पडेगा। मदनरेखा को प्रलोभन मे डालकर अपना लेना तो कठिन नहीं है। परन्तु प्रश्न यह है कि युगबाहु को यहा से कैसे हटाया जाये? मेरे हृदय की कामना तभी पूर्ण हो सकती है जब युगबाहु दूर हो। वह मेरी कामना पूर्ण होने के मार्ग मे काटा है। किसी प्रकार उसको हटाकर मयणरेहा को एक बार अपना लू, बस, उसके पश्चात् क्या है ! कुछ भी हो और किसी भी तरह सही, मयणरेहा को मैं अपनी प्रेयसी अवश्य बनाऊगा। उसके बिना मुझे सभी पदार्थ दु खदायी जान पडते हैं और यह राज–पाट भी तुच्छ ही दिखता है।

मणिरथ न्याय–नीति–निपुण राजा था। उसमे युगबाहु के प्रति पूर्ण स्नेह था। वह युगबाहु को अपने पुत्र से भी बढ कर प्रिय समझता था परन्तु मदनरेखा के सौन्दर्य एव उसकी लीला से मणिरथ की न्याय–नीति और उसका बन्धु–स्नेह उसी प्रकार विलीन हो गया जिस प्रकार प्रबल पवन से घने वादल भी विलीन हो जाते हैं। मदनरेखा के लिए उत्पन्न काम–विकार से व्यथित होकर मणिरथ अपने प्रिय भाई को भी अपने लिये काटा मानने लगा। ऐसी वातो को देख कर ही भर्तृहरि ने कहा है–

व्याकीर्ण केशर करालमुखा मृगेन्द्रा
नागाश्च भूरि मदराजिविराजमान ।
मेधाविनश्च पुरुषा समरेषु शूरा,
स्त्री सन्निधौ परम कापुरुषा भवन्ति।।

अर्थात् गर्दन पर बिखरे बालो वाला करालमुखी सिह अत्यन्त मतवाला हाथी ओर बुद्धिमान समर–शूर पुरुष भी स्त्रियो के आगे परम कायर हो जाते हैं।

मणिरथ अपने भाई युगबाहु को अपने मार्ग का काटा मानकर उसको दूर करने का उपाय सोचने लगा। वह सोचता था कि युगबाहु के रहते यदि मैंने मदनरेखा को प्राप्त करने का प्रयत्न किया और युगबाहु को पता लग गया तो वह मेरे विरुद्ध हो जायेगा। मैंने उसको युवराज बना दिया है इसलिए उसके विद्रोही बनने पर प्रजा भी उसका साथ देगी, जिससे मुझे मदनरेखा भी प्राप्त न होगी और मेरी निन्दा भी होगी। अत किसी उपाय से उसे यहा से हटा देना चाहिए।

मनुष्य विचार करके कठिन कार्य का भी उपाय ढूढ लेता है। उसके अनुसार मणिरथ ने भी युगबाहु को मदनरेखा से दूर भेजने का उपाय सोच ही लिया। वह बुद्धिमान तो था ही, और ससार मे ऐसा कौनसा काम है जो बुद्धि की सहायता से न हो सके। यह बात दूसरी है कि कोई बुद्धि का उपयोग अच्छे काम मे करे या बुरे काम मे, परन्तु बुद्धि द्वारा सभी काम किये जा सकते हैं।

मणिरथ ने अपनी बुद्धि का उपयोग युगबाहु को हटाने का उपाय सोचने मे किया। वह युगबाहु को हटाने का उपाय सोचकर बहुत ही प्रसन्न हुआ। वह दूसरे दिन सभा मे बैठा, उसके सामन्त भी उपस्थित थे और युगबाहु भी। इधर–उधर की कुछ बाते करने के पश्चात् मणिरथ अपने सामन्तो से कहने लगा– राज्य की सीमा पर अमुक–अमुक ने बहुत उत्पात मचा रखा है। वे लोग मेरी प्रजा पर अत्याचार भी करते हैं और मेरी आज्ञा भी नही मानते हैं। मैं अब तक उन लोगो का अत्याचार सहता रहा, परन्तु अब तो उनका अन्याय सीमातीत हो गया है। जो राजा प्रजा पर अत्याचार करने वाले आततायियो का दमन नही करता, वह कायर है और राजा होने के अयोग्य है। इसलिए सेना तैयार कराओ। मैं जाकर उन आततायियो को दण्ड दूगा और या तो उनसे अपनी आज्ञा मनवाऊगा, अथवा उनसे लडते हुए अपनी जान ही दे दूगा। मैं क्षत्रिय हू, मुझे प्राणो की तनिक भी परवाह नही है। यदि अपेक्षा है तो अपनी आज्ञा मनवाने की तथा प्रजा की रक्षा करने की। इसलिए सेनापति को सेना तैयार करने की मेरी आज्ञा सुना दो। कल मैं प्रस्थान कर दूगा।

मणिरथ के हृदय मे तो कुछ दूसरा ही भाव था, परन्तु उसने प्रकट मे इस तरह के वीरताभरे शब्द कहकर सेना तैयार करने की आज्ञा दी। मणिरथ का कथन सुनकर सामन्तो ने मणिरथ से कहा– महाराज, आपने जो विचार किया, वह आपके योग्य ही है। आपके मुख से ऐसे वीरताभरे शब्द ही शोभा देते हैं। आप अवश्य ही पधारिये, हम लोग आपके साथ चलेगे। हमारे रहते किसकी शक्ति है जो आपकी ओर देख भी सके। जहा पर आपका पसीना गिरेगा, वहा हम लोग अपना रक्त बहा देगे, लेकिन जीवित रहते पैर पीछे नही हटाएगे।

मणिरथ और सामन्तो की बातें सुनकर युगबाहु ने सोचा कि आततायियो का दमन करने के लिए महाराज स्वय ही जाने को तैयार हुए हैं। मेरे लिए यह अयोग्य होगा कि मैं कायर की तरह घर मे बैठा रहू और भाई युद्ध करने

जाये। युवराज तथा छोटा भाई होने के कारण मेरा यह कर्तव्य है कि मैं युद्ध करने जाऊ भाई को न जाने दू। मेरे रहते भाई युद्ध करने जाये, यह मेरे लिए कलक की बात होगी। ये जो–कुछ करना चाहते हैं, वह मेरे लिए ही है। मेरा राज्य निष्कटक बनाने के लिये ही ये प्राणो की वाजी लगा रहे हैं। ऐसी दशा मे मैं घर मे रहू, यह सर्वथा असम्भव है।

इस प्रकार सोचकर युगवाहु हाथ जोडकर मणिरथ से कहने लगा– पूज्य भ्राताजी! मेरे रहते आपको युद्ध करने जाने की क्या आवश्यकता है! यदि थोडे–से आततायियो का दमन करने के लिए आपको जाना पडेगा तो मैं क्या करूगा! इस छोटे–से कार्य के लिए आपको कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं। आप मुझे आज्ञा दीजिए, मैं जाकर विद्रोहियो को दवा दूगा और उनसे आपकी आज्ञा मनवा लूगा।

मणिरथ चाहता तो यही था कि विद्रोहियो के दमन का भार युगवाहु अपने पर लेकर यहा से चला जाये, जिससे मदनरेखा की प्राप्ति के प्रयत्न का मार्ग सरल हो जाये। इसी उद्देश्य से उसने विद्रोहियो के दमन और सीमा का प्रवन्ध करने का प्रपच रचा था। युगबाहु का कथन सुनकर वह अपने मन मे प्रसन्न भी हुआ ओर अपनी चातुरी की सफलता पर उसे गर्व भी हुआ। फिर भी प्रकट मे भला बनने और अपना उद्देश्य छिपाने के लिए कपटपूर्वक बोला– वत्स युगवाहु! तुम मुझे प्राणो से भी अधिक प्रिय हो। इसके सिवाय तुम्हे युद्ध विषयक अनुभव भी नही है। ऐसी दशा मे मैं तुम्हे उन दुष्ट शत्रुओ के मध्य मे केसे भेज सकता हू? एक तो वे शत्रु हैं और फिर उनके घर जाकर उनसे युद्ध करना है। अपने घर मे तो कुत्ता भी बलवान होता है। इसलिए तुम यह दु साहस न करो। इसके सिवा यदि तुम युद्ध करने जाओगे तो तुम्हारे लिए मेरा हृदय सदैव चिन्तित रहेगा जिससे मुझे युद्ध मे होने वाले कष्ट से भी ज्यादा कष्ट यहा अनुभव होगा। इसलिए तुम घर पर ही रहो युद्ध के लिए जाने का विचार न करो।

मणिरथ के हृदय का कपट–भाव युगबाहु नही जनता था। वह मणिरथ के प्रति निष्कपट व्यवहार रखता था ओर छलरहित उसकी सेवा करना अपना कर्तव्य समझता था। वह सरल, स्वाभिमानी और वीर–हृदयी था। इसलिए उसने मणिरथ से कहा कि महाराज! क्या आपको मेरी शक्ति और वीरता के प्रति कुछ सन्देह हे? क्या में आपही का छोटा भाई नही हू? क्या आपकी दृष्टि मे मैं कायर हू? यदि ऐसा हे तो न मे आपका छोटा भाई कहलाने का ही अधिकारी हू, न युवराज पद पर रहने का ही। आपको अभी

मेरे हाथो की शक्ति, मेरे युद्ध–कौशल और साहस का पता नही है, इसी से आप ऐसा कह रहे हैं। आप मुझे युद्ध मे जाने की आज्ञा तो दीजिये, फिर देखिये कि मै कैसा पराक्रम दिखाता हू! मैं चाहता हू कि मुझे अपना पराक्रम दिखाने का अवसर मिले जिससे आप जान सके कि मेरा छोटा भाई कैसा है और प्रजा भी जान सके कि हमारा भावी राजा कैसा है? आप मुझे कायर न समझिये। यदि आप ही मुझे कायर मानेगे तो दूसरे लोग भी मुझे कायर समझेगे यह स्वाभाविक है। इसलिए आप मुझे युद्ध के लिए जाने की आज्ञा दीजिए। मेरे लिए किसी भी तरह की चिन्ता न कीजिए।

युगबाहु का आग्रह देखकर मणिरथ मन ही मन इस विचार से और भी पसन्न हुआ कि युगबाहु स्वय ही युद्ध के लिए जा रहा है, यह अच्छा ही है। इसका आग्रह मान लेने पर यह भी प्रसन्न रहेगा और मेरा उद्देश्य भी पूरा हो जायेगा। यह कार्य इस कहावत के अनुसार ही होगा कि साप भी मर गया और लाठी भी नही टूटी। इस प्रकार के विचारो से वह मन मे तो प्रसन्न था ही फिर भी प्रकट मे वह गम्भीर ही बना रहा और युगबाहु से कहने लगा– वत्स ! तुम्हारी वीरता मे मुझे किञ्चित–मात्र भी सन्देह नहीं है, न ही तुम युद्ध से डरने वाले हो, फिर भी मै अपने मुह से तुम्हे युद्ध मे जाने की आज्ञा कैसे प्रदान कर दू ! मैं इस समय बडे ही असमजस मे पडा हुआ हू। एक ओर तो तुम्हारा ऐसा आग्रह है और दूसरी ओर यह विचार मेरे मन मे आता है कि मैं स्वय तुम से युद्ध करने को जाने के लिए कैसे कहू? समझ मे नहीं आता कि इस समय मुझे क्या करना चाहिए?

मणिरथ के कथन से युगबाहु समझ गया कि बडे भैया अपने मुह से युद्ध मे जाने के लिए नहीं कहना चाहते परन्तु मेरे आग्रह को भी टालना नही चाहते। इसलिए मुझे स्वय ही अपना मार्ग निश्चय कर लेना चाहिए। यह समझकर युगबाहु ने मणिरथ से कहा– महाराज ! आप स्नेह के कारण मुझे युद्ध मे जाने के लिए नही कह सकते तो इसमे कोई हर्ज नहीं, परन्तु कृपा करके आप मुझे युद्ध के लिए जाने से रोकिये भी मत। मैं कल सेना लेकर युद्ध के लिए प्रस्थान कर जाऊगा और विजय प्राप्त करके ही आपका दर्शन करूगा।

यह कह कर युगबाहु मणिरथ का अभिवादन करके अपने महल के लिए चल पडा। युगबाहु के जाने के बाद मणिरथ उदास होकर सभासदो से कहने लगा– युगबाहु वीर है। इसलिए वह युद्ध करने के लिये गये बिना नहीं मानेगा, परन्तु मैं उसका वियोग कैसे सह सकूगा यह समझ मे नही आता।

वास्तव मे राजधर्म बडा ही कठिन कार्य है। अपने धर्म को निभाने के लिए राजाओ को बडे–बडे कष्ट सहने पडते हैं। युगबाहु राजधर्म से प्रेरित होकर ही युद्ध के लिए जाने को तैयार हुआ है। मैं उसको रोकू भी कैसे! जिस धर्म का पालन करने के लिए युगबाहु जा रहा है, वही धर्म युगबाहु की रक्षा करेगा। इसके सिवाय तुम लोग साथ हो ही। इसलिए युगबाहु नि सन्देह विजय प्राप्त करेगा। फिर भी मेरा हृदय नहीं मानता, लेकिन दूसरा कोई मार्ग भी तो नहीं है!

सभासदो से इस प्रकार कहकर मणिरथ ने सभा विसर्जित कर दी और वह अपने महल की ओर चल दिया। उस समय उसे वैसी ही प्रसन्नता थी जैसी प्रसन्नता जुआरी को दाव जीत जाने से होती है। उसके हृदय मे इस विचार से आनन्द की तरगे उठ रही थीं कि अब मेरे मार्ग का काटा निकल जावेगा और मैं मनमोहिनी मदनरेखा को थोडे ही समय मे अपनी प्रेयसी बना सकूगा।

युगबाहु प्रसन्न होता हुआ मदनरेखा के महल मे आया। वह सोचता था कि मुझे युद्ध के लिए जाने का जो सुअवसर प्राप्त हुआ है, उसके समाचार सुनकर मदनरेखा अवश्य ही प्रसन्न होगी। इसके सिवाय वह मेरी अर्द्धांगिनी है, इसलिए मुझे चाहिए कि मैं प्रत्येक कार्य मे उसकी सम्मति लू और उसकी सहमति के पश्चात् ही कार्य मे प्रवृत्त होऊ। इसलिए मुझे यह समाचार मदनरेखा को भी सुनाना चाहिए।

युगबाहु मदनरेखा के महल मे आया। पति को आया देखकर मदनरेखा बहुत प्रसन्न हुई। आनन्दित होकर उसने पति का स्वागत–सत्कार किया और सिहासन पर बैठाया। युगबाहु का स्वागत–सत्कार कर चुकने के पश्चात् मदनरेखा ने कहा– नाथ! आज आप सदा से अधिक प्रसन्न दिखाई दे रहे हैं। ऐसा जान पडता है कि कोई विशेष आनद की प्राप्ति हुई है। मै आपकी धर्मपत्नी हू, इसलिए आपने जो–कुछ प्राप्त किया है उसमे से थोडा भाग पाने की मैं भी अधिकारिणी हू। अत कृपा करके आप अपने हर्ष मे मुझे भी सम्मिलित कीजिए।

मदनरेखा की प्रेमपूर्ण बातो ने युगबाहु को और भी आनदित किया। वह मदनरेखा की प्रशसा करके कहने लगा कि हे प्रिये ! राज्य की सीमा पर कुछ आततायियों ने बहुत उत्पात मचा रखा है। उनके उपद्रव से प्रजा अत्यन्त दु खी है। आततायी महाराज की आज्ञा का उल्लघन करते हैं और विद्रोही हो रहे हैं। आज राजसभा मे महाराज ने सेना तेयार करने की आज्ञा प्रदान

की है और उपद्रवियो का दमन करने के लिए स्वय जाने को तैयार हुए थे। उस समय मुझे विचार आया कि महाराज स्वय युद्ध के लिए प्रस्थान करे और मै घर मे बैठा रहू, यह उचित नही। ऐसे विचारो से प्रेरित होकर, मैंने स्वय आततायियो के दमन का भार अपने ऊपर ले लिया। यद्यपि महाराज ने बन्धु–स्नेह के कारण मुझे बहुत रोका परन्तु अन्त मे मेरा आग्रह देखकर चुप हो गये तथा इस पकार उन्होने मौन रह कर मुझे स्वीकृति प्रदान कर दी। मैं कल युद्ध करने जाऊगा। मुझे इस विचार से बडी पसन्नता है कि मुझे अपना पराकम दिखाने क्षात्र धर्म का पालन और ज्येष्ठ भ्राता की सेवा करने का सुअवसर पाप्त हो रहा है। वास्तव मे क्षत्रियो की दो ही दशा होनी चाहिये, या तो शत्रुओ को अधीन करना उनको पराजित करना या समरभूमि मे युद्ध करते हुए पाण त्याग देना।

यह कहते–कहते युगबाहु, गद्गद हो उठा। उसका कथन समाप्त होने पर मदनरेखा ने कहा– हे प्रियतम! युद्ध का भार स्वय पर लेकर आपने बहुत ही उत्तम कार्य किया है। मैं क्षत्रिय–कन्या एव वीर–पत्नी हू, इसलिए मुझे आपके इस कार्य से बडी प्रसन्नता हुई है। आप युद्ध के लिए पसन्नता–पूर्वक प्रस्थान कीजिए। मैं आपको हर्षपूर्वक युद्ध के साज से अपने हाथो सजाऊगी और विदा करूगी। हा आपसे यह प्रार्थना अवश्य करती हू कि युद्ध के समय मेरा या और किसी का किचित् मात्र भी मोह न रखे। जिसके हृदय मे किसी के प्रति मोह होगा, वह युद्ध मे पराक्रम नही दिखा सकता। वह कायरता दिखाकर रणभूमि से भाग जायेगा। इसलिए आप युद्ध के समय किसी का मोह मन मे मोह मत रखियेगा। मैं वीर–पत्नी कहला कर विधवा रहना तो पसद करूगी लेकिन कायर–पत्नी कहलाकर सुहागिन रहना मेरे लिए मृत्यु से भी अधिक दु खदायी होगा।

मदनरेखा के वीरतापूर्ण शब्दो को सुनकर युगबाहु ने हर्ष प्रकट करते हुए अपनी पत्नी से कहा– हे देवी! तुमने जो–कुछ कहा वह एक वीर–पत्नी के योग्य ही है। तुम्हारे कथनानुसार मैं शत्रुओ को पराजित करके ही लौटूगा और यदि ऐसा न कर सका तो मेरी मृत्यु का समाचार अवश्य आवेगा, परन्तु मैं कायरतापूर्वक शत्रुओ को पीठ कदापि न दिखाऊगा।

अगले दिन सेना तैयार हुई। मदनरेखा ने एक वीर नारी के कर्तव्यानुसार युगबाहु को युद्ध–सामग्री से सुसज्जित किया। उसने युगबाहु के लिए प्रवास मे काम आने वाली आवश्यक सामग्री की भी व्यवस्था कर दी। यह करके उसने युगबाहु के मस्तक पर मगलतिलक निकाला और हाथ जोडकर वह

युगवाहु से कहने लगी– हे नाथ ! आप विजय के लिए प्रस्थान कीजिए तथा शत्रुओ के मध्य वैसा ही पराक्रम दिखाइये, जैसा पराक्रम मत्त हाथियो के समूह मे सिह दिखलाता है। मैं आपके वक्षस्थल पर शत्रुओ द्वारा किये गये घावो को धोने और उन पर औषध लगाकर पट्टी वाधने मे बहुत आनद का अनुभव करूगी, लेकिन पीठ पर का घाव मेरे लिए बहुत दु ख देने वाला होगा। मुझे विश्वास है कि आप क्षत्रियोचित कर्तव्य का पूर्णरूपेण पालन करेगे, शत्रुओ के प्रति क्षमा तथा उदारता का व्यवहार भी रखेगे और विजय प्राप्त करके मुझे पुन शीघ्र ही दर्शन देगे। जिस प्रकार आज मैं आपकी पीठ देखती हू, उसी प्रकार आपके विजयी मुखकमल का दर्शन करू यही मेरी कामना है। एक वात मैं और निवेदन करना उचित समझती हू, जो बहुत महत्त्वपूर्ण है। युद्ध के समय भी, आप धर्म और परमात्मा को न भूलियेगा उन्हे स्मरण रखियेगा। वल्कि ऐसे समय मे धर्म और परमात्मा को विशेप रूप से याद रखना चाहिए, जिससे यदि युद्ध करते हुए मृत्यु प्राप्त हो गई तो दुर्गति मे न जाना पडे। इसी प्रकार इस वात का भी ध्यान रखियेगा कि निरपराधियो पर किसी प्रकार का अन्याय एव अत्याचार न हो। युद्ध के समय रोना निरपराधी प्रजा को भी सताने लगती है और विजयी सेना तो प्राय प्रजा को लूटना–खसोटना ही अपना कर्तव्य समझती है जो सर्वथा अनुचित है। आप इस ओर विशेष ध्यान रखियेगा। मुझ जेसी बुद्धिहीन स्त्री आपसे और अधिक क्या निवेदन कर सकती है?

इस प्रकार कह कर मदनरेखा ने युगबाहु को विदा दी। मदनरेखा को सात्वना देकर और उसे सावधान रहने के लिए कहकर सेना सहित युगबाहु ने विजययात्रा प्रारम्भ की। मणिरथ भी युगवाहु को पहुचाने के लिए कुछ दूर तक गया। उसने युगवाहु के प्रति स्नेह का वहुत ही प्रदर्शन किया युगबाहु के साथ जाने वाले सामन्तो पर युगवाहु की रक्षा का भार डाला और सेना को अपने कर्तव्य की ओर ध्यान दिलाया। यह करके वह आखो से आसू गिराकर मन मे प्रसन्न होता हुआ लौट आया।

युगवाहु चला। उसके साथ कुछ सामन्त थे और विशाल सेना थी। इन सवसे वढकर उसको नीति–धर्म का साथ प्राप्त था। यद्यपि वह विरोधियो का दमन करने जा रहा था, फिर भी उसकी भावना यही थी कि मेरे द्वारा नीति और धर्म का उल्लघन न हो। उसने अपनी सेना को इस वात के लिए विशेष रूप से सावधान किया था कि किसी निरपराधी व्यक्ति को कदापि न सताया जावे अपनी सत्ता के वल से किसी की कोई चीज न ली

जाये न किसी की कोई हानि ही की जाये। जो लोग हथियार लेकर सामने आवे उनसे युद्ध करने के सिवा किसी भी व्यक्ति को किचित् भी कष्ट न होने दिया जाये।

युगबाहु इस बात का बहुत ध्यान रखता था कि मेरी सेना आज्ञा के विरुद्ध आचरण न करे। वह अपनी आज्ञा का पालन बडी कठोरता से करवाता। सेना सहित युगबाहु अपने राज्य की सीमा पर पहुचा। जो लोग विद्रोही बन बैठ थे उन लोगो को मालूम हुआ कि युवराज युगबाहु विशाल सेना लेकर हमारा दमन करने के लिए आये है। उन लोगो ने विचार किया कि यदि हम लोग युवराज के साथ युद्ध करेगे तब भी हमारी जीत नही हो सकती और उस दशा मे हमको अपने प्राण खोने होगे या युवराज के हाथ बन्दी होकर अधीनता स्वीकार करनी पडेगी। ऐसी दशा मे धन–जन की हानि करवाने से क्या लाभ है ! इसके सिवाय जब हम लोग युवराज से युद्ध करेगे तब वे हमसे अवश्य ही रुष्ट हो जाएगे और इस कारण हम लोग युवराज की उस कृपा से भी वचित रहेगे जो अभी प्राप्त हो सकती है। इसलिए यही अच्छा है कि हम बिना युद्ध किये ही युवराज से सधि कर ले और उनकी अधीनता स्वीकार कर ले। हमारी कुशल इसी मे ही है।

इस प्रकार विचार कर विद्रोहियो ने युवराज से सधि–चर्चा प्रारम्भ कर दी। युवराज युगबाहु ने सोचा कि जब बिना युद्ध किये ही विद्रोही अधीनता स्वीकार करने को तैयार हैं, तब युद्ध, रक्तपात करने की क्या आवश्यकता है? ऐसा करना तो महान् पाप होगा। इसलिए यही अच्छा है कि विद्रोहियो के प्रस्तावानुसार उनसे सधि कर ली जावे। इस प्रकार विचार कर, युवराज ने सधि का सदेश लाने वाले दूत से कहा– यदि वे विद्रोही अपने दुष्कृत्यो के लिए पश्चात्ताप करके क्षमा मागे, भविष्य मे विद्रोह न करने और प्रजा को कष्ट न देने का वचन दे तथा महाराज मणिरथ की अधीनता स्वीकार करके उनकी आज्ञा पालन करने का विश्वास दिलावे एव पीडित प्रजा को सतुष्ट कर दे तो उन लोगो से सधि की जा सकती है। विद्रोहियो को ये बाते स्वीकार हो, तब तो वे मेरे सामने नि शस्त्र हो उपस्थित हो, अन्यथा शस्त्र धारण करके युद्धक्षेत्र मे अपना पराक्रम दिखावे।

सधि कराने के लिए जो दूत आया था उसने विद्रोहियो को युवराज का कथन सुनाया। विद्रोहियो के लिए युवराज का कथन मानने के सिवा कोई दूसरा उपाय ही न था। इसलिए वे लोग नि शस्त्र होकर युवराज के सन्मुख उपस्थित हुए। उन्होने युवराज को अभिवादन कर मूल्यवान चीजे भेट

कीं और अपने अपराधो के लिए क्षमा माग कर युवराज की सब शर्तें मान सधि कर ली। युवराज ने उन शरणागत विद्रोहियो के साथ क्षमा तथा उदारता का व्यवहार किया और उनसे कहा– तुम लोग प्रजा की रक्षा करो, हम तुम्हारी रक्षा करेगे और यदि तुम प्रजा को कष्ट दोगे, राज्य के प्रति विद्रोह करोगे तो तुम लोग भी सकुशल नहीं रह सकते।

उन लोगों ने युवराज की बातो को शिरोधार्य किया। युवराज ने इस तरह सभी विद्रोहियो से अधीनता स्वीकार करा ली और सीमा का समुचित प्रबध कर दिया। युवराज के व्यवहार से प्रजा भी बहुत आनदित हुई और शत्रु भी मित्र बन गये।

दुष्प्रयत्न

अपने किसी भी निश्चय पर वही व्यक्ति दृढ रह सकता है, जो किसी प्रकार के प्रलोभन मे न पडे जो सन्मुख आई हुई बडी से बडी निधि को ठुकरा दे बडे से बडे सुख की ओर लालायित न हो और जो निर्भय हो। जिसका मन किसी भी प्रलोभन से विचलित हो जाता है, प्रस्तुत अथवा अप्रस्तुत वस्तु एव सुख का लालच जिसके मन को हिला देता है, अथवा जो कष्ट सहन या पाणनाश का भय करता है वह व्यक्ति अपने निश्चय पर दृढ नहीं रह सकता। ऐसे व्यक्ति का एक दिन पतन अवश्यभावी है। ससार मे ऐसे व्यक्ति तो बहुतेरे निकलेगे जो थोडे ही भय या प्रलोभन से भ्रष्टप्रतिज्ञ हो गये, लेकिन ऐसे लोगो की सख्या कम ही निकलेगी जो भय या प्रलोभन के उपस्थित होने पर भी अपने निश्चय पर अटल रहे हो। यह बात दूसरी है किसी को भय या प्रलोभन का सामना ही न करना पडे और वह अपने निश्चय का अन्त तक पालन कर सके लेकिन ऐसे लोग ख्याति या महत्त्व नहीं पाते। यद्यपि वे लोग उन लोगो से तो अवश्य ही अच्छे माने जायेगे, जो किसी भी कारण से अपने निश्चय से गिर जाते हैं, परन्तु किसी विषम परिस्थिति का सामना किये बिना ही अपने निश्चय पर स्थिर रहने वालो की अपेक्षा उन लोगो का महत्त्व बहुत अधिक है, जो विषम परिस्थिति का सामना करके लोभ और भय से प्रभावित न होते हुए अपने निश्चय पर दृढ रहते हैं। जो लोग जितने बडे भय या प्रलोभन का सामना करके अपने निश्चय पर दृढ रहते हैं, वे उतने ही महान् माने जाते हें। महापुरुषो मे ऐसे ही लोगो की गणना होती है जो बडे से बडे प्रलोभन या भय का सामना होने पर भी अपने निश्चय पर अडिग रहते हैं। ऐसे ही लोगो का गुणगान किया जाता है ऐसे ही लोग आदर्श माने जाते हैं और ऐसे ही लोगो का अनुकरण करने के लिए कहा जाता है। अरणक और

कामदेव को आदर्श श्रावक क्यो माना जाता है? इसलिए कि वे बडे–बडे भय और प्रलोभन से विचलित नही हुए तथा अपने निश्चय पर स्थिर रहे।

मदनरेखा सती इसलिए मानी जाती है और इसलिए उसकी कथा गाई–सुनी जाती है कि उसके सामने महान् प्रलोभन और भय आया फिर भी वह अपने निश्चय पर दृढ ही रही, अपना सतीत्व नहीं त्यागा, सतीत्व त्यागने का विचार तक नहीं किया। मदनरेखा के सामने जैसा प्रलोभन आया, उसको जिस भय का सामना करना पडा और जैसी विषम स्थिति में पडना पडा वैसे प्रलोभन, भय या विषम परिस्थिति मे साधारण स्त्री के लिए अपने निश्चय पर दृढ रहना और अपने सतीत्व की रक्षा करना बहुत कठिन माना जाता है। लेकिन मदनरेखा ने उस कठिनाई का स्वागत किया उसको सहा और अपने सतीत्व को अक्षुण्ण रखा, इसी से वह आदर्श सती मानी जाती है। उसको किस भय, प्रलोभन या विषम परिस्थिति का सामना करना पडा, उसको अपनी प्रेयसी वनाने के लिए उसी के पति के ज्येष्ठ भ्राता मणिरथ न कैसा दुष्प्रयत्न किया, आदि बाते इस तथा अगले प्रकरण से ज्ञात होगी।

युगबाहु को युद्ध के लिए विदा करने के पश्चात् मणिरथ अपने महल मे आया। वह युगबाहु के चले जाने से बहुत प्रसन्न था लेकिन अब उसके सामने यह प्रश्न था कि मदनरेखा को कैसे प्राप्त करू? वह मदनरेखा को अपने वश मे करने एव अपनी कामपिपासा शात करने का उपाय सोचने लगा। अन्त मे उसने यह निश्चय किया कि इस कार्य मे दूती की सहायता लेनी चाहिए। दूती की सहायता के बिना मेरा उद्देश्य सफल होना असभव है।

मणिरथ ने एक दूती को बुलाया। दूती उपस्थित हुई। मणिरथ हस–हस कर उससे उधर–उधर की बाते करने लगा और प्रत्येक बात मे उसके प्रति सहानुभूति दिखाने लगा। कुछ देर तक ऐसा करने के पश्चात् मणिरथ ने दूती से कहा– मैने तुम्हे एक विशेष कार्य सोंपने के लिए बुलाया है। मेरा अनुमान है कि वह कार्य तुम्हारे सिवाय किसी ओर से नही हो सकता। उस कार्य को तुम्ही कर सकती हो परन्तु वह कार्य अत्यन्त गुप्त रखने योग्य हे। में तुम पर जिस कार्य का भार रखना चाहता हू, उस कार्य का किचित भी भेद किसी को प्रकट नहीं होना चाहिए। बोलो तुम मेरे द्वारा वताया गया कार्य कर सकोगी ओर उसका भेद किसी पर प्रकट तो न होने दोगी?

मणिरथ के कथन के उत्तर मे दूती ने कहा कि महाराज ! आप मुझ पर किसी भी कार्य का भार रखिय में वह कार्य अवश्य ही कर डालूगी। आप

इस ओर से निश्चिन्त रहिए। रही भेद प्रकट होने की बात, सो इस सबध मे भी आपको भय नही रखना चाहिए। चाहे प्राण भी जाये, लेकिन मैं आपके सौंपे गये कार्य का भेद कदापि प्रकट न करूगी। आप मुझ पर विश्वास रखिये।

मणिरथ– तुम ऐसे विश्वास के योग्य हो तभी मैंने तुम्हे यह कार्य सौंपने का विचार किया है। अच्छा बताओ, तुम क्या युवराज युगबाहु की पत्नी मदनरेखा को जानती हो?

दूती– जानती क्यो नही! यदि मदनरेखा को भी न जानूगी, तो किसे जानूगी। मदनरेखा बहुत सुन्दर है। वह अपने रूप से अप्सराओ को भी लज्जित करती है। वास्तव मे उसकी बराबरी करने वाली स्त्री अपने राजमहल मे तो क्या, सारे नगर मे भी नही है।

मणिरथ– हा वह ऐसी ही है। मैंने उसको जब से देखा है तब से वह मेरे ह्रदय मे बस गई है। मैं उसके बिना बेचैन हू। मैं चाहता हू कि उसको अपनी प्रेयसी बनाकर उससे प्रेम–सबध बना लू। बोलो, क्या तुम उसको मेरी बना सकती हो?

दूती– अवश्य! उसको तो क्या, आप जिसके लिये कहे, मैं उसी स्त्री को आपकी दासी बना सकती हू, फिर चाहे वह कैसी भी सती क्यो न हो ?

मणिरथ– बस तुम कार्य का भार अपने ऊपर समझो और बताओ कि इसके लिए तुमको क्या सहायता चाहिए?

दूती– महाराज! किसी स्त्री को वश मे करने के लिए सेना आदि की आवश्यकता तो होती नही, केवल उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण और खाद्य सामग्री की ही आवश्यकता हुआ करती है। इन वस्तुओ के द्वारा कोई भी स्त्री सहज ही आकर्षित की जा सकती है, और इनके लिए स्त्रिया अपने पति, पुत्र आदि सभी को त्याग सकती हैं। इसलिए आप इन्हीं चीजो की व्यवस्था करा दीजिए।

मणिरथ ने दूती के कथनानुसार सुदर व बहुमूल्य वस्त्राभूषणो एव भोज्य सामग्री की व्यवस्था करा दी। सब व्यवस्था देख कर दूती ने कहा अब मदनरेखा तो क्या, आप जिसे चाहे, वही स्त्री आपकी हो सकती है। इस प्रकार की सामग्री पर कौन स्त्री मोहित नही होगी और कौन आपकी प्रेयसी बनना न चाहेगी! मैं, अब मदनरेखा को अवश्य ही आपकी बना दूगी।

इस प्रकार कहकर दूती वह सब सामग्री लेकर मदनरेखा के महल की ओर चल पडी। उसे मणिरथ ने बहुत बडा प्रलोभन दिया था और

प्रोत्साहित बहुत किया था, इसलिए वह हृदय मे यही कामना करती जा रही थी कि किसी प्रकार मदनरेखा मणिरथ से प्रेम करना स्वीकार करले तो अच्छा, जिससे मुझे महाराज से अच्छा पुरस्कार प्राप्त होगा। उधर पति–वियोगिनी मदनरेखा पति की कुशल–कामना करती हुई परमात्मा के भजन–स्मरण मे लगी रहती और जैसे–तैसे अपना समय व्यतीत करती थी। वस्त्राभूषण आदि सामग्री लेकर दूती मदनरेखा के महल मे गई। मदनरेखा के सामने पहुचकर उसने थाली मे सजी हुई सब सामग्री मदनरेखा के सामने रख दी और कहा– महाराज ने यह सब सामग्री आपके लिए उपहार भेजी है। यह कहकर दूती मुस्कराती हुई चुप हो गई। सामग्री देखकर और दूती का कथन सुनकर मदनरेखा सोचने लगी की जेठजी ने आज तक तो मेरे लिए इस प्रकार की कोई साम्रगी नही भेजी, फिर आज ही वह सामग्री क्यो भेजी है? मदनरेखा के हृदय मे इस प्रश्न ने कुछ देर के लिए खलबली मचा दी परन्तु उसने इस प्रश्न को यह विचार कर हल किया कि इस समय पति बाहर गए हैं, इस कारण जेठजी को यह विचार आया होगा कि वियोगिनी और गर्भवती मदनरेखा को किसी प्रकार की उदासी या कमी न रहे और वह प्रसन्न रहे। इस विचार से ही उन्होने प्रसाद–रूप यह सामग्री भेजी होगी। इस प्रकार हृदय का समाधान करके उसने मणिरथ द्वारा भेजी गई सामग्री को स्वीकार कर लेना ही उचित समझा।

मदनरेखा ने वस्त्राभूषणादि सामग्री लाने वाली दूती से कहा कि तुम महाराज से मेरा प्रणाम कहना और कहना कि मैं आपकी इस कृपा के लिए बहुत आभार मानती हू तथा आपने मेरे लिए जो सामग्री भेजी है उसे मै प्रसाद रूप मानकर सिर पर धारण करती हू।

मदनरेखा ने दूती से इस प्रकार कहकर तथा कुछ पुरस्कार देकर उसे विदा किया और मणिरथ ने जो सामग्री भेजी थी वह अपने यहा रख ली। उसके हृदय मे किसी प्रकार का सदेह न था इस कारण यह बात उसकी कल्पना मे भी न आई कि जेठ के हृदय मे मेरे प्रति बुरी भावना है ओर उसकी भूमिका तेयार करने के लिए उसने यह सामग्री भेजी हे। मदनरेखा ने तो सरल स्वभाव से यही समझा कि मेरे पति बाहर गए हुए हें इस कारण मुझे किसी प्रकार की चिता न हो कितु प्रसन्नता रहे इसी उद्देश्य से जेठ ने यह सामग्री भेजी है। यह समझन के कारण उसने सरल भाव से वह सव सामग्री रख ली।

प्रसन्न होती हुई दूती मणिरथ के पास गई। उसन मणिरथ से कहा कि उद्देश्य सफल हो जावेगा। मदनरखा ने सब सामग्री प्रसन्नतापूर्वक रख

ली और मुझे यह पुरस्कार दिया है। यह कहकर उसने मदनरेखा का वह कथन भी सुनाया जो मणिरथ से कहने के लिए कहा था।

यद्यपि दूती ने मणिरथ से कहा कि अब मदनरेखा आपकी हो जावेगी। लेकिन मणिरथ चतुर था। इसलिए दूती द्वारा कही गई सब बाते सुनकर कहा– तू किस आधार से कहती है कि मेरा उद्देश्य सफल होगा? क्या तूने मदनरेखा से मेरा उद्देश्य कहा था? मणिरथ के इस कथन के उत्तर मे दूती ने कहा कि ऐसी बाते कही सहसा थोडे ही कही जाती हैं। मैने आपका उद्देश्य प्रकट नही किया फिर भी मदनरेखा ने आपके द्वारा भेजी गई सामगी रख ली। इससे यह स्पष्ट है कि वह भी आपको चाहती है और इस प्रकार आपका उद्देश्य पूर्ण हुआ है।

मणिरथ ने दूती से कहा कि सामग्री रख लेने मात्र से ऐसा समझना तेरी भूल है। मदनरेखा ने जो–कुछ कहा, उससे ऐसी कोई बात प्रकट नही होती जिससे यह माना जावे कि वह भी मुझसे प्रेम करती है। हो सकता है कि उसने मेरा उद्देश्य समझा ही न हो और सहज रीति से सब सामग्री रख ली हो। इसलिए तू ऐसी ही सामग्री लेकर एक बार फिर जा और बातो–बातो मे मदनरेखा के सामने मेरा उद्देश्य प्रकट कर दे। मेरा उद्देश्य सुनकर जो–कुछ कहेगी उसी से निश्चय हो सकेगा कि वह भी मुझे चाहती है या नही।

दूती ने मणिरथ की आज्ञा स्वीकार कर ली। मणिरथ ने फिर अच्छे–अच्छे वस्त्राभूषण एव खाद्य सामग्री की व्यवस्था करा दी। सब सामग्री लेकर दूती मदनरेखा के महल मे गई। उसने सब सामग्री पहले की तरह ही मदनरेखा के सामने रख दी और उसे कहा कि महाराज ने आपके लिए फिर से ये बहूमूल्य वस्त्राभूषण ओर उत्तम भोजन सामग्री भेजी है, आप यह सामग्री स्वीकार कीजिये।

दूती द्वारा पुन लाई गई सामग्री देखकर और दूती का कथन सुनकर मदनरेखा के मन मे कुछ सदेह हुआ। वह सोचने लगी कि अभी कुछ ही दिन हुए तब तो जेठ ने इतने वस्त्राभूषण और बहुत–सी खाद्य सामग्री भेजी ही थी फिर आज यह सामग्री और क्यो भेजी है? जेठ के यहा से अब तक इस प्रकार की सामग्री कभी आती नही रही है तथा इस तरह जल्दी–जल्दी भेट–उपहार आदि भेजने की प्रथा भी नही है। इसलिए जेठ का बार–बार सामग्री भेजना देखकर यह सन्देह होता है कि उनके हृदय मे किसी प्रकार की दुर्भावना है।

मदनरेखा के मन मे इस प्रकार का विचार तो आया, फिर भी उसने दूती के सामने ऐसी कोई बात प्रकट नहीं की, कितु उससे यही कहा– मेरे पति परदेश गये हैं, इसलिए मेरे को न तो वस्त्राभूषण अच्छे लगते हैं न खाना–पीना ही। जिसका पति परदेश गया हो, घर मे उपस्थित न हो, उस स्त्री को शृगार और अच्छे भोजन से बचते रहना ही उचित है। ऐसा करने पर ही वह स्त्री सदाचारिणी रह सकती है। मेरे पति भी अनुपस्थित हैं इसलिए इस नियम का पालन मुझे भी करना ही चाहिए। पति के वियोग के कारण मुझे इनमे से किसी भी चीज मे रुचि नहीं है। इसके सिवा महाराज ने पहले जो सामग्री भेजी थी वह अब तक पडी हुई है। इसलिए यह सब सामग्री वापस ले जाओ और महाराज से मेरा प्रणाम कहकर मेरी ओर से यह निवेदन कर देना कि अभी वह पहले वाली साम्रगी ही पडी हुई है। उस सामग्री के समाप्त हो जाने पर यदि आवश्यकता होगी तो मैं और सामग्री भेजने के लिए स्वय निवेदन करा दूगी। मैं पहले वाली सामग्री भी न रखती, परन्तु मैंने सोचा कि ऐसा करने से महाराज को दु ख होगा, इसलिए मैंने वह सामग्री रख ली। लेकिन अब इस सामग्री की अभी आवश्यकता नही है इसलिए इसे लौटा ले जाओ।

मदनरेखा का कथन सुनकर दूती ने सोचा कि यह अवसर महाराज का उद्देश्य प्रकट करने के लिए उपयुक्त है। इस तरह सोचकर दूती हस कर मदनरेखा से कहने लगी– आपको यह सामग्री भी रख लेनी चाहिए। यदि आप महाराज द्वारा भेजी गई यह सामग्री लौटा देगी तो महाराज को बहुत दु ख होगा। महाराज के हृदय मे आप के प्रति सीमातीत प्रेम है। आपको प्रसन्न करने के लिए ही महाराज ने पहले वाली और यह सब सामग्री भेजी ह। आप महाराज के हृदय मे ऐसी बस गई हें कि एक क्षण के लिए भी विस्मृत नहीं होती ओर महाराज आपके बिना अपना जीवन वैसा ही नि सार समझते हें जेसा नि सार आत्माविहीन शरीर होता हे। इसलिए आप महाराज पर प्रसन्न होइये उनकी कामना पूर्ण कीजिये, उनके हृदय को शाति प्रदान कर आप भी आनदित होइये ओर पटरानी बनकर सब प्रकार के सुख भोगती हुई अपना जीवन सफल बनाइये। महाराज आपसे इतना अधिक प्रेम करते हैं कि वे आपको अपना सर्वस्व समर्पण करने, आपको अपनी पटरानी बनाने ओर आपके आज्ञाकारी रहने मे अपना सोभाग्य मानते हैं। जब आप उनका प्रम–सदेश स्वीकार कर लगी तब उन्ह सीमातीत प्रसन्नता होगी। इसलिए

आप यह सामग्री लौटाइये मत, किन्तु इसे रख कर महाराज को उनका प्रेम–प्रस्ताव स्वीकार होने का परिचय दीजिये।

मदनरेखा दूती की सब बाते गम्भीरतापूर्वक सुनती रही। दूती की बातो से वह समझ गई कि जेठजी के हृदय मे मेरे प्रति बुरी भावना है और उस बुरी भावना को पूरी करने के लिए ही उन्होने पूर्व मे भी सामग्री भेजी थी तथा अब और सामग्री भेजी है। यह समझकर वह सोचने लगी कि जेठजी कुलीन और सज्जन पुरुष हैं। उनके विरुद्ध अब तक ऐसी कोई घटना न तो देखी गई है और न ही सुनी गई है। उनके हृदय मे सहसा इस प्रकार का कुविचार कैसे उत्पन्न हुआ, यह समझ मे नही आता। मुझे इस समय जेठजी के विरुद्ध कुछ नही कहना चाहिए किन्तु इस दूती को ही डरा देना चाहिए जिससे यह फिर कभी आने का साहस भी न करे और इसके द्वारा जेठजी को भी ज्ञात हो जाय कि मदनरेखा द्वारा उनकी दुराशा पूर्ण नही हो सकती।

दूती का कथन समाप्त होने पर मदनरेखा ने अपनी दासी को तलवार लाने की आज्ञा दी। मदनरेखा की आज्ञा सुनकर दूती इस विचार से चकराई कि यह तलवार क्यो मगवा रही है! उसने मदनरेखा से पूछा आपने तलवार क्यो मगवाई? मदनरेखा ने उत्तर दिया– तुझे दण्ड देने के लिए जिससे फिर कभी तेरे द्वारा इस प्रकार का कार्य न हो और मेरे जेठ जैसे पवित्र पुरुष को बुरे मार्ग पर न ले जा सके तथा न किसी स्त्री को सतीत्व से गिराने का प्रयत्न ही कर सके। मदनरेखा दूती से इस प्रकार कह रही थी कि इतने ही मे उसकी दासी ने तलवार लाकर उसके हाथ मे दे दी। मदनरेखा ने तलवार खोलकर दूती को बताते हुए उसे कहा कि परमात्मा का स्मरण कर ले ! मैं अभी तेरा सिर धड से अलग किये देती हू। यदि तुझे अपने प्राण प्रिय हैं तो तू यहा से भाग जा और फिर कभी यहा आने का साहस भी मत करना।

चण्डिका रूपधारिणी मदनरेखा से डरकर दूती अपने प्राण बचाने के लिए वहा से भागी। वह भय से कापती हुई मणिरथ के पास गई। मणिरथ उसकी प्रतीक्षा मे यह आशा लगाए बैठा था कि मदनरेखा ने आपके साथ प्रेम करना स्वीकार कर लिया ऐसा समाचार दूती के मुख से सुनने को मिलेगा। किंतु उसे भय से कापती हुई और अस्त–व्यस्त दशा मे देखकर मणिरथ आश्चर्यचकित रह गया। उसने दूती से पूछा– तू इतनी डरी हुई और घबराई हुई क्यो है? दूती ने उत्तर दिया– महाराज! कुछ पुछिए मत! मदनरेखा साक्षात् राक्षसी है। वह तो तलवार से मेरा मस्तक ही काट डालती लेकिन उसने दया करके मुझे जीवित आने दिया। मैं उसके यहा कदापि नही

जाऊगी। उसका आज का रूप देखकर मैं तो आपसे भी यही कहती हू कि आप उसका नाम छोडिए और उसको पाने की आशा मत करिए।

मणिरथ ने दूती को सात्वना दी और उसे विदा कर दिया। फिर वह सोचने लगा कि मदनरेखा केवल सुदरी ही नहीं है किंतु वीर–हृदया और चतुर भी हे। उसने दूती को तलवार बताकर अपनी वीरता का परिचय दिया है और मेरे प्रति प्रेम होने पर भी उसने दूती को इसलिए डरा दिया कि वह मेरे और उसके सबध के बीच मे दूती को नही रखना चाहती, वह चतुर है। उसके हृदय मे यदि मेरे प्रति प्रेम न होता तो वह मेरे द्वारा भेजी गई सामग्री न रखती। लेकिन उसका सामग्री रखना इस बात को प्रकट करता है कि उसके हृदय मे मेरे प्रति प्रेम है, परन्तु वह इस प्रेम–सबध का रहस्य किसी तीसरे को मालूम नहीं होने देना चाहती। वास्तव मे उसका ऐसा करना उचित भी है। जब कोई भेद तीसरे आदमी को मालूम होता है तब वह किसी–न–किसी दिन प्रकट भी हो जाता है। इसलिए यह उचित होगा कि मैं स्वय मदनरेखा से मिलकर उसके हृदय के भाव जानू। अपना काम बनाने के लिए स्वय ही जाना चाहिए। इसके सिवाय जब मैं स्वय जाऊगा तब मदनरेखा मेरा प्रेम–प्रस्ताव अस्वीकार भी नही कर सकेगी। उसको किसी प्रकार का भय या सकोच होगा तो मेरे जाने से वह भी मिट जाएगा। इस प्रकार प्रत्येक दृष्टि से मदनरेखा के पास मेरा जाना ही ठीक होगा।

मणिरथ अपने हृदय मे इसी प्रकार की उधेडबुन बुनता रहा। उसको यह भी विचार आ रहा था कि युगबाहु ने विद्रोहियो को अधीन कर लिया हे और वह शीघ्र ही आने वाला हे। इसलिए मुझे मदनरेखा से जल्दी ही मिल लेना चाहिए। युगबाहु के आने से पहले ही यदि मैंने मदनरेखा को अपनी बना लिया तब तो वह मेरी बन ही जावेगी अन्यथा युगबाहु के आ जाने के बाद मेरा उद्देश्य सफल होना कठिन हो जायेगा और फिर बहुत प्रयत्न करने पर भी युगबाहु की अनुपस्थिति का ऐसा अवसर हाथ नहीं आएगा। इसके सिवाय, सम्भव है कि युगबाहु के आने पर मदनरेखा सभी बाते प्रकट कर दे। ऐसा हुआ तो मे मदनरेखा को भी प्राप्त न कर सकूगा और युगबाहु को अपना शत्रु भी बना लूगा। परन्तु जब मदनरेखा युगबाहु के आने से पहले ही मेरी हो जायेगी तब वह युगबाहु के सामने मेरे विरुद्ध कुछ न कहेगी और उस दशा मे म युगबाहु को सहज ही नष्ट करके अपना मार्ग निष्कटक बना लूगा।

जिस प्रकार जुआरी को अपना ही दाव सूझ पडता है उसी प्रकार मणिरथ को भी सब बात अपने ही अनुकूल जान पडती थी। बहुत सोच–विचार

कर उसने रात के समय मदनरेखा के महल मे जाने का निश्चय किया। उसने मदनरेखा के महल मे पहुचने का मार्ग सोच लिया और यह भी पता लगा लिया कि मदनरेखा किस जगह सोती है।

आधी रात के समय मणिरथ मदनरेखा के महल की ओर चला। वह किसी निश्चित मार्ग से मदनरेखा के महल मे उपस्थित हो गया और मदनरेखा के शयनागार के समीप भी पहुच गया। उसने खिडकी द्वारा देखा कि मदनरेखा शैया पर सोई हुई है। अपने को इच्छित स्थान पर पहुचा हुआ पाकर मणिरथ पसन्न हुआ और खिडकी मे से मदनरेखा के लिए कहने लगा– हे सुन्दरी! हे चन्द्रवदनी! हे मनमोहिनी! उठो! यह तुम्हारा प्रेमी तुम्हारी सेवा मे उपस्थिति हुआ है।

यद्यपि उस समय मदनरेखा सो रही थी, परन्तु वह ऐसी बेसुध नही सोती कि जो मणिरथ के यह कहने पर भी नीद न खुलती। जिस प्रकार चतुर स्त्रिया किचित् आहट होते ही जाग उठती हैं, उसी प्रकार मदनरेखा भी मणिरथ की आवाज सुनकर जाग पडी और उधर--उधर देखती हुई सोचने लगी कि यह कौन बोल रहा है? मदनरेखा को जागी हुई देखकर मणिरथ के हृदय मे पसन्नता की लहर दौड गई। वह सोचने लगा कि बस, अब क्या है । वह जाग तो गई ही अब बस किवाड खोलकर मुझे बुला लेगी और मैं उसके शरीर के स्पर्श का आनद लेकर अपनी चिरकालीन अभिलाषा पूर्ण कर सकूगा। इस पकार के विचारो से प्रसन्न होता हुआ मणिरथ मयणरेहा से कहने लगा हे मृगाक्षी! तुम चकित क्यो हो? दूसरा कोई नही तुम्हारा मणिरथ हू, इसलिए तुम निर्भय रहो और मुझे अपना प्रेमपात्र बनाओ।

मणिरथ का यह कथन सुनकर मदनरेखा जान गई कि ये मेरे जेठजी हैं जो मेरे सौन्दर्य पर मुग्ध होकर अपनी कामना पूर्ण करने के लिये रात के समय यहा आये है। मदनरेखा के स्थान पर यदि कोई दूसरी स्त्री होती तो वह अपने रूप सौन्दर्य पर अभिमान करती हुई मणिरथ की भर्त्सना करने लगती अपना कोई अपराध न मानती लेकिन बुद्धिमान लोग प्रत्येक अनिष्ट घटना के लिए अपने को ही अपराधी मानते हैं और अपना ही दूषण देखते है। इसके अनुसार मदनरेखा भी यह जानकर कि ये मेरे जेठ है मन ही मन स्वय को धिक्कारने लगी और अपने रूप–सौन्दर्य की निन्दा करने लगी। वह कहने लगी कि मेरे इस रूप–सौन्दर्य ने मेरे पवित्र जेठ के हृदय मे भी विकार

उत्पन्न कर दिया है और इन्हे कामान्ध बना दिया। मेरे पति के प्रति इनके हृदय मे इतना स्नेह था कि इन्होने अपने पुत्र के अधिकार का राज्य भी उन्हे दे दिया, परतु मेरा यह रूप–सौन्दर्य स्नेहरूपी दूध मे खटाई की तरह हुआ और इसी से ये बन्धु–स्नेह को भूलकर तथा न्याय–नीति का मस्तक कुचलकर अपनी अनुज–वधू को उप–पत्नी बनाने के लिए तैयार हुए हैं, जो इनकी कन्या के समान है। धिक्कार है मेरे इस रूप–यौवन को। यदि मैं सुन्दरी न होती, किन्तु कुरूपा होती तो ये इस तरह का घोर कुकर्म करने के लिए क्यो उद्यत होते। समझ मे नहीं आता कि इनमे यह कुमति कहा से आ गई। ये वीर हैं और मस्तक कटने के समय तक भी किसी के सामने दीनता नही बता सकते, परन्तु काम–विकार की प्रेरणा से ये इस अर्द्धरात्रि के समय चोर की भाति यहा आये हैं तथा एक तुच्छ स्त्री के सामने इस प्रकार की दीनता दिखा रहे हैं।

अपने रूप–सौन्दर्य को इस प्रकार धिक्कार कर फिर मदनरेखा सोचने लगी कि जेठजी इस समय कामाध होकर आये हैं। ये प्रत्येक सभव उपाय से मेरा सतीत्व नष्ट करना चाहेगे। मुझे अपने सतीत्व की रक्षा करनी चाहिये। यदि मैं सिपाहियो को आवाज देकर इन्हे पकडा दूगी तो यह बात लोगो मे फेल जाएगी तथा बहुत–से लोग यहा एकत्र हो जायेगे और ये मेरे लिए यहा आए, यह जानकर लोग इन्हे धिक्कारेगे। जिससे इन्हे लज्जित होना पडेगा तथा साथ ही कुल को भी कलक लगेगा। इसके सिवा सम्भव है कि पहरेदारो के आने से पूर्व ही ये उसी मार्ग से भाग जाये जिस मार्ग से छिपकर यहा आये हैं। यदि ऐसा हुआ तो मेरा हो–हल्ला करना व्यर्थ होगा और मेरे लिए लोग न मालूम क्या–क्या बाते कहे। साथ ही, यह भी सम्भव है कि इस समय इनमे जो कुमति है वह समझाने और इनके स्वरूप आदि का ज्ञान कराने से मिट जाये तथा इनमे सुमति आ जाये। ऐसी दशा मे केवल लोगो को एकत्रित करके इनका अपमान कराने तथा इनके मस्तक पर सदा के लिए अपयश का टीका लगाने से क्या लाभ? बुद्धि बडी चचल होती है। जिनकी बुद्धि स्थिर हो गई है, वे लोग तो इस ससार–व्यवहार से ही निकल जाते हैं परन्तु जिनकी बुद्धि की चचलता अभी समाप्त नही हुई उनकी बुद्धि कभी अच्छी हो जाती है कभी खराब। जिनकी बुद्धि ऐसी चचल है उनकी

कुबुद्धि सुबुद्धि मे भी बदल सकती है। अत मुझे इन्हे समझाने का मार्ग ही अपनाना चाहिए और अपयश से बचना चाहिये। पात्र के अनुसार ही दण्ड देना चाहिए। ये भले आदमी हैं इसलिए मेरा समझाना ही इनके लिए दण्ड होगा।

मदनरेखा ने मणिरथ को समझाने का निश्चय किया। वह जब तक विचार करती रही तब तक मणिरथ उससे किवाड खोलने और स्वय से प्रेम करने के लिए कहता रहा तथा उसे अनेक प्रकार के प्रलोभन भी देता रहा, परन्तु मदनरेखा उसकी किसी भी बात पर ध्यान न देकर अपने कर्तव्य का विचार करती रही। कर्तव्य का निश्चय कर चुकने के पश्चात् वह मणिरथ से प्रिय शब्दो मे कहने लगी– श्रद्धेय जेठजी! आप राजा हैं और मेरे पिता–तुल्य हैं, इसलिये आपको मेरी खबर लेना सर्वथा उचित ही है। किंतु इसके लिए आपने इतनी रात के समय कष्ट क्यो किया? आपकी कृपा से मैं आनदपूर्वक हू इसलिए आप पधारिये और आपको जो कष्ट हुआ उसके लिए मुझे क्षमा प्रदान कीजिए। कदाचित् आप भूल से यहा आ गए हो, आपको स्मरण न रहा हो कि यह भवन किसका है, तो मैं आपसे निवेदन करती हू कि यह भवन आपके लघुभ्राता का है और मैं आपकी अनुज–वधू यहा रहती हू। आप मेरे श्रेष्ठतम जेठ हैं, बल्कि मेरे पति आपको पिता–तुल्य मानते हैं, इसलिए आप मेरे श्वसुरस्वरूप हैं। इस असमय मे आपका यहा आना और ठहरना मर्यादा–विरुद्ध है, इसलिये आप यहा से प्रस्थान कर दीजिए।

मदनरेखा ने जो–कुछ कहा था, वह ठीक होने के साथ ही मणिरथ की प्रतिष्ठा बचाने वाला भी था। उसके कथन से मणिरथ को यह समझ जाना चाहिए था कि मदनरेखा ऐसी स्त्री नहीं है जो मेरे साथ दुराचार मे प्रवृत्त हो। लेकिन मणिरथ मे तो ऐसी कुमति छाई हुई थी कि जिसके कारण उसे मदनरेखा का कथन व्यर्थ–सा जान पडा। उसने मदनरेखा के कथन पर न तो ध्यान दिया तथा न ही विचार किया। किंतु वह मदनरेखा से कहने लगा– प्रिये ! मैं तुमसे प्रेम की भिक्षा लेने के लिए आया हू, इसलिए तुम इस तरह की बाते कहकर मुझे लौट जाने के लिए न कहो, बल्कि मुझे स्वीकार करके मेरी कामना पूर्ण करो। मैंने जो वस्तु–सामग्री भेजी थी उससे मैं यह समझ गया हू कि तुम्हारे हृदय मे मेरे प्रति क्या स्थान है, फिर भी तुम इस तरह की बाते क्यो करती हो यह समझ मे नही आता। तुमने उस दूती को भय दिखा कर चतुराई का ही काम किया है। वास्तव मे मेरा और तुम्हारा प्रेम–सवध

किसी तीसरे को ज्ञात नहीं होना चाहिये। मैं तुम्हारी चातुरी एव वीरता पर मुग्ध हू। मैं तुम्हारे पास जिस आशा से आया हू, मेरी वह आशा तुम पूर्ण करो। मुझे निराश न करो, न विलम्ब ही करो। तुम्हारा विलम्ब करना मेरे लिए असह्य हो रहा है।

मणिरथ के कथन के उत्तर मे मदनरेखा ने कहा– श्रद्धेय जेठजी ! आपके मुखारविन्द से इस तरह की वाते शोभा नही देती। आपका यह कर्तव्य नही है कि आप कन्या के समान मानी जाने वाली अनुज–वधू को धर्मभ्रष्ट करने का प्रयत्न करे, उसे ऐसी वाते कहे और उससे सहगमन करना चाहे। आप मे ऐसे कुकृत्य मे प्रवृत्त होने की कुमति कहा से आ गई? आप ऐसी वातो को त्यागिये। मुझसे अपनी बुरी कामना पूर्ण होने की आशा मत रखिये। मैं इस तरह का कुकर्म करके अपने पवित्र जीवन को दूषित नहीं वना सकती। मैं आपको अपना यह निर्णय स्पष्ट सुना देती हू कि आप तो क्या वल्कि साक्षात् इन्द्र भी आकर मुझे पथ–भ्रष्ट करना चाहे तो मैं उससे भी उसी तरह घृणा करूगी, जिस तरह मल–मूत्र से की जाती है। इसलिए आप अपने स्थान पर जाइये। ऐसा करने मे ही आपकी तथा मेरी प्रतिष्ठा है। आप कितना भी प्रयत्न करे, मदनरेखा आपके हाथ नही आयेगी बल्कि अपयश और कलक ही हाथ लगगे। आपसे अपना सतीत्व वचाने के लिए मुझे कोई दूसरा मार्ग अपनाना पडा और उस प्रयत्न मे लोगो को आपकी दुर्मति का हाल ज्ञात हो गया तो यह वात केवल आप ही का गौरव नष्ट नही करेगी किन्तु आपके पूर्वजो के धवल यश को भी कलकित कर डालेगी। आप मेरे कथन पर भली–भाति ध्यान दीजिये ओर समझ लीजिए कि आपकी, आपके कुल की मेरी ओर नीति–धर्म की रक्षा इसी मे है कि आप अपनी काम–वासना पर सयम करे मेरे साथ दुराचार करने की आशा त्याग दे।

मदनरेखा के इस कथन का भी मणिरथ पर कोई प्रभाव न पडा। वह मदनरेखा की वात समाप्त होन पर कहने लगा– मदनरेखा ! मैं तुम्हे क्या चाहता हू, तुम यह समझने मे भूल कर रही हो। तुम समझती हो कि में तुम्हे तुच्छ विषय–वासना की पूर्ति के लिए चाहता हू, परन्तु वात इसके विपरीत है। में तुम्हे तुच्छ विषय–भोग के लिए नही चाहता वल्कि राज्य ओर प्रजा की हित–कामना स ही म तुम्हे अपनी सहचारिणी वनाना चाहता हू। मेरी दृष्टि म तुम असाधारण बुद्धिमती हा। तुम जेसी बुद्धिमति स्त्री का सहयोग

मिलने पर मैं इस राज्य को आदर्श और प्रजा को सुखी--समृद्ध बनाने मे समर्थ हो सकूगा। अब तक मुझे तुम जैसी स्त्री की सहायता प्राप्त नही हुई थी, इसी से यह राज्य अस्त--व्यस्त है और यहा की प्रजा भी पूरी तरह सुखी नही है। इसलिए तुम मेरी सहचारिणी बन कर अपना सहयोग प्रदान करो, जिससे मैं राज्य और प्रजा की उन्नति कर सकू। मैं तुम्हे अपनी पटरानी बनाना चाहता हू। राज्य का स्वामित्व तुम्हे अर्पित कर जीवन–भर तुम्हारा आज्ञाकारी रहूगा। तुम मेरे कथन पर विश्वास रखो किसी भी प्रकार सन्देह, सकोच न करो। रही नीति--धर्म की बात सो नीति–धर्म का सार परोपकार करना और प्रजा को सुख देना ही है। अपना सबध इसी के लिए होगा तथा इस प्रकार अपने धर्म नीती–धर्म का पालन ही होगा उल्लघन न होगा।

मणिरथ ने मदनरेखा को इस प्रकार राज्य का प्रलोभन दिया, परन्तु मदनरेखा ऐसी न थी कि जो राज्य के लोभ मे अपना सतीत्व नष्ट करने के लिए तैयार हो जाती। उसने मणिरथ से कहा– जेठजी आप कैसी बाते कह रहे हैं ! आप मुझे राज्य का लोभ देते हैं, लेकिन पतिव्रत धर्म के सामने मैं ससार की समस्त सम्पदा को तुच्छ एव नगण्य मानती हू। यहा तक कि मैं पतिव्रत धर्म की रक्षा के लिए अपना जीवन त्यागने मे भी सकोच नही कर सकती। आपका यह कथन भी असगत है कि मै राज्य और प्रजा की उन्नति के लिए ही तुम्हारे साथ सबध जोडना चाहता हू। कही दुराचारी स्त्री–पुरुष भी परोपकार या जनता का हित कर सकते हैं ऐसा समझना ही भूल है। इसके सिवा आप मेरे सहयोग और मेरी बुद्धिमत्ता से राज्य की उन्नति करना चाहते हैं, उस राज्य का उत्तराधिकारी आपने अपने छोटे भाई को बना दिया है और आपके छोटे भाई को मेरा सहयोग प्राप्त है ही। इसलिए यदि मेरी बुद्धिमत्ता से राज्य की उन्नति हो सकती होगी तो अपने–आप हो जाएगी। इसके लिए इस प्रकार के अनुचित सबध की क्या आवश्यकता है ? यदि आप अपने जीवनकाल मे ही मेरी असाधारण बुद्धि द्वारा राज्य को उन्नत देखना चाहते हैं तो जिन्हे मेरी बुद्धि का सहयोग प्राप्त है उन्हे, अर्थात् अपने छोटे भाई पर राज्य का भार डाल दीजिये और आप राजकार्य से निवृत्त हो जाइये। ऐसा करने से आपको ज्ञात हो जायगा कि मेरी बुद्धि के विषय मे आपका अनुमान सही है या गलत! आप अपनी बातो पर मुझे विश्वास करने के लिए कह रहे हैं परन्तु आपके कथन पर कौन मूर्ख विश्वास करेगा? एक ओर तो

आपने मेरे पति को युवराज बनाया है और दूसरी ओर आप मुझे अपनी उप–पत्नी बना कर पटरानी पद देना चाहते हैं। ये दोनो बाते परस्पर विरोधी हैं। ऐसी परस्पर विरुद्ध बातो को जानकर भी कोई बुद्धिमान आपकी बातो पर कैसे विश्वास कर सकता है? इसी प्रकार आपने अपने विवाह के समय मेरी जेठानी से यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम्हारे सिवा सब स्त्रियो को माता और बहन के समान समझूगा। इस प्रतिज्ञा द्वारा आपने जिन स्त्रियो को त्यागा, उन्हीं मे से मैं एक हू। लेकिन आज आप अपनी उस प्रतिज्ञा को तोडकर कौए, कुत्ते की भाति त्यागी हुई वस्तु अपनाने के लिए तत्पर हुए हैं। तब आपके कथन पर कोई विश्वास कैसे करेगा? पिता–तुल्य जेठजी। आपकी बातो मे कोई सार नहीं है। मैं आपकी बातो के भुलावे मे नहीं आ सकती, न ही अपनी प्रतिज्ञा के विरुद्ध किसी पर–पुरुष को पति बना सकती हू। आप भी अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण करके उस पर दृढ रहिए, प्रतिज्ञा–भ्रष्ट होकर अपयश न लिजिए, न कुल को कलकित कीजिए। इस प्रकार का अपयश लेने और कुल को कलक लगाने की अपेक्षा मर जाना श्रेष्ठ है। इसलिए आप अपनी दुर्वासना को हटाकर अपने महल मे पधारिये तथा व्यर्थ मे श्रम न कीजिए।

मदनरेखा के इस तरह समझाने पर भी मणिरथ की भावनाओ पर कोई प्रभाव नहीं पडा, न वह वहा से हटा ही, बल्कि जिस प्रकार दूध पिलाने से साप का विष बढता है, उसी प्रकार मदनरेखा का कथन मणिरथ की दुर्भावना बढाने वाला ही सिद्ध हुआ। मदनरेखा की बाते सुन–सुन कर वह उस पर अधिकाधिक आसक्त होता जा रहा था। मदनरेखा ने उसको जो उपदेश दिये, उन्हे सुन कर भी मणिरथ ने अपना प्रयास नही त्यागा। उसने मदनरेखा से बहुत–कुछ कहा–सुना, बहुत अनुनय–विनय की, सीमातीत नम्रता एव दीनता भी दिखाई परन्तु मदनरेखा के सामने उसकी सब बाते व्यर्थ सिद्ध हुई। मदनरेखा ने उसकी प्रत्येक बात का ऐसा उत्तर दिया कि जिससे उस बात के विषय मे और कहने का स्थान ही नही रहता था। जब मणिरथ अपने सब प्रयासो मे विफल रहा तब उसने छल–कपट एव बल–प्रयोग का सहारा लेने का निश्चय किया। वह मदनरेखा से कहने लगा– तुम्हारे मधुर एव तलस्पर्शी उपदेश से मेरे हृदय की भावना बदल गई। मुझे अपने कर्तव्याकर्तव्य का भान हो गया है। इसलिए मैं अपने महल म लौट रहा हू।

किन्तु एक बार द्वार खोलकर तुम मुझे अपने चन्द्रमुख का दर्शन मात्र करा दो। बस, तुम्हारा दर्शन करके मै चला जाऊगा।

मणिरथ सोचता था कि मदनरेखा मेरे कपट वाक्य मे फस कर किवाड खोल दे तो मेरा उद्देश्य सफल हो जायेगा। जब इसके शयनागार मे जाने का मार्ग खुला होगा तब मैं भीतर जाकर बलपूर्वक मदनरेखा को पकड कर अपना मनोरथ पूर्ण कर लूगा। फिर यह मेरे हाथ से कदापि नही बच सकेगी। इस प्रकार सोच कर मणिरथ ने मदनरेखा से किवाड खोलकर दर्शन देने के लिए कहा परन्तु मदनरेखा ऐसी भोली–भाली स्त्री नही थी, जो कामान्ध मणिरथ की बात पर विश्वास करके किवाड खोल देती। उसने मणिरथ से कहा– आप यह कपटजाल किसी दूसरी जगह फेलाइये। यहा आपका यह प्रपच नही चल सकता। मैं इस समय कदापि किवाड नहीं खोल सकती। खेद की बात तो यह है कि मैने आपको इतना समझाया, फिर भी आप नही समझे! मै आपसे फिर कहती हू कि आप मुझे या अन्य पर–स्त्री को अपनाने का प्रयत्न मत कीजिये। रावण, प्रद्मोत्तर और कीचक का विनाश इसी कारण हुआ था कि उन्होने पर–स्त्री को अपनी बनाने का प्रयत्न किया था। इसलिए आप अपनी और अपने परिवार की कुशलता के लिए अपने स्थान को लौट जाइये। आप इसी मे अपना कल्याण मानिये कि आपकी दुर्भावना को जानकर भी मैंने आपके प्रति न तो कटुशब्दो का ही प्रयोग किया है तथा न ही आपकी प्रतिष्ठा को मिट्टी मे मिलाने के लिए पहरेदार या और किसी को पुकारा है। मै भविष्य के लिए भी आपको यह विश्वास दिलाती हू कि इस घटना का किसी को जिक्र तक नही करूगी।

मदनरेखा ने इस प्रकार मणिरथ से जाने के लिए बहुत–कुछ कहा, परन्तु वह वहा से नही हटा और मदनरेखा से किवाड खोलने के लिए आग्रह करता रहा। उसे वहा से हटाने के लिए दिया गया अपना सारा उपदेश व्यर्थ और मणिरथ का हठाग्रह देखकर मदनरेखा वहा से गुप्त मार्ग से अपनी सासू यानी मणिरथ और युगबाहु की माता के शयनागार चली गई। उसने सोचा कि जब मैं सासूजी को बुला लाऊगी तब ये यहा से चले जायेगे, मैं भी निर्भय हो जाऊगी और कुल की प्रतिष्ठा को भी कलक नही लगेगा। सासू के शयनागार मे पहुच कर मदनरेखा ने किसी प्रकार की हा–हू नही करके धीरे–से सासूजी को जगाया। युगबाहु की पत्नी को देख कर युगबाहु की माता

को बहुत आश्चर्य हुआ। उसने मदनरेखा से पूछा– पुत्रवधू–तुम इस समय यहा कैसे आई हो? कहीं अकेली होने के कारण डर तो नहीं गई या कोई अनहोनी तो नही हो गई? सासूजी के इस प्रश्न के उत्तर मे मदनरेखा ने मणिरथ के विरुद्ध कुछ न कहकर यही कहा कि मैं न तो भयभीत हू और न कोई दूसरी घटना ही घटी है। मैंने आपको इस समय इस कारण कष्ट दिया है कि आपके ज्येष्ठ पुत्र भूलकर या और किसी कारण से मेरे महल मे आ गये हैं। मेरे लिए वे आदरणीय हैं, इस कारण मैं कुछ कह नहीं सकती और उनसे कुछ कहने मे लज्जा भी होती है। इसलिए आप चलकर उन्हे समझा दीजिए, जिससे वे मेरे महल से चले जायें।

मदनरेखा का कथन सुनकर मणिरथ की माता मदनरेखा के साथ उसके शयनागार की ओर चली। मार्ग मे अनेक प्रकार के विचार आ रहे थे। वह सोचती थी कि मणिरथ रात के समय मदनरेखा के महल मे क्यो आया? क्या वह अपना महल भूल गया है और यहा चला आया है अथवा उसके हृदय मे कोई दुर्भावना आ गई है जिससे वह यहा आ गया। किसी भी कारण आया हो, इस समय मणिरथ का मदनरेखा के महल मे आना सर्वथा अनुचित है और इस कारण मदनरेखा मणिरथ के विरुद्ध बोल सकती थी अथवा हो–हल्ला करके लोगो को मणिरथ के इस अनुचित कार्य से परिचित करा सकती थी। लेकिन यह कितनी बुद्धिमती व सुशीला है कि इसने न तो हल्ला करके कुल की प्रतिष्ठा को ही नष्ट किया और न ही मणिरथ के विरुद्ध ही कुछ कहा। वास्तव मे एक सच्चरित्र कुलवधू ऐसी ही होनी चाहिए।

इस प्रकार विचार करती हुई मणिरथ की माता मदनरेखा के महल मे पहुची। उसने देखा कि मणिरथ वहा खडा है और उसकी दशा बडी अस्त–व्यस्त तथा आखे विकार से भरी है। मणिरथ की यह दशा देखकर उसकी माता को दु:ख भी हुआ ओर साथ ही आश्चर्य भी। वह अपने मन मे कहने लगी कि मणिरथ यहा दुर्भावना से प्रेरित होकर ही आया है और इस कारण इसने मदनरेखा को प्राप्त करने के लिए सब प्रयत्न भी किया होगा, लेकिन मदनरेखा एक सती भी हे जो मणिरथ के प्रणयजाल मे नही फसी। एक राजा के साथ अपना गुप्त सबध जोडने का अवसर खोने वाली स्त्री विरली ही हो सकती है। मदनरेखा के स्थान पर यदि कोई दूसरी स्त्री होती

तो वह अपना सतीत्व अवश्य ही मणिरथ के हाथो सौंप देती। परन्तु मदनरेखा धन्य है जिसने ऐसे महान् प्रलोभन से भी अधिक अपने सतीत्व को समझा।

मन ही मन इस प्रकार कहती हुई मणिरथ की माता ने मणिरथ के सम्मुख जाकर कहा– वत्स! तुम यहा कैसे आये? क्या मार्ग भूल गये हो? यह युगबाहु का महल है! रात के समय तुम्हारा यहा आना अनुचित है इसलिए अपने महल मे जाओ।

माता को सामने देखकर मणिरथ बहुत ही लज्जित हुआ और 'यह युगबाहु का महल है! मै भूला!' कहता हुआ वह वहा से चल दिया। मार्ग मे वह सोचता जाता था कि मदनरेखा रूपवती होने के साथ ही बुद्धिमती भी है। उसने पहले मुझे समझाया, लेकिन जब उसका समझाना सफल न हुआ तो माता को बुला लाई। उसने मेरे चगुल से बचने के लिए यह कैसी सफल युक्ति निकाली! ऐसी सुन्दरी और बुद्धिमती स्त्री को यदि मैं प्राप्त न कर सका, न ही अपनी बना सका तो मुझे और मेरे राजपाट आदि सब को धिक्कार है! मेरा जीवन व्यर्थ एव भारभूत है! परन्तु जब तक युगबाहु जीवित है तब तक मेरे लिए उसका स्वामी बनना असम्भव है। इसलिए कोई ऐसा उपाय करना चाहिए कि जिससे युगबाहु के जीवन का अत हो जाये और मैं मदनरेखा को अपनी पत्नी बनाकर जीवन सफल कर सकू।

मणिरथ इस प्रकार विचार करता हुआ अपने महल को चला गया। उधर मणिरथ की माता भी मदनरेखा की प्रशसा करते हुए उसे धैर्य प्रदान कर अपने महल की ओर चली गई। मदनरेखा ने भी स्वय को अब कोई भय नही है, ऐसा समझ कर अपने महल के शयनागार मे प्रवेश किया और निद्रा की गोद मे सो गई।

बन्धु–हत्या

मोहग्रस्त व्यक्ति मे स्वार्थ–भावना का आधिक्य स्वाभाविक है और जिसमे स्वार्थ–भावना भरी हुई होती है वह कर्तव्याकर्तव्य को नही समझता। वह इस बात को भी नही देखता कि यह कार्य करने योग्य है या नही। किसी भी तरह वह अपनी स्वार्थ–भावना पूरी करने और उसकी बाधाओ का अत करने मे ही लगा रहता है। इसके लिए वह कोई भी कार्य नहीं करने योग्य नही मानता। इसके लिए चाहे उसे धर्म, देश, जाति का नाश ही क्यो नही करना पडे, ऐसा करने के लिए सदा उद्यत रहता है। इतना ही नही वह अपने पिता, पुत्र और कन्या, भाई, बहन और माता तक की हत्या कर डालता है फिर चाहे ये सब उसे कितने भी प्रिय क्यो न रहे हो। ऐसा व्यक्ति उन सबको अपना घोर शत्रु समझता है, जो उसके स्वार्थ मे किसी भी प्रकार से बाधक प्रतीत होते है। राजा मणिरथ अपने छोटे भाई युगबाहु पर अत्यधिक स्नेह और विश्वास रखता था। उसने अपने अथवा अपने पुत्र के अधिकार के राज्य का उत्तराधिकारी भी युगबाहु को ही बनाया था। लेकिन जब से उसने मदनरेखा को देखा था तभी से उसके हृदय मे मदनरेखा को अपनी प्रेयसी बनाने की भावना प्रबल रूप धारण कर चुकी थी। उसने यह समझा कि युगबाहु के रहते मदनरेखा कभी मेरी नही बन सकती अत उसके हृदय मे युगबाहु के प्रति स्नेह नही रहा और उसका स्थान छल कपट तथा प्रपच ने ले लिया। इसी के वशीभूत होकर उसने बहाना निकाल कर युगबाहु को युद्ध मे भेजा था लेकिन जब युगबाहु की अनुपस्थिति मे भी उसका कार्य पूर्ण नही हुआ तथा मदनरेखा उसके हाथो मे नही आई तब उसने यही माना कि जब तक युगबाहु जीवत है तब तक मदनरेखा मुझे प्राप्त नही हो सकती। इस कारण वह प्रिय भाई युगबाहु को अपना महान शत्रु मानने लगा। उसे अपन

जीवन को सुखी बनाने के मार्ग का काटा समझने लगा और ऐसा समझने के कारण उसने क्या किया यह बात इस प्रकरण से पकट होगी।

अपने महल मे पहुच कर मणिरथ मदनरेखा को प्राप्त करने का उपाय सोचने लगा। उसने सोचा कि जब तक युगबाहु जीवित है तब तक मदनरेखा उसे पाप्त नही हो सकती। क्योकि मैंने युगबाहु को युवराज बना दिया है इसलिए मदनरेखा को आशा है कि मणिरथ के पश्चात् मेरे पति राजा होगे और मैं पटरानी बनूगी। उसने अपनी यह आशा मेरे सामने प्रकट भी कर दी है। जब तक उसे यह आशा रहेगी, तब तक वह मुझे कभी आदर प्रदान नही करेगी। इसलिए उसकी यह आशा नष्ट करनी चाहिए और ऐसा तभी हो सकता है जब युगबाहु को नष्ट कर दिया जाये। जब युगबाहु न रहेगा, तब मदनरेखा के लिए न तो कोई दूसरा सहारा ही रहेगा तथा न भविष्य विषयक कोई आशा ही रहेगी। उस दशा मे उसे मेरा कहना मानने के सिवा कोई चारा नही रहेगा। उसके लिए कोई दूसरा मार्ग ही शेष नही रहेगा, तब मै सहज ही उसको प्राप्त कर सकूगा।

मणिरथ ने युगबाहु को मार डालने का पक्का निश्चय कर लिया। उधर युगबाहु ने बिना युद्ध किये ही विद्रोहियो को अपने अधीन कर लिया और प्रजा को भली–भाति सन्तुष्ट करके, वह सुदर्शनपुर के लिए लौट पडा। युगबाहु सबधी सभी समाचार मणिरथ को प्राप्त होते ही रहते थे। उन सबको अपने अधीन करके युगबाहु लौट रहा है यह समाचार भी मणिरथ को ज्ञात हुआ। उसने अपने हृदय मे तो युगबाहु को मार डालने का दृढ निश्चय कर ही लिया था। फिर भी लोगो मे भला बनने और बन्धु–स्नेह का ढोग दिखाने के लिए उसने नगर को सजाने की आज्ञा दी और युवराज का स्वागत करने की पूरी तैयारी कराई। जब युगबाहु नगर से कुछ दूर रह गया तब सभासदो एव प्रजावर्ग के साथ मणिरथ उसका स्वागत करने के लिए गया। ज्येष्ठ भ्राता आये है यह जानकर युगबाहु वाहन से उतर कर मणिरथ के समीप आया। उसने मणिरथ को नम्रतापूर्वक प्रणाम किया। मणिरथ ने आशीर्वाद प्रदान कर उसे छाती से लगाया। दोनो ने परस्पर कुशल–क्षेम–प्रश्न किये। मणिरथ के साथ आये हुए सभी लोगो से युगबाहु यथायोग्य मिला और तत्पश्चात् युगबाहु को लेकर मणिरथ उत्साहपूर्वक सभा–भवन मे आया।

युगबाहु को साथ लेकर मणिरथ अपने सिहासन पर बैठा। वह सोच रहा था कि युगबाहु प्रजाप्रिय हो गया। कुछ दिनो के पश्चात् इसके सामने मुझे कोई पूछेगा भी नही। यह मेरा सब प्रभाव नष्ट कर देगा। इसके सिवाय युगबाहु के जीवित रहते मुझे मदनरेखा भी प्राप्त नही हो सकती। इसलिए इसको शीघ्रातिशीघ्र नष्ट कर देना ही अच्छा है। परन्तु इस समय तो इसके साथ ऐसा प्रेम बताना चाहिए कि जिससे इसे मेरे प्रति किसी प्रकार का सन्देह न हो और कदाचित् मदनरेखा मेरे विरुद्ध इससे कुछ कहे तो भी इसको विश्वास न हो। यदि मैंने ऐसा नही किया और मदनरेखा से सब बाते जानकर यह मेरे विरुद्ध हो गया तो प्रजा इसी का साथ देगी। मैं इसका कुछ नही बिगाड सकूगा और न ही मुझे मदनरेखा प्राप्त हो सकेगी। लोगो की दृष्टि मे भी मै कही का नही रहूगा और मुझे राज्य से भी हाथ धोना पडेगा। इसलिए अभी तो मुझे ऐसा प्रयत्न करना चाहिए जिससे कि मदनरेखा इसे मेरे विरुद्ध जो–कुछ कहे इस पर उसका कोई प्रभाव नही पडे या यह मेरे प्रति विद्रोह न करे और यदि विद्रोह करे तो भी जनता इसका साथ न दे।

ऐसा विचार कर मणिरथ सहर्ष कहने लगा– आज का दिन वडे ही आनद का हे जिस प्राणप्रिय भाई के वियोग से मैं दु खी हो रहा था वह सकुशल लोट आया, इससे अधिक आनद की बात ओर क्या हो सकती हे ? जब से युगबाहु मेरी आखो से दूर हुआ था मुझे खाना–पीना राग–रग या राज–काज कुछ भी अच्छा नही लगता था। मुझे दिन–रात इसी की चिता बनी रहती थी। मैं इसकी कुशल–कामना ही किया करता था। आज मेरी चिन्ता दूर हुई इसलिए आज का दिन वहुत ही शुभ है।

सभासदो से इस प्रकार कहकर मणिरथ युगबाहु से कहने लगा कि प्रिय वन्धु! तुमने विद्रोहियो को आधीन कर लिया यह तो में सुन चुका हू, परन्तु तुमने विद्राहियो को किस प्रकार आधीन किया ओर तुम्हे किस–किस स्थिति का सामना करना पडा आदि बातो से अपरिचित हू। अत तुम प्रवास सवधी सब विवरण सुनाओ। तव युगवाहु ने कहा– पूज्य भ्राताजी! सक्षेप मे मेरे प्रवास का विवरण यही हे कि आपकी कृपा स सव कुशलता रही आपके प्रताप स सभी विद्रोहियो ने आत्मसमर्पण कर दिया व युद्ध किये विना ही आधीन हा गय। मतलव यह कि आपकी कृपा ओर पुण्य–प्रताप से शत्रु, मित्र

सभी पसन्न रहे और बिना श्रम या क्षति के आपकी वह चिन्ता मिट गई जो सीमा के सबध मे आपको थी।

इतना कहकर युगबाहु चुप हो गया। मणिरथ ने उससे कहा– भाई! तुमने यह बात बहुत थोडे मे कही है और मैं इस बात को विस्तृत रूप मे सुनना चाहता हू। जान पडता है कि तुम्हे अपने प्रवास का वृत्तान्त कहने मे सकोच होता है। युगबाहु से यह कहकर मणिरथ ने युगबाहु के साथ गये एक सामन्त से कहा– युवराज को अपने मुख से अपने पराक्रम का वर्णन करने और विद्रोहियो को किस पकार आधीन किया यह कहने मे सकोच हो रहा है। इसलिए तुम युवराज के पराक्रम एव इन्होने किस नीति से काम लिया आदि बातो का विस्तार से वर्णन करो। मेरा मन इन सब बातो को जानने के लिए बहुत उत्कण्ठित है।

मणिरथ की आज्ञानुसार सामन्त ने विस्तारपूर्वक उन सब बातो का वर्णन किया जो शत्रुओ को आधीन एव प्रजा को आनदित करने से सबध रखती थी। यह वर्णन करके युगबाहु की प्रशसा करते हुए उसने कहा– महाराज ! युवराज की वाणी मे अद्‌भुत शक्ति है। इन्होने विद्रोहियो को प्रजा की रक्षा का उपदेश दिया और प्रजा को राजभक्त रहने, उद्योग करने एव नीति–धर्म का पालन करने का उपदेश दिया। युवराज की वाणी ने सब लोगो पर जादू–सा असर किया। सब लोगो ने इनका उपदेश शिरोधार्य किया तथा इनके प्रति भक्ति प्रदर्शित की।

सामन्त की बातो को सुनता हुआ मणिरथ कृत्रिम हर्ष प्रकट करता रहा। सामत का कथन समाप्त होने पर मणिरथ ने कहा– ये सब बाते सुनकर मेरा हृदय बहुत ही आनदित हुआ है। भाई के पराक्रम और नीतिकौशल की बाते सुनने से मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है। मुझे विशेष हर्ष तो इस विचार से है कि मैने योग्य को ही युवराज पद दिया है अयोग्य को नही दिया। भाई की रीति–नीति मुझे बहुत ही पसन्द आई है। प्रजा के प्रति भाई की जो नीति है उसको दृष्टि मे रख कर मैं अपने लिए भी यही चाहता हू कि मेरे द्वारा किसी का अहित न हो मेरे राज्य मे कोई दीन–दु खी न रहे और प्रजा–हित के लिए मेरा कोष सदा ही खुला रहे। इसी तरह जिस भाई के कार्य को सुनकर मुझे प्रसन्नता हो रही है उस भाई के प्रति मेरे हृदय मे सद्‌भाव ही रहे, दुर्भाव कभी न आये, और मैं भाई का हित–चिन्तक ही रहू। हे प्रभो ! मै

यही प्रार्थना करता हू कि मेरे मे सदा सुमति रहे और मेरी भावना सफल हो। मैं मनुष्य हू, मनुष्य से त्रुटि होना बहुत सम्भव है। इसलिए मैं यही चाहता हू कि मुझसे कोई ऐसी त्रुटि न हो, जो मेरी इस भावना के विरुद्ध या भाई के हृदय को दु ख पहुचाने वाली हो। मैं भाई को अपने प्राणो से भी अधिक प्रिय मानता हू। मेरे इस बन्धु–स्नेह मे किसी समय अन्तर न आये, यही मेरी मनोकामना है।

इस प्रकार कह कर, मणिरथ ने युगबाहु की प्रशसा की, उसे बहुमूल्य वस्तुए पुरस्कार–रूप प्रदान की और उसको अनेकानेक आशीर्वाद प्रदान कर सभा विसर्जित की। सभा–विसर्जन करने के पश्चात् मणिरथ अपने महल मे लौट आया और युगबाहु अपने महल मे। युगबाहु को देखकर मदनरेखा बहुत आनन्दित हुई। उसने हर्षपूर्वक युगबाहु का स्वागत–सत्कार किया उसकी कुशल–क्षेम पूछी और उसे स्नान–भोजन आदि कराया। तत्पश्चात् उसने युगबाहु से प्रवास का सम्पूर्ण वृत्तात पूछा। बिना युद्ध किये ही विजय प्राप्त करने के कारण युगबाहु की प्रशसा की और अपने विजयी पति का पुन दर्शन हुआ, इसलिए अपने भाग्य की सराहना की। उसने यह सब तो किया, लेकिन मणिरथ का रात के समय महल मे आना और प्रेम–भिक्षा मागना आदि कोई भी बात युगबाहु से नहीं कही। इस सबध मे वह ऐसी चुप रही जैसे कोई घटना हुई ही न हो। वह सोचती थी कि यदि में उस घटना से पति को परिचित कराऊगी तो क्षत्रिय स्वभावानुसार इन्हे क्रोध उत्पन्न होगा, ये अपने भाई से अपनी पत्नी के अपमान का बदला लेने को तत्पर होगे और इस प्रकार दोनो भाइयो मे कलह होगा जिसका परिणाम न मालूम क्या ओर कैसा भयकर होगा? इसलिए उस घटना के विषय मे पति से कुछ न कहना ही अच्छा हे। मदनरेखा को मणिरथ का वह कथन भी ज्ञात हो गया था जो उसने युगबाहु के विषय म उसी दिन सभा मे कहा था। इस कारण उसे यह विचार भी आया कि सभवत जेठजी के मन मे उसी समय दुर्भावना उत्पन्न हुई हो जो अव निकल गई हे। ऐसी दशा मे अव उस प्रकरण को छेडकर आग लगाने से क्या लाभ! इस प्रकार के विचारो से वह मणिरथ के अनुचित व्यवहार की घटना को विलकुल ही पी गई। युगवाहु के सामन उसका नाम भी नही लिया! उसको यह अभिमान भी नही हुआ कि में केसी सती हू कि जठ न इतना प्रलोभन दिया फिर भी नही ललचाई। वह तो यही

सोचती थी कि मैं पति के पताप से ही सतीत्व की रक्षा कर सकी हू, इसलिए इसमे मेरे को अभिमान–अहकार क्यो हो। केसरीसिह की मूछ के बाल या विषधर सर्प की मणि कोई नही ले सकता तो इसमे गुह या मणि के लिए अहकार करने योग्य कौनसी बात है? यह तो उनके स्वामी का ही प्रताप है। इसी पकार मै जेठ द्वारा दिए गये पलोभन मे नही फसी या उनके हाथ नही आई यह सब स्वामी का ही पताप है। इसके लिए मुझे किसी प्रकार का अभिमान या अहकार नही करना चाहिए।

मदनरेखा और युगबाहु आनदपूर्वक रहने लगे। पत्नी–धर्म का पालन करने के लिए मदनरेखा एक पतिव्रत स्त्री की भाति पति की बराबर सेवा–शुश्रूषा करती और चन्द्रयश एव गर्भ के बालक का पालन करके मातृधर्म की भी रक्षा करती थी। इसी पकार युगबाहु भी सदाचारपूर्वक अपनी गर्भवती पत्नी को सदा पसन्न रखता था। मतलब यह कि पति–पत्नी आनद से पेमपूर्वक रहते थे और आमोद–पमोद तथा धर्मकथा के कथन श्रवण मे सुखपूर्वक दिन व्यतीत करते थे।

कुछ दिनो के बाद बसन्त ऋतु का आगमन हुआ। युगबाहु ने विचार किया कि ऋतुराज बसत के आने से सारा वन रम्य हो गया है, वृक्षो मे नूतन पत्र आ गये है और पवन भी शीतल मन्द तथा स्वास्थ्यवर्द्धक चल रही है। इस ऋतु मे वन का निवास बहुत आनद देने वाला एव लाभकारी होता है। इसलिए यदि मदनरेखा स्वीकार करे तो उसको साथ लेकर कुछ दिन वन मे निवास करू। इस समय मदनरेखा गर्भवती है। वन के स्वच्छ पवन से उसके गर्भ के बालक को भी लाभ होगा और उसका भी चित्त आनन्दित रहेगा। स्त्रियो को खुली हवा मे जाने का अवसर कम ही मिला करता है। इस बसन्त ऋतु मे पत्नी को खुली हवा मे न ले जाना और वन–विहार न कराना अनुचित है।

युगबाहु ने अपना यह विचार मदनरेखा से कहा और उससे पूछा। मदनरेखा ने उत्तर दिया– हे नाथ! आप जैसे श्रेष्ठ पुरुषो के हृदय मे ऐसा विचार कदापि नही हो सकता, जो लाभकारी न हो, या किसी के लिए अरुचिकर हो। भला आप ही बताइये कि बसन्त ऋतु मे वन–निवास किसे अच्छा नही लगेगा? नवपल्लवित वृक्षो का देखना कोयल का मधुर कुहू–कुहू शब्द सुनना और शीतल मन्द सुगन्धयुक्त पवन किसको बुरी लगेगी ? बसन्त

ऋतु मे वन का निवास वैसे भी सुखकारी होता है, तव आपके साथ होने के कारण तो मेरे लिए वन का निवास और भी अधिक सुखप्रद होगा। मैं आपकी आज्ञा के अधीन हू, आपकी प्रसन्नता मे ही प्रसन्नता अनुभव करना मेरा परम कर्तव्य है फिर भी आप मुझ से इस तरह के सुखप्रद कार्य के विषय मे सम्मति लेते हैं, यह आपकी महानता है।

सुदर्शनपुर के सव लोग वसन्त ऋतु में किसी नियत दिन बसन्तोत्सव मनाने के लिए नगर के वाहर वन–उपवन मे जाया करते थे। अत सदा की भाति वसन्तोत्सव मनाने के लिए सव लोग नगर के वाहर गये। मणिरथ भी नगर के वाहर गया और मदनरेखा सहित युगबाहु भी गया। युगबाहु ने अपने निवास आदि का सव प्रवन्ध पहले से ही कर रखा था। दिन–भर वसन्तोत्सव मना कर सन्ध्या के समय मणिरथ आदि सब लोग अपने–अपने घर चले गये परन्तु मदनरेखा सहित युगबाहु ने वन मे ही निवास किया। युगवाहु ने अपने निवास स्थल मे सब आवश्यक सामग्रियो का प्रवध करा दिया था और निवास–स्थल के आस–पास विश्वस्त रक्षक भी नियत कर दिये थे।

इधर वन मे युगवाहु और मदनरेखा तो आमोद–प्रमोद तथा धर्म–चर्चा मे समय व्यतीत कर रहे थे और उधर मणिरथ कुछ दूसरा ही विचार कर रहा था। वह मदनरेखा पर पूरी तरह आसक्त हो चला था। तथा जैसे भी हो मदनरेखा को प्राप्त करने की चिन्ता मे लीन रहता था। मदनरेखा की प्राप्ति के मार्ग मे वह युगवाहु को वाधक समझता था इसलिए उसने युगवाहु की हत्या कर डालने तक का निश्चय कर लिया। सन्ध्या के समय जव उसको यह ज्ञात हुआ हे कि मदनरेखा सहित युगवाहु वन मे ही ठहरा हुआ हे और रात को भी वही रहगा तव वह वहुत प्रसन्न हुआ। उसने सोचा कि आज युगवाहु की हत्या करने के लिए उपयुक्त अवसर हे। युगवाहु कुछ रक्षका के भरास पर ही वन मे रह रहा हे। युगवाहु या उसके रक्षक मेरी शक्ति ओर वीरता के सामन कुछ भी नही हें। म युगवाहु तथा उसके रक्षको को सहज ही मार सकता हू। मुझे आज का अवसर नही खाना चाहिए। रात मे ही युगवाहु का मारकर अपना कार्य साध लेना चाहिए। मुझ यह मानना चाहिए कि मर साभाग्य स ही युगवाहु आज वन म रुका हे।

युगवाहु की हत्या करन का निश्चय करने के पश्चात् मणिरथ न कुछ रात वीतन पर अपना घाडा मगवाया। घाड क आ जाने पर वह एक

विषबुझी तलवार हाथ मे ले घोडे पर बैठकर उस स्थान के लिए रवाना हुआ जहा युगबाहु और मदनरेखा ने निवास किया था। मार्ग मे उसके हृदय मे अनेक रौद्र भावनाए प्रकट हो रही थी। वह भविष्य विषयक अनेक कल्पनाए करता जा रहा था। घोडा दौडाता हुआ मणिरथ थोडे ही समय मे युगबाहु के निवास स्थान के समीप जा पहुचा। उसका विचार तो यह था कि मै युगबाहु को बिना खबर किए ही सीधा उसके पास पहुच जाऊ और ऐसा उसने प्रयत्न किया भी लेकिन युगबाहु के पहरेदारो की चपल दृष्टि से वह बच नही सका। पहरेदारो ने मणिरथ को भीतर जाने से रोक दिया। मणिरथ पहरेदारो से कहने लगा— तुम लोग नही जानते कि मै कौन हू? मै तुम्हारे स्वामी युगबाहु का बडा भाई मणिरथ और यहा का राजा हू! मुझे सब जगह जाने का अधिकार है। इसलिए मुझे रोको मत अन्यथा तुम्हे इसका दण्ड भोगना पडेगा। जान पडता है कि तुम जैसे धूर्तो के कहने से ही युगबाहु रात के समय यहा रुका है। राज–परिवार के लोगो का और विशेष [illegible] का रात के समय वन मे रहना क्या उचित है? मै युगबाहु को [illegible] आया हू, इसलिए मुझे भीतर जाने दो।

एक आदमी युवराज के पास चला जाये और उससे कहे कि तुम्हारा बडा भाई एक आवश्यक कार्य के लिए तुम से मिलने आया है, अत उसको तुम्हारे पास आने दिया जाये या नहीं? ऐसा कहने पर यदि युगबाहु कहे कि न आने दिया जाये तो मैं वापस लौट जाऊगा और यदि कहे कि आने दिया जाये तो कोई प्रश्न ही शेष नहीं रहेगा। इसलिए किसी आदमी को भेजकर युगबाहु से निर्णय करा लो।

मणिरथ का यह कथन पहरेदारो को उचित लगा और उन्होने एक रक्षक को युगबाहु के पास भेजा। उसने युगबाहु के पास जाकर अभिवादन-पूर्वक कहा कि आपके बडे भाई महाराज मणिरथ आये हैं और किसी आवश्यक कार्य से आपके पास आना चाहते हैं। इस सबध मे आपकी क्या आज्ञा है ? उनको आपके पास आने दिया जाये या नही?

आदमी के इस कथन को मदनरेखा ने भी सुना। वह मणिरथ का आना सुन कर सहम उठी और अपने मन मे कहने लगी कि इस असमय मे जेठजी का यहा आना शका पैदा करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे लिए उनकी दृष्टि मे जो विचार आया था वह मिटा नही है किन्तु उस विचार से प्रेरित होकर वे कोई अनर्थ न कर दे। मुझे अपने पति को सावधान कर देना चाहिए, जिससे ये इस समय जेठजी से न मिले।

इस तरह सोचकर मदनरेखा ने युगबाहु से कहा- नाथ! आपके भाई इतनी रात गये पधारे हैं इससे मुझे किसी अनर्थ की शका होती है। राजा लोगो का रात के समय इस प्रकार आना मर्यादा-विरुद्ध है। इसलिए मैं यह निवेदन करती हू कि आप अपने भाई को इस समय यहा न बुलाइये ओर न आप उनसे मिलिये। मुझे जान पडता हे कि वे किसी दुर्भावना से ही यहा आये हैं।

मदनरेखा का यह कथन सुनकर युगवाहु ने कहा- मदनरेखा! तुम वुद्धिमती हो, परन्तु आखिर हो तो स्त्री ही। इसलिए तुम म स्त्री-स्वभाव का आ जाना स्वाभाविक हे। स्त्रियो मे दूसरो के प्रति सन्देह भी अधिक होता है आर दूसरा से भय भी। सन्देह ओर भय के कारण वे विवेकशून्य होकर मर्यादा का उल्लघन कर डालती हैं ओर दूसरे को भी ऐसी ही सम्मति देती हैं। इसी कारण तुम कवल व्यर्थ के सन्देह ओर भय से मुझे अपने वडे भाई का अविनय करन एव उनसे न मिलन के लिये कह रही हो। भला वताओ तो सही जिस भाई न अपने पुत्र क अधिकार के राज्य का उत्तराधिकारी मुझे बना दिया हे

और जिनका मेरे प्रति अत्यन्त स्नेह है, उनके प्रति इस प्रकार सन्देह का क्या कारण है? आज तुम्हारी बुद्धि मे कोई विकृति तो नही आ गई?

उत्तर मे मदनरेखा ने कहा– स्वामिन्! मैंने आपसे जो निवेदन किया है, या आपके भाई के प्रति मुझे जो सन्देह और आशका है, वह सकारण है। आपके भाई के हृदय मे पहले आपके प्रति वैसा ही स्नेह था, जैसा कि आप कहते हैं, परन्तु अब वह स्नेह नही रहा, उसका स्थान द्रोह ने ले लिया है और इसका कारण मैं ही हू। कलह उत्पन्न न हो, इस विचार से मैंने जो घटना आपके सम्मुख प्रकट नही की थी वह आपको सुनाती हू, जिसे सुनकर आप मेरा सन्देह और भय अकारण न मानेगे। इसलिए मैं आपको वह घटना सुनाती हू।

यह कहकर मदनरेखा ने युगबाहु को वे सब बाते सुना दी जो उसकी अनुपस्थिति मे मणिरथ की ओर से हुई थी। सब बाते सुनकर मदनरेखा ने कहा कि अब आपके प्रति आपके भाई का हृदय पहले वाला नही रहा बल्कि उसमे दुर्भाव आ गया है। आप दोनो भाइयो के बीच मे जो प्रेम था वह मेरे कारण नष्ट हो गया है। इसलिए मै आपसे निवेदन करती हू कि आप इस अवसर को टाल दीजिये तथा अपने भाई से मत मिलिये।

मदनरेखा की बाते सुनकर, युगबाहु की आखे मारे क्रोध के लाल हो गई। वह कहने लगा कि भाई ऐसा कुटिल और पापी है! तुमने यह घटना मुझसे अब तक क्यो छुपाई? यदि मुझे पहले ही ज्ञात हो जाता तो मैं तुम्हारे साथ अशिष्ट व्यवहार करने का बदला कभी का ले चुका होता और उसे यह बता देता कि युगबाहु वीर है कायर नही है जो अपनी पत्नी का अपमान चुपचाप सहन कर ले। परन्तु तुमने जो घटना कही उसमे और मैं लौट कर आया उस दिन भाई ने जो उद्गार प्रकट किये, उसमे बहुत अन्तर है। उस दिन सभा मे भाई ने मेरे लिए जो–कुछ कहा था उस पर और आज मैं तुमसे जो यह सब घटना सुनकर विचार करता हू तो मुझे यही मालूम होता है कि जैसे भाई ने अपने कार्य के विषय मे पश्चात्ताप किया हो और भविष्य मे ऐसा कोई कार्य न करने की प्रतिज्ञा की हो। इस प्रकार भाई के उस दिन के कथन से यही जाना जाता है कि भाई मे उस समय दुर्भावना आई थी परन्तु अब दुर्भावना नही रही है। मनुष्य से ऐसी भूल को लेकर हृदय मे वेरभाव रखना अनुचित है। इसलिए अब उस घटना का स्मरण भी नही करना चाहिए न ही

उसके कारण भाई पर सदेह ही करना चाहिए। थोडी देर के लिए मान भी ले कि भाई कुछ दुर्भावना से आये हो तब भी मैं कायर नही हू, न ही भाई से कम बलवान हू। यदि भाई ने किसी दुर्भावना का परिचय दिया भी तो उन्हे उसका फल भी वैसा ही भोगना पडेगा । इसलिए मैं भाई से इस समय मिलना किसी भी प्रकार से आपत्तिजनक नही मानता।

मदनरेखा ने रात के समय मणिरथ से न मिलने के लिए युगबाहु को बहुत समझाया, बहुत अनुनय–विनय की परन्तु युगबाहु ने मदनरेखा की बात नहीं मानी। वह मदनरेखा को स्त्री–स्वभावानुसार कायर–हृदय ही मानता रहा और पहरेदारो द्वारा भेजे गये भृत्य से कहा– भाई को सम्मानपूर्वक यहा ले आओ। मदनरेखा ने जब देखा कि पति किसी भी तरह नहीं मान रहे है और इन्होने अपने भाई को यहा आने की स्वीकृति दे दी है, तब यह भीतर ओट मे हो गई। युगबाहु ने मणिरथ के सत्कार आदि का उचित प्रबध किया और उसकी प्रतीक्षा करने लगा।

पहरेदारो द्वारा भेजे गये आदमी ने वापस लौट कर उन्हे युगबाहु की आज्ञा सुनाई। तब पहरेदारो ने मणिरथ से कहा कि युवराज की स्वीकृति आ गई हे, अब आप युवराज के पास पधारिये। यह आदमी आपको युवराज के पास पहुचा देगा। हम लोगो ने आपको रोका यह हमारा अपराध है जिसे क्षमा करने के लिए हम आपसे प्रार्थना करते है। पहरेदारो का कथन सुनकर मणिरथ बहत ही प्रसन्न हुआ। उसने कहा– तुम लोगो ने मुझे रोककर अपने कर्तव्य का ही पालन किया है कोई अपराध नही किया है। इसलिए तुम्हे खेद करने या क्षमा मागने की आवश्यकता नही है। बल्कि एक तरह से तुमने मुझे रोक कर अच्छा ही किया। तुम लोगो ने मुझे रोका इससे तुम्हे यह ज्ञात हो गया कि हम दोनो भाइयो मे कैसा प्रेम है?

यह कहते हुए मणिरथ ने अपना घोडा आगे बढाया। उसके आगे–आगे युगबाहु का एक सेवक था। अपने निवास–स्थान के द्वार पर युगबाहु मणिरथ की प्रतीक्षा मे ही खडा था। द्वार पर पहुचकर मणिरथ घोड से उतरा। उस समय भी वह अपने हाथ म नगी तलवार लिए हुए था। युगबाहु न मणिरथ का उचित अभिवादन तथा स्वागत किया और आदरपूर्वक भीतर ले जाकर उच्चासन पर बटाया। कुछ देर के पश्चात् युगबाहु न मणिरथ से कहा– आपन इस समय आन का कष्ट केरा किया? मरे याग्य क्या सवा ह आज्ञा कीजिय। युगबाहु क प्रश्न क उत्तर म मणिरथ न कहा– भाई !

मै जिस उद्देश्य से आया हू उसे कहना ही चाहता था, कि तुमने ही प्रश्न कर डाला। मैं इस समय यहा क्यो आया हू, सुनो। तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो। मैं तुम्हे अपने प्राणो से भी अधिक प्रिय एव रक्षणीय समझता हू। मैंने जब यह सुना कि आज तुमने वन मे निवास किया है तब मुझे बहुत ही आश्चर्य हुआ और चिन्ता भी हुई। मुझे यह विचार आया कि रात के समय वन मे रहकर भाई ने बडी भूल की है। अनेक लोग तुम से शत्रुता रखते हैं, तथा वे लोग तो तुम्हारे पति विशेष शत्रुता रखते होगे जिनको तुमने अभी कुछ दिनो पहले ही आधीन किया है। क्षत्रिय लोग दूसरो की अधीनता तभी स्वीकार करते हैं जब वे बिल्कुल विवश हो जाते हैं तथा कोई दूसरा मार्ग शेष नही रहता। अधीन होकर भी क्षत्रिय ऊपर से चाहे जैसा नम्रतापूर्ण व्यवहार करे लेकिन हृदय मे तो आधीन करने वाले के प्रति बैर ही रखते हैं और ऐसे व्यक्ति को नष्ट करके पुन स्वतन्त्र होने का ही उपाय सोचते एव करते रहते हैं। जिन आततायियो को तुमने आधीन किया है उनके हृदय मे बैर की ज्वाला जलती होगी। वे इस प्रयत्न मे ही होगे कि कोई ऐसा अवसर मिले, जब बदला लिया जा सके। ऐसे लोगो को यदि यह पता लग जाये कि युवराज वन मे ठहरे हुए है तो क्या वे इस अवसर का उपयोग नही करेगे? मेरे हृदय मे इस तरह का विचार होने से मै इस समय तुम्हारे पास आया हू और तुमसे कहता हू कि रात के समय इस प्रकार वन मे रहना ठीक नहीं है। राजाओ या राज–सबधियो को युद्ध के अतिरिक्त शेष समय रात को किले से बाहर नही रहना चाहिए। दुर्ग इसी उद्देश्य से होते हैं कि कदाचित् कोई शत्रु अनायास चढाई कर दे तो वह सहसा किले के भीतर न घुस सके। तुम्हारे रहने के लिए दुर्ग है फिर तुम इस असुरक्षित स्थान पर क्यो रहो? इस प्रकार मैं तुम्हारी कुशलता के लिए ही रात के समय यहा आया हू और घर से निकलते ही मैंने अपनी यह तलवार म्यान से बाहर निकाल कर हाथ मे रख ली कि कोई शत्रु न मिल जाये।

मणिरथ की आकृति देखकर और उसका कथन सुनकर युगबाहु समझ गया कि मदनरेखा का कथन ठीक निकला तथा अब भाई मे मेरे प्रति स्नेह नही है अपितु बैर है। यह ऊपर से तो ऐसा कहता है परन्तु इसकी भावना कुछ दूसरी ही जान पडती है। कुछ भी हो मै इसके कथन का उत्तर थोडे मे ही दिये देता हू और इसको यह बताये देता हू कि युगबाहु तुम्हारी दुर्भावना से अपरिचित नही है और न ही असावधान।

इस तरह सोचकर युगबाहु ने मणिरथ से कहा– भाई, यदि अपनी रक्षा दुर्ग ही कर सकता है, दुर्ग के बाहर रक्षा नहीं हो सकती, तो फिर आप रात के समय दुर्ग त्याग कर यहा क्यो आये हैं? युगबाहु के इस कथन के उत्तर मे मणिरथ ने कहा– मैं वयस्क हू, अनुभवी हू, मुझे सब बाते तथा अपनी रक्षा के उपाय मालूम हैं। साथ ही तुम्हारी अपेक्षा मेरे मे बल भी अधिक है और साहस भी। तुम अभी अल्पवयस्क हो मुझ जैसा अनुभव भी तुम्हे नहीं है, न तुम्हे कभी विषम परिस्थिति का सामना ही करना पडा है, इसलिए मुझे उसकी चिन्ता नहीं है, लेकिन तुम्हारे विषय मे चितित होना स्वमाविक है।

युगबाहु ने उत्तर दिया– भाई! आप भूल रहे हैं। आप बलवान और साहसी हैं तो क्या मैं बलहीन या कायर हू? क्या मैं आपका भाई नहीं हू? मैं युवक हू, मुझमे साहस तथा उत्साह की कमी नहीं है, न मैं किसी तरह का भय ही करता हू। ऐसी दशा मे आपको मेरे लिए चिन्ता करना अनावश्यक है। आप मेरे बारे मे कोई चिन्ता या भय न रखिये, कितु अपने महल को पधारिये।

युगबाहु का उत्तर कुछ रूखापन लिए हुए था। इस कारण युगबाहु के कथन के उत्तर मे अधिक–कुछ कहने के लिए मणिरथ का साहस नही हुआ। इसके सिवाय मणिरथ ने यह भी सोचा होगा कि बाद–विवाद करने से क्या लाभ ? मुझे तो अपना कार्य करना है। इन कारणो से उसने युगबाहु से यही कहा– अच्छा भाई तुम्हारे लिए चिन्ता करके मैंने गलती की है इसलिए मैं वापस लोट जाता हू। परन्तु थोडा पानी तो पिला दो। मैं चिन्तित हृदय से घोडा दोडाता हुआ आया हू, इसलिये मुझे प्यास लगी है।

मणिरथ का कथन सुनकर युगबाहु ने सोचा कि कुछ भी हो लेकिन जब भाई पानी मागते हैं तब इन्हे पानी तो पिलाना ही चाहिए। मदनरेखा ने मुझ से जो–कुछ कहा था उसकी सत्यता स्पष्ट हो गई है फिर भी जो प्यास बुझाने के लिए पानी मागता है उसको पानी तो देना ही चाहिए चाहे वह कैसा भी शत्रु क्यो न हो।

युगवाहु को मणिरथ की ओर से यह आशका नही थी कि उसका भाई इसी समय उस पर आक्रमण कर देगा या उसके प्राण हरने का साहस कर डालेगा। इसलिए वह नि शक भाव से मणिरथ को पानी देने के लिए उठा लकिन वह झारी से गिलास म पानी डालने के लिए जेसे ही झुका वैसे ही मणिरथ ने उसके मस्तक पर तलवार का वार कर दिया। मणिरथ की तलवार पडत ही युगवाहु क सिर मे गहरा घाव हा गया जिससे रक्त बहने

लगा। साथ ही मणिरथ की तलवार विष से बुझाई हुई थी, इसलिए तलवार का विष भी युगबाहु के शरीर मे फैल गया। युगबाहु आहत होकर यह कहता हुआ पृथ्वी पर गिर पडा कि अरे दुष्ट! तूने अपने छोटे भाई के साथ ऐसा विश्वासघात किया! युगबाहु को आहत और पृथ्वी पर गिरा देखकर मणिरथ हाथ मे रक्तभरी तलवार लिये हुये घोडे पर बैठकर भाग गया। युगबाहु के गिरते और मणिरथ के भागते ही सारे निवासालय मे हाहाकार मच गया। युगबाहु के विश्वस्त सेवको को जैसे ही ज्ञात हुआ कि युगबाहु को आहत करके मणिरथ भागा जा रहा है, वैसे ही वे मणिरथ के पीछे पकडो–पकडो करते हुए दौड पडे। उन लोगो की पुकार सुनकर पहरेदारो ने भागते हुए मणिरथ को रोक लिया। युगबाहु के शरीररक्षको एव पहरेदारो ने मणिरथ को चारो ओर से घेर लिया। वे मणिरथ से कहने लगे– तुम अपने बन्धु और हमारे स्वामी की हत्या का फल भोगने के लिए तैयार हो जाओ। इस प्रकार निवास–स्थल और उसके बाहर बडा कोलाहल होने लगा।

धर्म–सहाय्य

ससार मे स्त्रियो के लिए प्राय यही माना जाता है कि स्त्रिया ससार–वृद्धि का कारण और परलोक–साधन मे बाधक हैं। वे अपना ही स्वार्थ देखती हैं, अपने स्वार्थ के लिए ही पति से प्रेम करती हैं और अपना स्वार्थ *छूटने के कारण ही, पति के लिए दु ख करती हैं। वे पति का इहलौकिक हित* एव सेवा भी अपने स्वार्थ के लिए ही करती हैं। जिस पति से उनके स्वार्थ की पूर्ति नही होती, उसका वे आदर भी नही करती उसके प्रति प्रेम भी नहीं करती। उसका हित करना तो दूर रहा उसकी कुशल भी नही चाहती तथा अवसर पाकर ऐसे पति को उसी प्रकार त्याग देती हैं जिस प्रकार फलविहीन वृक्ष को पक्षी एव शुष्क वन को मृग त्याग देते हैं। इस मान्यता के कारण ही स्त्रियो की निन्दा की जाती है। लकिन एक रूप से स्त्री–मात्र को ऐसा मान बठना नितान्त भूल है। वास्तव मे, जेसे सभी पुरुप अच्छे नही होते उसी प्रकार सभी स्त्रिया बुरी नहीं होती। इस बात को दृष्टि मे दखकर ही शास्त्रो मे स्त्रिया की एक रूप से निन्दा नही की गई है किन्तु यदि किसी अपेक्षा से स्त्रियो की निन्दा की गई हे तो किसी अपेक्षा से स्त्रियो की प्रशसा भी की गई है। सभी स्त्रिया ऐसी स्वार्थिनी होती भी नही ह जो अपने पति का इहलौकिक या पारलोकिक हित न चाहे। इसके लिए राजा इक्षुकार की रानी कमलावती का उदाहरण दना ही पर्याप्त हागा। रानी कमलावती को अपने पति की आर से किसी प्रकार क सासारिक सुख की कमी न थी। पति द्वारा उसके सभी इहलाकिक स्वार्थो की पूर्ति हाती थी। फिर भी उराने अपने पति क पारलाकिक हिताहित का दृष्टि म रखकर अपन स्वार्थ की भी उपेक्षा करक अपन पति स यह स्पष्ट कह दिया था कि पुराहित द्वारा परित्यक्त सम्पत्ति न अपनाइय। दूसर द्वारा त्यागी गई वस्तु का अपनाना कोए या कुत्त का काम ह। यह कहन क साथ ही उसन पति का ओर भी उचित उपदश

दिया था तथा यह सब पति के पारलौकिक हित के लिए ही किया था। ऐसा करने मे उसे अपने स्वार्थ का भी त्याग तो करना ही पडा था। कमलावती की तरह दूसरी भी कई स्त्रिया ऐसी हुई हैं जिन्होने अपने पति के हितार्थ अपना स्वार्थ त्याग दिया। मदनरेखा भी ऐसी ही स्त्रियो मे से एक थी। युगबाहु के मारे जाने पर वह अपने स्वार्थ की चिन्ता कर सकती थी, स्वार्थ छूटने से रो सकती थी, पति के हिताहित की उपेक्षा कर सकती थी, लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। उसने उस सकटकाल मे भी अपने पति के पारलौकिक हिताहित का ही ध्यान रखा। इसके लिए उसने क्या किया, पति का परलोक किस प्रकार सुधारा, किस प्रकार पति को नरक जाने से बचाया आदि बाते इस प्रकरण से ज्ञात होगी।

युगबाहु के वन–निवासालय के बाहर तो मणिरथ को घेर लेने से कोलाहल हो रहा था लेकिन निवासालय के भीतर की स्थिति कुछ दूसरी ही थी। मदनरेखा ने जब देखा कि जेठ ने पति के मस्तक पर तलवार का वार किया है और वे आहत होकर धराशायी हो गये हैं तब वह भी दु ख के कारण हाय–हाय करती हुई मूर्च्छित हो गई। दूसरी ओर पृथ्वी पर पडा युगबाहु, मणिरथ से बदला लेने के लिए बार–बार उठने का प्रयत्न करता था परन्तु उससे उठा नही जाता था। उस समय वह क्रोध से भरा हुआ था तथा कह रहा था– अरे दुष्ट! तूने इस प्रकार छलपूर्वक मुझ पर आघात किया! तू यदि वीर होता तो मुझे सावधान कर देता और फिर आघात करता! उस समय तुझे मालूम होता कि युगबाहु पर आक्रमण करना कैसा होता है? हे मदनरेखा! तुम कहा हो! तुमने मुझ से कहा था कि इस समय उस पापी से न मिलो! उसकी भावना विकारपूर्ण है, इसलिये सम्भव है कि कोई अनर्थ हो जावे! मैने तुम्हारा कहना नही माना, उसका फल मुझे भोगना पडा है और उस कायर के हाथो आहत हुआ हू! उस पातकी ने मेरे साथ तो यह क्रूर व्यवहार किया ही परन्तु अब वह तुम्हे अनाथ समझ कर तुम्हारा स्वामी बनने के लिए तुम्हारा सतीत्व नष्ट करके अपनी काम–वासना तृप्त करने के लिए तुम पर न मालूम कैसा अत्याचार करेगा? तुम्हे न मालूम किस–किस प्रकार से पीडित करेगा! तुम अपना सतीत्व बचाने के लिए जैसे–जैसे प्रयत्न करोगी वैसे–वैसे ही वह कामान्ध तुम्हे अधिकाधिक कष्ट देगा! उसने जब अपने सहोदर छोटे भाई पर ही ऐसा मार्मिक प्रहार किया है और वह प्रहार भी तुम्हे प्राप्त करने के लिए तब मेरे पश्चात वह तुम्हारे प्रति कौन सा क्रूर व्यवहार नही करेगा! चन्द्रयश बालक होने पर भी वीर है। वह तुम्हारा अपमान कदापि न सह सकेगा

इसलिए उसको भी न मालूम केसी दुर्दशा सहनी होगी। वह कायर मुझ पर पीछे से प्रहार करके भाग ही गया। यदि वह नही भागता तो मैं इतना आहत होने पर भी उसको अपना वल अवश्य वताता ओर जीवित नहीं जाने देता।

युगवाहु क्रोध, घाव एव विप की पीडा से तडफता हुआ इस प्रकार वडवडा रहा था। मदनरेखा पति के मस्तक पर हुए प्रहार और पति की दशा देखकर मूर्च्छित हो गई थी। जव कुछ देर म उसकी मूर्च्छा दूर हुई तव वह अपने—आप को सम्हाल कर तथा धैर्य रखकर पति के पास आई। पति की दशा देखकर उसका हृदय फटा जा रहा था फिर भी उसने धेर्य नहीं त्यागा। उसने देखा कि मस्तक पर हुआ घाव प्राणान्तक हे और पति का जीवन—दीप कुछ ही समय मे वुझ जाने वाला है। यह देखकर उमने सोचा कि मेरे ही कारण पति की यह दशा हुई है तथा अकाल मे काल—कवलित होना पड रहा हे। मेरे सौन्दर्य ने ही मणिरथ के हृदय मे विकृति उत्पन्न की जिससे यह अनर्थ हुआ है। जा—कुछ हुआ, सो हुआ परन्तु इस समय मुझे ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे पति का परलोक न विगडे, इन्हे परलोक मे दु खी न होना पडे। इस समय ये क्रोध से भरे हुए हैं। साथ ही इन्हे मेरे प्रति राग भी हे। यदि इनके जीवन का अन्त इस तरह के राग—द्वेष मे हुआ तो न मालूम इनको किस नरक मे जाना पडेगा । मैं इनकी सहधर्मिणी हू। मुझे अपने ही सुख—दु ख के लिए नहीं रोना चाहिए कितु पति के सुख—दु ख की भी चिन्ता करके एसा प्रयत्न करना चाहिए जिससे इनका मरण सुधर जावे। इन्हे परलोक में दु ख न सहना पडे, यह मेरा कर्तव्य हे। मेंन जा धार्मिक शिक्षा पाई हे उसके उपयोग का समय भी यही हे। यदि इस विपम समय म भी मने धर्म का उपयोग न किया पति को दुर्गति स न वचाया ता फिर धर्म जानने का क्या लाभ? इसलिए मुझ धार्मिक उपदश द्वारा पति का राग—द्वप शात करने का प्रयत्न करना चाहिए।

इस प्रकार साचकर मदनरेखा न अपना दु ख विस्मृत करक और अपन भविष्य की चिन्ता त्याग कर, पति का धर्म—ज्ञान सुनाने का निश्चय किया। परन्तु उम यह विचार आया कि इस समय वाहर हान वाल कोलाहल क कारण पति का मरा धीमा स्वर कम सुनाई दगा? पति कुछ ही देर क अतिथि ह। इसलिए पहल कालाहल वन्द कराना चाहिए। इसके सिवा यदि पति क सामन्ना न जठ का मार भी डाला ता उमस क्या लाभ हागा ? उनका

मार डालने पर भी, पति का जीवन तो रह नहीं सकता। ऐसी दशा मे एक हत्या और हो, यह पाप क्यो बढाया जावे?

मदनरेखा ने बाहर आकर सामन्तो एव पहरेदारो से कहा– तुम लोग यह क्या कह रहे हो? तुम अपने स्वामी का हित चाहते हो या अहित? उनका हित उनके घातक को पकडने या मार डालने से नही हो सकता, किन्तु धर्म की सहायता देने से ही हो सकता है। वे शरीर मे अधिक समय तक रहने वाले नही हैं। यदि यह समय व्यर्थ गया तो इससे तुम्हारे स्वामी का अहित ही होगा। इसके सिवा यदि तुमने इनकी हत्या की राजा को मार भी डाला, तो भी ऐसा करने से मेरे पति जीवित नही हो सकते! ऐसी दशा मे जो अपराध राजा ने किया है वही अपराध तुम लोग क्यो करते हो? रक्तसना वस्त्र रक्त से स्वच्छ नही हो सकता। इसके अनुसार अपराध का बदला अपराध करने से पूरा नही हो सकता। इसलिए तुम राजा को जाने दो और कोलाहल बन्द करके शान्त हो जाओ। पति का जो जीवन शेष है उसका उपयोग पति का मरण सुधारने मे मुझे कर लेने दो।

मदनरेखा की आज्ञा मानकर सामन्तो तथा पहरेदारो ने मणिरथ को छोड दिया और कोलाहल बन्द हो गया। तत्पश्चात् मदनरेखा युगबाहु के पास लौट आई। युगबाहु उस समय भी उसी प्रकार तडाफडा एव बडबडा रहा था। मदनरेखा ने युगबाहु का मस्तक अपनी गोद मे रख लिया तथा उसके शरीर को इस तरह दबा लिया कि जिससे वह अधिक न तडफ सके। फिर मदनरेखा ने कोमल और प्रिय स्वर मे युगबाहु से कहा प्रियतम! यह अवसर कल्याण साधने के लिए अमूल्य है फिर भी आप किस जजाल मे पडे हुए है? आप थोडी देर के लिए चित्त स्थिर करके मेरी बात सुनिये और मेरी अन्तिम सेवा स्वीकार कीजिये। यह तो आप जानते ही है कि मै आपका हित चाहने वाली ही हू। इसलिए आप मेरी प्रार्थना को ध्यानपूर्वक सुनिये जिससे आपका हित हो अहित न हो।

नाथ! आप सोच रहे होगे कि दुष्ट भाई ने बिना किसी अपराध के मेरे मस्तक पर छलपूर्वक खड्गाघात किया और भाग गया और ऐसा सोचने के कारण ही आपको क्रोध आ रहा है परन्तु ऐसा सोचना–समझना भूल है। जिसने धर्म का अभ्यास किया है वह तो यही मानता है कि दूसरा तो निमित्तमात्र है जीव अपने आयुर्बल से ही जीवित रहता है तथा आयुर्बल शेष न रहने पर किसी भी निमित्त से मर जाता है। आप भी ऐसा ही विचार कर यह मानो कि मेरा आयुर्बल शेष नही रहा इसी कारण मेरे मस्तक पर तलवार

गिरी। ऐसा मानकर आप क्रोध त्यागो और अपना मरण सुधारने परलोक मे अपने को दु ख से बचाने के लिए धर्म की शरण लो। अर्हन्त, सिद्ध, साधु और केवली-भाषित धर्म की शरण लेना इस लोक तथा परलोक के लिए भी मागलिक है। आप इनकी ही शरण लीजिये और व्यर्थ मे दूसरे किसी जजाल मे मत पडिए।

मदनरेखा ने यह कहा, परन्तु युगबाहु क्षत्रियकुमार था, इसलिए उसका क्रोध शान्त नही हुआ, बल्कि इस विचार से क्रोध और भी बढ गया कि दुष्ट भाई ने इस धार्मिक सती का सतीत्व नष्ट करने के लिए ही मेरे सिर पर तलवार मारी है तथा अब वह इस सती को न मालूम कैसे-कैसे कष्ट देगा तथा ऐसे ही दूसरे विचारो के कारण युगबाहु पर मदनरेखा के कथन का प्रभाव नहीं पडा। युगबाहु की चेष्टा से मदनरेखा ने जब यह जाना कि पति पर मेरे कथन का कोई प्रभाव नहीं हुआ, न इनका क्रोध ही शात हुआ है तब वह फिर कहने लगी- स्वामिन्! आपके हृदय मे मेरे प्रति जो राग और भाई के प्रति जो द्वेष है, आप उस राग-द्वेष को मिटा दीजिए। आप मेरे को निरपराधिन और भाई को अपराधी मानकर मेरे से राग तथा भाई से द्वेष कर रहे हैं परन्तु वास्तविक बात इसके विपरीत है। आप सोचते हैं कि भाई ने मेरे सिर पर खड्ग मारा है, लेकिन आपके मस्तक पर खड्ग मारने वाली मैं हू, भाई नहीं है। आप ही विचारिये कि आपके भाई आपसे कितना स्नेह करते थे? उन्होने आपको अपना उत्तराधिकारी युवराज बना दिया था। जिस राज्य के लिए राजा लोग अपना मस्तक कटा देते हैं जिसे अपने प्राणो से भी अधिक मूल्यवान समझते हैं, वह राज्य आपके भाई ने अपने पश्चात् आपको मिलने की व्यवस्था की, यह आपके प्रति उनका कैसा स्नेह था! जिसके हृदय मे ऐसा स्नेह था क्या वह भाई आपको तलवार मार सकता था? तलवार मारना तो दूर की बात आपके भाई आपके लिए कठिन शब्द का प्रयोग भी नही कर सकते थे परन्तु मेरे सोन्दर्य ने उनके हृदय का स्नेह-स्रोत सुखा दिया और वेर-विरोध भर दिया। इसी से आपके मस्तक पर तलवार गिरी है। इस प्रकार आपके मस्तक पर तलवार का आघात मेरे ही कारण हुआ है। आपको मेरे प्रति राग था इसी से आपकी यह दशा हुई हे। अव आप यदि फिर मेरे प्रति राग रखेगे तो नरक मे आपके मस्तक पर न मालूम कितनी तलवार गिरगी। इसी प्रकार यदि आप अपने भाई पर द्वेप रखग तो उसका दुष्परिणाम भी आप ही को भोगना पडगा। इसलिए आपको मेरे प्रति जो राग और भाई के प्रति जो द्वप ह उसे त्यागिये। ऐसा करन स ही परलोक म आपका कल्याण हो

सकता है अन्यथा यहा जो कष्ट आप सह रहे हैं उससे भी अधिक भयकर कष्ट आपको परलोक मे सहना पडेगा।

मदनरेखा के इस कथन का यथेष्ट परिणाम हुआ। युगबाहु को मदनरेखा का कथन उचित लगा। वह सोचने लगा कि वास्तव मे मेरे प्रति भाई मे बहुत स्नेह था, परन्तु मदनरेखा को देखकर ही वह मेरा शत्रु बना। इसलिए उस पर क्रोध करना व्यर्थ है।

इस तरह के विचारो से युगबाहु का क्रोध शात हुआ। उसका चित्त कुछ स्थिर हुआ, इस कारण वह उपदेश सुनने का पात्र बना। क्रोध रहने तक कोई भी उपदेश सुनने का पात्र नहीं होता। क्रोधग्रस्त पर किसी भी सदुपदेश का प्रभाव नही होता। इसलिए उपदेश देने वाले, दूसरा कोई सदुपदेश देने से पहले क्रोध शात करने का ही उपदेश देते हैं और जब क्रोध शान्त हो जाता है तभी दूसरा उपदेश सुनाते हैं। शास्त्र मे भी कहा है कि क्रोध से भरा हुआ व्यक्ति उपदेश का पात्र नही है। श्री उत्तराध्ययन सूत्र मे कहा है–

अह पचहि ठाणेहि जेहि सिक्खा न लम्भई।
थम्भा कोहा पमाएण रोगेणलस्सएणय।।

अर्थात् पाच तरह के व्यक्ति, उपदेश के पात्र नही होते और शिक्षा ग्रहण नही कर सकते। ऐसे पाच तरह के व्यक्ति अभिमानी क्रोधी प्रमादी (दुर्व्यसनी) रोगी और आलसी हैं।

मदनरेखा ने जब देखा कि अब पति का क्रोध शात हुआ है तब वह फिर कहने लगी–नाथ ! मैंने आप से यह कहा है कि आपके सिर पर खडग मारने वाली मै हू, आपके भाई ने खडग का प्रहार नही किया है परन्तु आप इससे भी ऊचा विचार सोचिए। ज्ञानियो का कथन है कि जीव को सुख या दु ख होता है वह स्वय द्वारा किये गये कर्म के फलस्वरूप ही हे। अपने कृत्य ही अपने को सुख–दु ख दे सकते है दूसरा कोई न तो सुख ही दे सकता है न दुख टी और न इष्ट या अनिष्ट ही कर सकता है। अपनी आत्मा ही दु ख–सुख का कर्ता–भोक्ता है। दूसरा तो निमित्त मात्र हैं। निमित्त को यश अपयश देना यानी दूसरे को सुख या दुख देने वाला मान कर अच्छा या बुरा कहना और उससे राग–द्वेष रखना भूल हे। बल्कि ऐसा करना अपनी हानि करना है। इसलिए आप किसी दूसरे को न देखकर अपने को ही देखो। सिर पर खडग गिरने के लिए स्वय को ही अपराधी मानो और पहले पूरी तरह धर्म मे चित्त नही दिया उसी का यह परिणाम समझ कर धर्म मे चित्त दो जिससे आपको भविष्य मे ऐसे या किन्ही दूसरे कष्टो का सामना न करना पडे। यदि

आपने ऐसा न किया, तो आपके मस्तक पर इसी तरह न मालूम कितनी बार खड्‌ग गिरेगा।

नाथ! आपकी यह जीवन–लीला, कुछ ही समय की है। इस समय को अमूल्य मानकर ऐसा उपाय करो, जिससे आत्मा का कल्याण हो। इसके लिए आप न तो किसी के प्रति राग रखो, न द्वेष, किन्तु सब जीवो पर समभाव रखो। सब जीवो को अपना मित्र मानो। अठारह पापो का त्याग कर तथा अनेक पूर्वकृत पापो का पश्चात्ताप करके हृदय मे अर्हन्त देव निर्ग्रन्थ गुरु और केवली–भाषित धर्म को स्थान दो। ऐसा करने से आप सुगति प्राप्त करेगे। ससार–व्यवहार मे अनेक लोगो ने आपका अपराध किया होगा और आपने भी अनेको का। ऐसे लोगो को आप भी क्षमा प्रदान कीजिए तथा उनसे भी क्षमा माग लीजिये। ऐसा करने से आपके हृदय मे सब जीवो के प्रति मैत्री की भावना जाग्रत् होगी। मैत्री–भावना होने पर आप सब पापो से निवृत्त होकर निष्पाप बन सकेगे। इस प्रकार आप दुर्गति से बचने के लिए अब तक के पापो से निवृत्त होइये और सुगति प्राप्त करने के लिए हृदय मे धर्म को स्थान दीजिये। आत्मा और शरीर भिन्न हैं। शरीर की हानि से आत्मा की कोई हानि नही होती न शारीरिक लाभ से आत्मा का कोई हित ही हो सकता है। शरीर ओर आत्मा का सयोग आत्मा द्वारा किये गये पूर्व–कर्म से है। सयोग शाश्वत नही हे। कर्म नष्ट होते ही आत्मा शरीररहित हो जाता है। यानी आत्मा शरीर के बन्धन मे नही रहता। आत्मा अविनाशी है और शरीर नाशवान। आत्मा ने अब तक अनेक शरीर धारण किये हैं। जिन–जिन शरीरो मे आत्मा रही हे वे शरीर तो नष्ट हो गये परन्तु आत्मा वही है। जिस प्रकार वस्त्र बदले जाते हैं लेकिन वस्त्र त्यागकर दूसरा वस्त्र धारण करने वाला तो वही रहता है इसी प्रकार शरीर बदल जाते है परन्तु शरीर बदलने वाली आत्मा वही रहती हे। यह जानने के कारण ही ज्ञानी लोग मृत्यु स दु खी या भयभीत नही होते, किन्तु मृत्यु का स्वागत करते हैं। वे सोचते हें कि शरीर रक्त–मास का बना हुआ हे में (आत्मा) उससे भिन्न हू। ऐसे शरीर के छूटने से में दु ख क्यो करू! यह शरीर त्यागने पर यदि मुझे दूसरा शरीर धारण करना पडा तो उस दशा म भी दु ख का कोई कारण नही हे ओर शरीर धारण न करना पडा तब भी दु ख का कोई कारण नहीं हें। बल्कि शरीर धारण करना न पड यह तो सबसे अधिक सन्तोष की बात हे। हमारा प्रयत्न यही हो कि हम फिर शरीर धारण न करना पडे। ऐसा सोचकर ज्ञानी लोग मृत्यु का स्वागत करत ह। मृत्यु का एक उत्सव मानते हें। मृत्यु के पश्चात् पुन

शरीर धारण न करना पडे अथवा शरीर धारण करने पर दु ख न भोगना पडे, इसका प्रयत्न करते हैं। इसके लिए वे सब जीवो पर समभाव रखते हैं। सब जीवो को अपना मित्र मानते हैं। किसी के प्रति राग–द्वेष नहीं रखते और अपना चित्त अर्हन्त देव निर्ग्रन्थ गुरु तथा केवली–भाषित धर्म मे स्थापित करते हैं। आप भी अपनी आत्मा का कल्याण करने के लिए ऐसा ही कीजिये। पसन्नता की बात यह मानिये कि मस्तक पर खड्ग गिरते ही जीवन का अन्त नहीं हुआ किन्तु आत्मकल्याण करने वाली बातो को सुनने का अवसर मिल गया। इस थोडे से समय मे मैं आपको परलोक के लिए वैसा ही खर्च दे रही हू– जैसा खर्च एक सहधर्मिणी अपने पति को विदेश जाने के समय देती है। आपका अन्तकाल सन्निकट है। इसलिए मैं आपसे यही निवेदन करती हू कि आप पत्नी पुत्र परिवार या और किसी व्यक्ति अथवा वस्तु के प्रति राग न रखिये न किसी के प्रति द्वेष ही रखिये। किन्तु समाधिभाव रख कर देव गुरु धर्म मे चित्त लगाकर अपना मरण सुधारिये। जीवन की आशा और मरण के भय से सर्वथा मुक्त हो जाइये।

युगबाहु शात चित्त से मदनरेखा का उपदेश सुनता रहा। मदनरेखा का उपदेश समाप्त होने पर युगबाहु ने अपने दोनो हाथ जोडकर मस्तक पर लगाये और उस उपदेश को स्वीकार किया। मदनरेखा के उपदेश का उस पर उचित प्रभाव हुआ और उसने तडफडाते हुए प्राण त्यागने के बदले शाति से पाण त्यागे।

युगबाहु के पाण–पखेरू उड जाने के पश्चात् मदनरेखा सोचने लगी कि प्राणनाथ ने तो अपनी जीवन–लीला समाप्त करदी लेकिन अब मुझे क्या करना चाहिए ! मे पति की सेवा करने के लिए अपने प्राणो को अब तक सुखद मानती रही परन्तु अब वही मुझे दु खदायी जान पडते हैं। इसलिए अब इन पाणो को शरीर मे रहने देने से क्या लाभ! इसी पकार जिस सुन्दरता की पति तथा दूसरे लोग पशसा करते थे वह सुन्दरता निगोडी भी कैसी निकली! पति को पसन्न करने के लिए मै इस शरीर को सजाया करती थी परन्तु इस शरीर की सुन्दरता ने कैसा अनर्थ किया! इस सुन्दरता के कारण ही पवित्र जेठ के हृदय मे अपवित्रता आई पति का इस तरह अकाल मे निधन हुआ और अब सतीत्व भयग्रस्त हो रहा है। यह सब इस पापिनी सुन्दरता के कारण ही हुआ और हो रहा है। जिन पति के लिए यह सुन्दरता थी जब वे ही चले गये तब इस सुन्दरता की रक्षा क्यो की जाये? इसकी रक्षा करने पर तो विपत्ति आना एव शील नष्ट होने की आशका है। इतना ही नही किन्तु यदि मैंने इस

सुन्दरता की भी रक्षा की और शील बचाने का प्रयत्न किया तो मेरे पुत्र का जीवन सकट मे पड जायेगा। इसलिए यही अच्छा होगा कि मैं प्राणो का ही अन्त कर दू। ऐसा करने पर सुन्दरता भी नष्ट हो जावेगी, मेरे सतीत्व की भी रक्षा होगी और पुत्र का जीवन भी सकट मे नही पडेगा। परन्तु मैं प्राणो का अन्त करने के लिए भी स्वतन्त्र नही हू। मेरे गर्भ मे बालक है। मेरे प्राणो का अन्त होते ही गर्भ का बालक भी मर जायेगा। माता का कर्तव्य गर्भ के बालक की रक्षा करना है। अपने किसी कर्तव्य द्वारा गर्भस्थ बालक का नाश करना मातृकर्तव्य के सर्वथा विरुद्ध है। ऐसी दशा मे मुझे ऐसा कौनसा उपाय करना चाहिए जिससे मेरे सतीत्व की भी रक्षा हो पुत्र का जीवन भी सकट मे न पडे और गर्भ का बालक भी नष्ट न हो?

कुछ देर तक विचार करने के पश्चात् मदनरेखा ने वन मे भाग जाने का निश्चय किया। उसने सोचा कि वन मे भाग जाने पर मेरे पुत्र चन्द्रयश को भी सकट मे नहीं पडना पडेगा, मेरा शील भी सुरक्षित रहेगा और मेरे गर्भ के बालक की भी रक्षा हो सकेगी। वन मे भाग जाने के सिवाय, दूसरा कोई मार्ग नहीं, जिससे ये तीनो ही कार्य हो सके।

मदनरेखा ने इस प्रकार सोच–विचार कर वन मे भाग जाने का निश्चय किया। परन्तु इस निश्चय के साथ ही उसके हृदय मे यह विचार आया कि मैं यहा से निकलू कैसे? यदि मैं किसी से कहकर वन मे जाना चाहू तो भी न कोई ऐसा करने की सम्मति ही देगा और न इस कार्य मे मेरी सहायता ही करेगा! यदि मैं चुपचाप भागने का प्रयत्न करू तो पहरेदार लोग मुझे जाने नही देगे। हाय! राज–परिवार के लोगो का जीवन बन्दियो के जीवन से भी कुछ कम नही है। आज तक मैं राजघराने मे होने के कारण अपने को सुखी मानती थी, परन्तु आज मुझे ज्ञात हुआ कि राज–परिवार की स्त्रिया कारावास–यातना का जीवन व्यतीत करती हैं। वे किचित् मात्र भी स्वतन्त्र नही हैं।

मदनरेखा इस प्रकार की चिता मे मग्न थी कि इतने मे ही उसका पुत्र चन्द्रयश वहा आ गया। उसको जेसे ही यह ज्ञात हुआ कि उसके पिताजी के मस्तक पर उनके ज्येष्ठ भ्राता ने खड्गाघात किया है वैसे ही वह दौडा हुआ वन मे अपने पिता के निवास–स्थान पर आया और अपने साथ वेद्य आदि को भी लाया। परन्तु चन्द्रयश के पहुचने से पहले ही युगवाहु के प्राण–पखेरू उड चुके थे। अपन पिता का आहत शव देखकर चन्द्रयश वहुत ही दु खी हुआ। वह रोन लगा लेकिन मदनरेखा के समझाने से रोना त्याग

कर पिता के शव की रक्षा और अन्त्येष्टि आदि का प्रबध करने लगा। मदनरेखा ने देखा कि चन्द्रयश तथा दूसरे कुछ लोग तो शव के प्रबध मे लगे हुए हैं और शेष लोग रोने–धोने या इस दुर्घटना की चर्चा करने मे पडे हुए हैं। यह देखकर उसने सोचा कि भाग जाने के लिए यही अवसर उपयुक्त है। मुझे इस अवसर का उपयोग कर लेना चाहिए और भाग निकलने का प्रयत्न करना चाहिए।

वन की शरण

क्वचिद् भूमौ सय्या क्वचिदपि च पर्यंक शयन।
क्वचिच्छाकाहार क्वचिदपि च शल्योदन रुचि ।।
क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बर धरो।
मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुख न च सुखम्।।

—भर्तृहरि—नीतिशतक

कवि कहता है कि कार्यसिद्धि के लिए कमर कस लेने वाले धीर लोग सुख और दु ख दोनो ही को कुछ नहीं समझते। वे कभी जमीन पर सोते हैं कभी उत्तम पलग पर। कभी साग—पात खाते हैं कभी सुस्वादु दाल—भात। कभी दिव्य वस्त्र पहनते हैं कभी फटी—पुरानी गुदडी। वे लोग इनमे से किसी भी वात की परवाह नही करते। उन्हे तो अपना कार्य सिद्ध करना इष्ट होता हे।

कवि का यह कथन मदनरेखा के लिए विल्कुल ठीक ठहरता है। मदनरेखा युवराज्ञी तथा भावी रानी थी। वह किसी राजा की ही पुत्री रही होगी इसलिए उसका जीवन पितृगृह मे भी सुखपूर्वक वीता था और पतिगृह मे भी। अच्छे पलग पर सोना, श्रेष्ठतम भोजन करना सुन्दर तथा बहुमूल्य वस्त्र पहनना कर्णप्रिय गीत सुनना दास—दासिया से सेवित रहना सुग ध लेना एव प्रसन्नता म समय विताना, यह उराके जीवन का कार्यक्रम था। जिन लागा के पास एसी सामग्री नही हे उनका जीवन किस तरह व्यतीत होता हे इसका उसे अनुभव न था लकिन सतीत्व की रक्षा क लिए सतीत्व नष्ट न हा इसलिए उसने इन सव सामग्रिया का एक क्षण म ही त्याग दिया और विना दु ख मान उसने अपना रहन—सहन एक क्षण ग ही वदल डाला। वह सुन्दर महल म कोमल शय्या पर साना त्याग कर निर्जन आर भयानक वन मे भूमि पर विन विछान क ही साई। उसन स्वादिरट तथा षटरस भाजन

त्याग कर बनैले फलो से अपनी क्षुधा मिटाई। उसने सुन्दर, कोमल एव बहूमूल्य वस्त्राभूषण पहनना त्यागकर दासियो के पहनने योग्य सादे वस्त्र पहने। इस तरह उसने अपने सुखी माने जाने वाले जीवन को दु खी माने जाने वाले जीवन मे बदल डाला और यह सब किया अपने शील की रक्षा करने के लिए। इसी से उसने अपने उस दु खी माने वाले जीवन को दु खी नही, किन्तु सुखमय माना। उसने अपना जीवन किस प्रकार बदल डाला, वह राजसी सुख–सामग्री छोड कर विपन्नावस्था मे किस प्रकार पडी, उस अवस्था मे उसे किन–किन दुर्घटनाओ का सामना करना पडा और उन दुर्घटनाओ से उसकी रक्षा कैसे हुई आदि बाते इस प्रकरण से ज्ञात होगी।

मदनरेखा ने अपने सब आभूषण उतार डाले और राजसी वस्त्रो के बदले दासियो के–से वस्त्र पहन लिये। दासियो का–सा वेष बना कर मदनरेखा चुपचाप वन के लिए निकल पडी। उस समय उसने न तो पुत्र आदि का ममत्व किया न पति की मृत्यु के लिए दु ख ही किया, न अपरिचित वन से भय किया। उसका प्रधान लक्ष्य तो शील की रक्षा करना था। इसके लिए वह पहरेदारो की दृष्टि से बचकर बाहर निकल गई और अधेरी रात मे अकेली ही वन मे जाने के लिए पूर्व की ओर चल पडी।

रात का समय था, घने वन मे, चारो और सन्नाटा तथा अधेरा छाया हुआ था सूखे पत्तो की झुरमुराहट तथा बनैले पशुओ की भयानक आवाज के सिवा कोई शब्द सुनाई नही देता था। अधेरी रात मे उस वन मे जाने का किसी का साहस नही हो सकता था, परन्तु शील की रक्षा के लिए मदनरेखा उस भयकर वन मे अकेली चली जा रही थी। उसके हृदय मे किसी प्रकार का भय न था। उसको भय था तो केवल यही कि कही मेरी खोज मे कोई आता न हो या मैं रोक न ली जाऊ। इस भय से मुक्त होने के लिए वह पगडडियो पर चलना त्याग कर ऊबट चली।

मदनरेखा को चलते–चलते सवेरा हो गया। सवेरा होने पर भी उसने चलना बन्द नही किया। वह जिस ओर जा रही थी उसी ओर सामने खडा सिह दहाड रहा था। मदनरेखा सिह को देखकर तथा उसकी दहाड सुनकर भी डरी नही किन्तु सिह के सामने की ओर ही चली। वह सोचती थी क्रूर स्वभावी माना जाने वाला सिह केवल इस भौतिक शरीर को नष्ट कर सकता है मनुष्य के शीलादि आध्यात्मिक गुणो को नष्ट नहीं कर सकता। सिह उन मनुष्यो से तो अच्छा ही है जो शीलादि गुण नष्ट करते हैं। इतना ही नही शील के प्रताप से क्रूर पशु भी शान्त हो जाते है। फिर भी सिह मेरे साथ

क्रूर–व्यव्हार करेगा, तो मेरे इस शरीर को खा सकेगा। किन्तु मेरे आध्यात्मिक गुणो की तो रक्षा ही होगी। इसलिए मुझे सिह से डरना नहीं चाहिए।

इस प्रकार सोचती हुई मदनरेखा सिह के सम्मुख ही चली जा रही थी। उसके हृदय मे सिह से किचित् मात्र भी वैर–भाव न था। वह सिह को भी अपना मित्र ही मान रही थी। चलते–चलते उसने सामने उपसर्ग देखकर सागारी अनशन भी कर लिया और सब जीवो से क्षमा माग कर तथा सब जीवो को क्षमा देकर, अठारह ही पापो का परित्याग कर दिया। यह करके वह चलती हुई सिह के सामने पहुची। लेकिन सिह के बिलकुल समीप पहुच जाने पर भी सिह ने मदनरेखा पर आक्रमण नही किया अपितु प्रेम प्रदर्शित करने के लिए उसके सामने लीला करने लगा। सिह की यह चेष्टा देखकर सती ने अपने हृदय मे यही कहा कि यह अहिसा और शील का ही प्रताप है। मेरे लिए यह सिह भी अहिसक बन गया। इसके हृदय मे भी मेरे प्रति वैर नहीं रहा।

मदनरेखा आगे चली। सिह के उपसर्ग से निकल कर मदनरेखा ने अनशन पाला। चलने की थकावट के कारण एव समय अधिक हो जाने से, मदनरेखा को जोर की भूख लगी। उसने सोचा कि मैं सिह के उपसर्ग से भी वच गई हू तथा मणिरथ की ओर के भय से भी वच गई हू। मुझे शील की भी रक्षा इष्ट है ओर शरीर भी नष्ट नहीं करना है। शील की रक्षा के लिए शरीर नष्ट होना दूसरी वात हे लेकिन निष्कारण ओर गर्भ मे वालक होते हुए भी शरीर नष्ट करना महान् पाप है। इसलिए मुझे अपनी क्षुधा मिटानी चाहिए। क्षुधा मिटाने के लिए यहा वृक्षो मे फल लगे ही हैं।

मदनरेखा ने वनफल द्वारा अपनी क्षुधा मिटाई। वनफल खाकर ओर झरने का जल पीकर मदनरेखा फिर आगे की ओर चली। वह दिन–भर चलती ही रही। उसके लिए पेदल चलने का यह पहला ही अवसर था। जो व्यक्ति जीवन–भर कुछ दूर भी पेदल न चला हो उसके लिए ककरीले कटीले वन मे अकेले तथा अविराम चलना कितना कठिन होता हे? लेकिन मदनरखा वन की कठिन भूमि पर भी अकेली चली जा रही थी। उसको कभी पेदल नही चलना पडा था इसलिए उसके कोमल पेरा मे छाले पड गय थे फिर भी वह कहीं ठहरी नहीं न थकावट या श्रम स घवराइ ही ओर न उसको अपनी इस विपन्नावस्था के लिए किसी तरह का दु ख था।

मदनरखा दिन–भर चलती रही। सन्ध्या क समय वह वन क मध्य एक एस स्थान पर पहुची जिसक चारा आर वृक्षा पर लताए चढी हुई थी

इस कारण वह एक प्राकृतिक लतागृह बना हुआ था, सूर्य अस्त हो रहा था। मदनरेखा, थक भी बहुत गई थी। साथ ही, प्रतिक्रमण का समय भी हो गया था और मदनरेखा को जागते हुए भी बारह पहर बीत गये गये थे। इसलिए उसने उस लतागृह मे विश्राम करके रात व्यतीत करना उचित समझा। वह उस लतागृह मे गई। विश्राम के लिये स्थल स्वच्छ करके मदनरेखा प्रतिक्रमण करने लगी। प्रतिकरण समाप्त हो जाने पर मदनरेखा शील की रक्षा होने के कारण परमात्मा का चिन्तन करते हुए अपने मन मे कहने लगी– हे मन! अब भय की कोई बात नहीं है इसलिए स्थिर हो जा। देख, यह स्थान कैसा आनन्ददायक है ! इस स्थान को प्राप्त करके अब फिर तू उन महलो को याद मत करना, जो सदैव विषय–विकार की आग से जला करते हैं और जहा आध्यात्मिक गुणो के नाश का भय बना ही रहता है। तू इस पवित्र स्थान मे आनन्द मान तथा पक्षियो का अकृत्रिम एव निर्दोष कलरव सुनकर हर्षित हो।

इस प्रकार मन को धैर्य देकर मनदनरेखा, पचपरमेष्ठि की शरण ले, उस लतागृह मे सो गई। चारो ओर से उसके कानो मे वन्य पशुओ के भयकर शब्द पड रहे थे किन्तु मदनरेखा के हृदय मे उन शब्दो के कारण न तो भय ही हुआ, न यह विचार ही हुआ कि मैं पहले कैसे स्थान पर किस प्रकार सोती हुई कैसे–कैसे गीतवाद्य सुना करती थी, लेकिन आज कैसे स्थान पर किस प्रकार सोई हुई कैसे शब्द सुन रही हू! उसको, अपनी वर्तमान दशा के लिए किसी प्रकार का खेद या असन्तोष न था, अपितु शील की रक्षा होने से वह प्रसन्न थी।

थकी हुई मदनरेखा कुछ ही देर मे निद्राधीन हो गई। वह आधी रात तक तो गाढी निद्रा मे सोती रही लेकिन उसके पश्चात उदर मे प्रसवकालीन वेदना होने लगी। वेदना होने से मदनरेखा सावधान हो गई। स्त्रियो के लिए प्रसवकाल एक प्रकार का पुनर्जन्म होता है। उस विषम समय मे सेवा–सहायता करने के लिए गरीबो के यहा भी कोई–न–कोई उपस्थित रहता है और राज–परिवार की स्त्रियो के पास तो अनेक स्त्रिया रहती है तथा दूसरे वैद्य आदि भी रहते है लेकिन मदनरेखा के पास उस समय सेवा–सहायता के लिए कोई भी न था वह अकेली ही थी। मदनरेखा को उस विषमकाल और अपनी असहायावस्था के कारण दुख होना स्वाभाविक था परन्तु धर्म जानने वाली उस सती को कोई दुख नही हुआ न वह किसी प्रकार अधीर ही हुई। वह परमात्मा का स्मरण करती हुई धैर्यपूर्वक प्रसव–वेदना सहती रही।

रात का शेष भाग समाप्त हो रहा था। सूर्योदय की प्रतीक लालिमा पूर्व दिशा मे प्रकट हो चली थी। घोसलो मे और वृक्षो पर बैठे हुए पक्षीगण सूर्योदय की प्रतीक्षा मे चा–चू कर रहे थे। उसी समय मदनरेखा ने एक सर्वांग सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। पुत्र को देखकर मदनरेखा बहुत आनन्दित हुई। वह कहने लगी– हे वत्स! तुम्हारा जन्म इस शान्ति देने वाले वन मे हुआ है। यदि तुम नगर मे जन्मते और तुम्हारे पिता जीवित होते तो तुम्हारे जन्मोपलक्ष्य मे अपूर्व उत्सव मनाया जाता परन्तु इस वन मे तुम्हारा जन्मोत्सव प्राकृतिक रीति से हो रहा है। ये पक्षीगण स्वतन्त्रतापूर्वक इस तरह बोल रहे हैं जैसे तुम्हारे जन्मोपलक्ष्य मे गीत गा रहे हो और सूर्य अपनी लालिमा इस प्रकार फैला रहा है जैसे रग–गुलाल उड रहा हो। वहा, मेरी और तुम्हारी सहायता के लिए दूसरे लोग रहते, लेकिन यहा पवन सहायता कर रहा है, वृक्ष छाया कर रहे हैं, तथा चवर ढुला रहे हैं। यह स्थान कैसा सुखकारी है! इस स्थान के प्रताप से मेरे शील की, तुम्हारी एव तुम्हारे बडे भाई की भी रक्षा हुई है। हे वत्स! तुम बडे ही पुण्यात्मा हो। ऐसे पवित्र स्थान पर तथा शुद्ध व स्वतन्त्र वातावरण मे तुम्हारा जन्म होना एव तुम्हारे जन्म से पहले मेरे हृदय मे शील की रक्षा के लिए इतना बल–साहस आना, तुम्हारे पुण्यप्रताप को प्रकट करता है।

कुछ ही देर के पश्चात् सूर्य ने अपनी किरणे फैला दी। सब ओर प्रकाश ही प्रकाश हो गया। मदनरेखा ने विचार किया कि मुझे अशुचि मे ही नहीं पडी रहना चाहिए, बल्कि शुद्ध होना चाहिए। लेकिन मैं शुद्ध होने के लिए जल की खोज करू और शरीर शुद्ध करके लौटू तब तक इस बालक की रक्षा का क्या प्रबन्ध करना चाहिए? मेरे लिए इस बालक की रक्षा करना भी अतिआवश्यक है और शरीर शुद्ध करना भी। कुछ देर तक असमजस मे रहने के पश्चात् मदनरेखा ने पुत्र की रक्षा का उपाय निकाल लिया। उसने निर्णय किया कि मुझे अपनी साडी मे से कुछ वस्त्र फाडकर वृक्ष मे उस वस्त्र की झोली बाध उस झोली म बालक को सुला देना चाहिए। यह निर्णय कर मदनरेखा न अपनी पहनी हुई साडी मे से आवश्यकतानुसार वस्त्र फाडा और घन वृक्ष म ऐसी जगह उसकी झोली बाधी, जहा कोई भूचारी या गगनविहारी हिसक पशु–पक्षी न पहुच सके। यह करके मदनरेखा न उस झोली म अपने नवजात पुत्र का सुला दिया। यद्यपि पुत्र–स्नेह क कारण मदनरेखा का चित्त अपन बालक का छोडकर जान का नही हो रहा था परन्तु शरीर की शुद्धि

भी आवश्यक थी इसलिए वह पुत्र का मुख चूमकर एव उसको पचपरमेष्ठि की शरण मे छोडकर जल की खोज मे चली। वह अशुचि धोने के लिए जल की खोज मे अवश्य गई, लेकिन उसका मन अपने नवजात शिशु मे ही लगा हुआ था इसलिए वह घूम–घूम कर उसकी ओर देखती जाती थी।

थोडी दूर चलने पर उसे एक सरोवर दिखाई दिया। वह जल्दी से उस सरोवर पर गई। उसने अपने वस्त्र तथा शरीर को धोया। शरीर और वस्त्र साफ करके मदनरेखा अपने पुत्र के पास आने के लिए शीघ्रता से लौट पडी। वह चाहती तो यही थी कि मै अपने पुत्र के पास शीघ्र ही पहुच जाऊ और इसके लिए उसने अपनी शक्ति–भर शरीर एव वस्त्र शीघ्रता से स्वच्छ किये परन्तु प्रकृति को यह स्वीकार न था कि मदनरेखा अपने नवजात शिशु के पास पहुचे। इसलिए वह जैसे ही सरोवर के जल से बाहर निकली वैसे ही वहा पर एक जगली हाथी आ गया। वह हाथी जगली था और मदमस्त भी था। साथ ही उस तालाब पर किसी मानव–मानवी को भी शायद ही कभी देखा होगा। इसलिए मदनरेखा को देखकर वह चिढ गया। वह मदनरेखा को पकडने के लिए लपका। मदनरेखा ने भी हाथी को अपनी ओर लपकते हुए देखा। वह पाणरक्षा के लिये साहस और बलर्पूवक भागी। हाथी भी उसके पीछे–पीछे दौडा। मदनरेखा को एक तो इस तरह दौडने–भागने का अभ्यास न था। दूसरे वह गत दिवस बहुत चली थी इसलिए थकी हुई थी। तीसरे कुछ ही समय पहले उसने पुत्र–प्रसव किया था इससे उसके शरीर मे अशक्तता भी थी। इन कारणो से वह अधिक तेज भागने मे समर्थ न हुई। अपने पीछे हाथी को आता देखकर मदनरेखा अपने मन मे कहने लगी कि अब मै और कहा तक भाग सकती हू और इस कृतान्त के समान पीछे आते हुए हाथी से कैसे बच सकती हू! जान पडता है कि यह हाथी मेरा काल ही है जो मेरे प्राण लेकर ही शात होगा। इसलिए अब अधिक भागना या इससे बचने की आशा करना व्यर्थ है। अब तो मुझे परमात्मा की शरण जाकर यह शरीर हाथी को सोप देना चाहिए।

हो गई। इतनी ऊचाई से यदि वह पृथ्वी पर गिरती तब तो उसके शरीर का चूरा ही हो जाता लेकिन उसका आयुर्बल शेष था और उसके द्वारा आगे दूसरे सत्कार्य होने थे इसलिए वह पृथ्वी पर नही गिरने पाई। जहा यह घटना हुई थी उसी ओर से मणिप्रभ नाम का एक विद्याधर अपने विमान मे बैठा हुआ मुनि–दर्शन के लिए जा रहा था। उसने हाथी द्वारा उछाली गई मदनरेखा को देखा। विद्याधर के हृदय मे मदनरेखा के प्रति करुणा जाग्रत् हुई। उसने सोचा कि यह स्त्री यदि पृथ्वी पर गिर पडी तो अवश्य ही मर जावेगी। इसलिए इसको पृथ्वी पर गिरने से पहले ही बचा लेना चाहिए। मैं मुनि–दर्शन के लिए जा रहा हू। मुनि दूसरो पर दया करने एव उनकी रक्षा करने का ही उपदेश देते हैं, जिसे मैंने कई बार श्रवण किया है। उस उपदेश के अनुसार व्यवहार करने का अवसर उपस्थित होने पर भी, यदि मैं इस स्त्री की रक्षा करने की ओर से उदासीन रहू तो मुनि–दर्शन के लिए जाने तथा मुनि का उपदेश श्रवण करने से क्या लाभ?

इस प्रकार विचार कर और करुणा की भावना से प्रेरित होकर मणिप्रभ विद्याधर ने अपना विमान पृथ्वी की ओर गिरती हुई मदनरेखा के नीचे करके मदनरेखा को यत्नपूर्वक सम्हाल लिया व पृथ्वी पर नही गिरने दिया। मदनरखा उस समय मूर्च्छित अवस्था मे ही थी। विद्याधर ने पानी आदि द्वारा मदनरेखा की मूर्च्छा दूर की। जब मदनरखा सुध मे आई तो उसने अपनी आख खोल दी। मदनरेखा की बडी–बडी सुन्दर आखे देखकर मणिप्रभ विद्याधर के हृदय की करुणा एकदम विलीन हो गई और उस करुणा का स्थान विषय–भाग ने ले लिया। वह अपने मन मे कहने लगा कि आज मुझे अनायास ही यह स्त्री–रत्न प्राप्त हुआ हे। यह मेरा केसा सद्भाग्य ही हे। म मुनि–दर्शन क लिए जा रहा था परन्तु मुनि–दर्शन के फल–रूप यह सुन्दरी मुझे पहल ही प्राप्त हा गई हे। मुझ इस रूपराशि का अपनी बनाकर इसक साथ सुखभोग करना चाहिए और अपना जीवन सफल बनाना चाहिए।

एक आर तो मणिप्रभ विद्याधर मदनरेखा के विषय म दुर्भावनापूर्वक इस प्रकार विचार कर रहा था तथा दूसरी ओर मदनरखा कुछ और ही साच रही थी। मूर्च्छा दूर हान पर तथा आख खुलन पर मदनरखा न स्वय का एक विमान म एव अपन समीप एक अपरिचित पुरुष का दखा। यह दखकर मदनरखा इस आशका स भयभीत हुइ कि मैं फिर किसी सकट म ता नहीं पड गई? यह पुरुष न मालूम कान हे! कहीं यह भी मर सतीत्व का ग्राहक न बन जाय!

मदनरेखा को एक ओर तो इस प्रकार सतीत्व की चिता हुई दूसरी ओर उसे यह विचार भी हुआ कि यदि यह पुरुष मेरे प्रति भ्रातृभाव रखकर मेरा रक्षक बन जाये तो मेरा भय भी मिट जावे और मैं विपत्ति से छुटकारा भी पा जाऊ! इसके लिए यही अच्छा होगा कि यह अपना कोई विचार पकट करे उससे पहले ही मैं ऐसी भूमिका बना दू जिससे या तो इसके हृदय मे किसी पकार की दुर्भावना ही पैदा न हो या यह अपनी दुर्भावना प्रकट न कर सके। मैं इस समय एकान्त मे पर–पुरुष के समीप हू। शील–रक्षा की दृष्टि से यह स्थिति भयावह है लेकिन जब ऐसा अवसर आ ही पडा है तब मेरे को ऐसा पयत्न करना चाहिए कि जिससे मेरा सतीत्व सुरक्षित रहे।

इस प्रकार सोच–विचार कर मदनरेखा ने मणिप्रभ विद्याधर से कहा– भाई! मुझ पर आपका बहुत उपकार है। यदि आपने मेरी रक्षा न की होती तो मै पृथ्वी पर गिरी होती और मेरी यह जीवन–यात्रा अवश्य ही समाप्त हो जाती। लेकिन आपने मुझे मरने से बचा लिया। इतना ही नही किन्तु आपने मेरी मूर्च्छा भी मिटाई। मैं इस उपकार के लिए आपकी चिरऋणी हू कि मुझे इस विपन्नावस्था मे आप जैसा युयोग्य तथा प्राणरक्षक भाई मिला।

मणिपभ विद्याधर के हृदय मे मदनरेखा के प्रति जो दुर्भावना उत्पन्न हुई थी उसके कारण वह यह आशा रखता था कि यह विपत्ति की मारी स्त्री इस निर्जन वन मे अकेली आ पडी है और मेरे द्वारा इसके प्राणो की रक्षा हुई है इसलिए विपत्ति से छुटकारा पाने तथा अपना भविष्य सुखमय बनाने के लिए स्वय ही मुझ से यह प्रार्थना करेगी कि आप मुझे अपनी पत्नी बनाकर दु ख से मुक्त कीजिये। लेकिन जब उसने मदनरेखा के मुह से अपने लिए कहा गया 'भाई' शब्द सुना तब उसे बहुत ही निराशा हुई। वह मदनरेखा से कहने लगा– हे सुन्दरी! तुम किसको भाई बना रही हो इसका विचार करो। तुम मुझको नही जानती हो इसलिए तुमने ऐसा कहा है। मै तुमको अपना परिचय देता हू जिसे सुनकर तुम स्वय ही निर्णय कर लोगी कि तुम्हारे लिए मुझे भाई बनाना अच्छा है या पति बनाना।

अपनी पत्नी बनाने का विचार कर रहा हू। तुम दूसरे सब विचार और दूसरी बातो को छोडकर, मुझे अपना पति बनालो तथा सुखपूर्वक मेरे भव्य महल मे निवास करो।

विद्याधर का कथन सुनकर मदनरेखा समझ गई कि मैं फिर सकट मे आ पडी हू। वह अपने मन मे कहने लगी कि शील की रक्षा के लिए मैं घर त्याग कर वन मे आई परन्तु यहा भी मेरा सतीत्व सुरक्षित नही है। कुए से निकल कर गड्ढे मे गिरने की कहावत के अनुसार उस दु ख से छूट कर मै फिर इस दु ख मे पड गई हू। जान पडता है कि विपत्ति उसी प्रकार मेरे पीछे पडी हुई है, जिस तरह भागने पर भी मृगी के पीछे बधिक दौडता है। मैं मणिरथ के पजे से छूटकर इस मणिप्रभ के पजे मे फस गई हू। इस तरह की प्राणरक्षा की अपेक्षा तो यही अच्छा था कि मैं पृथ्वी पर गिर जाती और मेरा यह शरीर नष्ट हो जाता। यदि ऐसा होता तो मुझे फिर तो इस सकट मे नही पडना पडता तथा सतीत्व नष्ट होने के भय से भी मुक्त हो जाती। यह चिन्ता तो न रहती कि वृक्ष मे झोली बाधकर जिसे सुला आई हू, उस मेरे नवजात शिशु का क्या होगा? लेकिन अभी मुझे न मालूम कैसे–कैसे सकट झेलने है इसी से मुझ मरती हुई को भी इस विद्याधर ने बचा लिया है। इस विद्याधर ने पहले मेरा सोन्दर्य नही देखा था इसलिए करुण–भावना से प्रेरित होकर मुझे बचाया, परन्तु मेरा सौन्दर्य देखने के पश्चात् इसके हृदय की करुणा का स्थान दुर्भावना ने ले लिया है। मेरे इस शारीरिक रूप–सौन्दर्य ने कैसे–कैसे पवित्र पुरुषो मे विकार उत्पन्न किया है? मेरे रूप–सौन्दर्य के कारण ही मेरे जेठ के हृदय मे विकृति उत्पन्न हुई तथा इस दयालु विद्याधर के हृदय की दयालुता भी मेरे रूप–सौन्दर्य ने ही नष्ट की है। इस रूप–सौन्दर्य के कारण ही मुझे अभी न मालूम कैसे–कैसे कष्ट सहने हैं। कुछ भी हो मैं अपना सतीत्व कदापि नष्ट नही होने दूगी। मै अपने प्राण देकर भी अपने सतीत्व की रक्षा करूगी। मणिरथ ने मेरे पति का शरीर नष्ट किया तो मणिप्रभ मेरा शरीर नष्ट करेगा। इससे अधिक क्या हो सकता है। यह भौतिक शरीर अन्त मे तो नष्ट होना ही है। फिर शील की रक्षा के लिये इसका नष्ट होना क्या बुरा है। मै शील के सामने न तो अपने प्राणो की ही अपेक्षा कर सकती हू और न अपने उस नवजात पुत्र की ही जिसे मै वृक्ष की डाली मे झोली बाध कर सुला आई हू। यद्यपि अपने बालक की मैं रक्षा ही चाहती हू और

उसकी रक्षा के लिए अपने प्राण तक दे सकती हू, परन्तु शील के सन्मुख मैं उसे भी उपेक्षणीय मानती हू।

इस प्रकार का निश्चय करने के पश्चात् मदनरेखा ने मणिप्रभ विद्याधर से कहा– वीर! आप ऐसा क्या कह रहे है! मेरे सबध मे आपको ऐसा कहना उचित नही है। मैं तो आपको भाई ही कह रही हू, परन्तु वास्तव मे आप मेरे पिता है तथा मैं आपकी पुत्री हू। पिता सन्तान को जन्म देने उसकी रक्षा करने और उसको पालने–पोषने के कारण 'पिता' कहलाता है तथा जो उसकी सन्तान है, उसके प्रति वह पिता कहलाने वाला व्यक्ति सद्भाव ही रखता है दुर्भाव नही लाता। आपने मुझे जीवनदान दिया है, मेरी रक्षा की है, मुझे मरती हुई को बचाया है इसलिए आप भी मेरे पिता हैं और मैं आपकी पुत्री हू। आप के प्रति मुझको वे ही भाव रखने चाहिए जो भाव पुत्री के हृदय मे पिता के प्रति होते है। इसी प्रकार आपको भी मेरे प्रति वैसा ही भाव रखता उचित है जैसा भाव पिता का अपनी पुत्री के प्रति होता है। आप अपने हृदय मे मेरे पति किचित् मात्र भी दुर्भावना न लाइये। मुझे बहन या पुत्री ही मानिये।

मदनरेखा के कथन को सुनकर मणिप्रभ विद्याधर कुछ रुष्ट होकर कहने लगा– तुम इस तरह की बाते करना त्याग कर जैसा मैं कहता हू वैसा ही करो। तुमको मै अपनी बहन या पुत्री बनाना नही चाहता, किन्तु अपनी पटरानी बनाना चाहता हू। तुम मेरे इस कथन को प्रसन्नता से स्वीकार कर लो। इसी मे तुम्हारा हित है। तुम मेरे साथ चलो। मैं तुम्हे किसी तरह का कष्ट नही होने दूगा किंतु तुम्हे प्रसन्न रखना अपना कर्तव्य मानूगा और तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कोई भी कार्य नही करूगा। इस समय तुम सर्वथा मेरे अधीन हो। तुम्हे मेरी बात माननी ही पडेगी फिर तुम सीधी रीति से ही मेरा कथन क्यो नही मान लेती हो? चलो मेरे साथ मेरे घर चलो और मेरी पटरानी बनकर रहो। तुमको मै हृदय से चाहता हू। तुम अपने लिए यह सौभाग्य की बात मानो कि तुम्हे मै अपनी पटरानी बना रहा हू।

यह कहकर मणिप्रभ ने अपने विमान का मुह वैताढ्यगिरि की ओर घुमाया। मदनरेखा ने जब देखा कि यह इस समय मोह–माया से भरा हुआ है और समझाने से समझने वाला नही है तथा इस समय इससे कुछ अधिक कहना भी व्यर्थ है तब उसने दूसरे मार्ग का सहारा लिया। उसने मणिप्रभ से कहा– आप यदि पिता या भाई सम्बोधन से रुष्ट होते है तो मैं

आपको पिता या भाई न कह कर राजा कहती हू और आपसे पूछती हू कि हे राजन्! आप मेरे से घर चलने के लिए कहते हैं परन्तु यह तो वताइये कि इस समय आप कहा जा रहे थे और जहा जा रहे थे, वहा अव क्यो नहीं जा रहे हैं? वापस घर को क्यो लौट रहे हैं?

मदनरेखा के मुह से अपने लिए 'राजा' शब्द सुनकर मणिप्रभ विद्याधर प्रसन्न हुआ। उसको मदनरेखा की ओर से इस वात की आशा हुई कि अव यह मुझे स्वीकार कर लेगी। उसने प्रेमपूर्वक मदनरेखा से कहा– हे प्राणप्यारी! मेरे पिता मणिचूड राजा अपना राजपाट मुझे सौंपकर सयम मे प्रव्रजित हुए हैं। आज मेरे भाई से मैंने सुना कि मेरे सयमधारी पिता सुविहित सयमी हैं और उन्हे चार ज्ञान भी प्राप्त हुए है। यह सुनकर मैं पिता के दर्शन करने के लिए जा रहा था। सौभाग्य से मार्ग मे तुम मिल गई। तुम्हारा शरीर वहुत कृश तथा अशक्त है इसलिए मैंने यह विचार किया है कि तुमको महल मे छोड आऊ जहा तुम्हारे शरीर का उपचार हो और फिर मुनि के दर्शन करने के लिए जाऊ।

मणिप्रभ विद्याधर का कथन सुनकर मदनरेखा इस विचार से प्रसन्न हुई कि यद्यपि इस समय यह कामान्ध होकर धर्म को भूल रहा है फिर भी यह कुलीन है। इससे मेरे लिए भय की कोई वात नही है। पथभ्रष्ट कुलीन व्यक्ति को पथ पर लाना कुछ कठिन नही होता। जिसके पिता सुविहित साधु और चार ज्ञान के धारक हैं उस कुलीन व्यक्ति की दुर्वुद्धि मिटाना वहुत ही सरल है।

इस प्रकार विचारती हुई मदनरेखा ने मणिप्रभ से कहा कि हे महाराज! आपके पिता सुविहित अनगार और चार ज्ञान के धारक हैं यह जानकर मुझे वहुत ही प्रसन्नता हुई। मेरा हृदय हर्षित हो उठा है। इस समय मेरे लिए आप ही आधार हैं इसलिए यदि आप मेरी एक इच्छा पूर्ण करना स्वीकार करें तो मैं आपके सामने अपनी इच्छा प्रकट करू?

मदनरेखा का यह कथन सुनकर मणिप्रभ विद्याधर वडा प्रसन्न हुआ कि अव यह मेरी ओर आकर्षित हुई है इसी से यह अपने लिए मुझे ही आधार मान रही है एव मेरे द्वारा अपनी इच्छा पूर्ण करना चाहती है। वास्तव मे स्त्रिया प्रसन्नतापूर्वक किसी पुरुष की ओर तभी आकर्षित होती हैं जव उस पुरुष द्वारा उनकी इच्छा पूर्ण कर दी जाती है। यह जव मेरे को आधार मानकर मेरे द्वारा अपनी इच्छा पूर्ण करना चाहती है तो मुझे यह मान लेना चाहिए कि यह मेरी हो चुकी। इसके कथन से स्पष्ट है कि यह मेरी

पटरानी बनना स्वीकार करती है, लेकिन इस प्रतिबन्ध के साथ कि मैं इसकी इच्छा पूर्ण कर दू।

प्रसन्न होते हुए मणिपभ विद्याधर ने मदनरेखा से कहा– तुम्हारी क्या इच्छा है? तुम अपनी इच्छा नि सकोच पकट करो। तुम यह विश्वास रखो कि मेरे सामने पकट करने पर तथा मुझ से पूर्ण करने की पार्थना करने पर तुम्हारी इच्छा कदापि अपूर्ण नही रह सकती।

मणिपभ द्वारा इस पकार विश्वास दिलाये जाने पर मदनरेखा ने उससे कहा– आपसे मै केवल यही चाहती हू कि आप मुझे भी अपने मुनिव्रतधारी पिता के दर्शन का दान दीजिये। मेरा हृदय मुनि–दर्शन करने के लिए बहुत उत्कण्ठित हो रहा है। मैं विश्वास करती हू कि आप मेरी यह इच्छा अवश्य ही पूर्ण करेगे। यह पार्थना करने के साथ ही मै अपना यह निश्चय सुना देना भी उचित समझती हू कि यदि मेरी यह इच्छा पूर्ण न हुई मुझे उन मुनि के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त न हुआ तो उस दशा मे मैं अपना जीवन भी नही रख सकती।

मदनरेखा की इच्छा और उसका निश्चय सुनकर मणिप्रभ विद्याधर और अधिक प्रसन्न हुआ। वह अपने मन मे सोचता था कि इसकी यह इच्छा पूर्ण करना बहुत सरल है। इस इच्छा की पूर्ति होते ही यह अवश्य ही मेरी पत्नी बन जायेगी। इच्छा पूर्ण हुए बिना स्त्रिया प्रसन्न भी नही हुआ करती है। इसलिए इसको प्रसन्न करने के लिए मुझे इसकी इच्छा पूर्ण कर इसे मुनि के दर्शन करा देना चाहिए। इस कार्य मे मुझे देर भी क्या लग सकती है ? मेरे पास विमान है। मै इसको मुनि के दर्शन कराने के थोडी ही देर मे लौट आऊगा और फिर इसको अपनी पत्नी बनाकर इसके साथ सुख–भोग करूगा।

मणिप्रभ तो इस पकार सोच रहा था लेकिन मदनरेखा यह सोच रही थी कि वह विद्याधर किसी तरह एक बार मुझे लेकर उन सुविहित मुनि के पास तक तो चले। फिर तो यह मुनि के उपदेश से सुधरकर कर मार्ग पर आ ही जायेगा। इस पकार दोनो अपना–अपना दाव देख रहे थे और अपने–अपने विचार से प्रसन्न हो रहे थे।

मणिप्रभ विद्याधर ने मदनरेखा से कहा कि तुमने जो इच्छा की है वह साधारण ही है। मै यदि तुम्हारी यह इच्छा भी पूर्ण न करूगा तो फिर और किसकी इच्छा पूर्ण करूगा? लो मै अभी थोडी देर मे तुम्हे मुनि के दर्शन

कराये देता हू और फिर लौट कर अपने महल मे सुखमय जीवन व्यतीत करेगे।

मदनरेखा सहित विमान मे बैठा हुआ मणिप्रभ विद्याधर मुनि का दर्शन करने के लिए चल पडा। मार्ग मे दोनो ही व्यक्ति अपनी–अपनी भावना के अनुसार विचार करते जाते थे तथा मन ही मन प्रसन्न होते जा रहे थे।

थोडी ही देर मे विमान वहा जा पहुचा जहा राजा मणिप्रभ के सयमधारी पिता विराजते थे। उस स्थान पर पहुच कर मणिप्रभ विद्याधर और मदनरेखा विमान से उतरे। उस समय मदनरेखा तो इस विचार से प्रसन्न थी कि अव मैं भय–मुक्त हुई हू, मेरे सतीत्व की रक्षा हुई है और मणिप्रभ इस विचार से प्रसन्न था कि मैंने इस सुन्दरी की इच्छा पूर्ण कर दी है इसलिए अव यहा से लौटकर मैं इसे अपनी पत्नी बना इसके साथ सुखपूर्वक दाम्पत्य जीवन बिताऊगा तथा अपना जीवन सफल करूगा।

सन्त समागम

सन्त–समागम की प्रशसा सभी शास्त्र, सभी ग्रन्थ और सभी विचारक करते हैं। सन्त–समागम को पारस–लोह स्पर्श से भी अधिक महत्त्व दिया गया है। सन्तो को पारस से भी बढकर कहने वाले यह युक्ति देते हैं कि पारस के स्पर्श होने पर लोह भी सोना ही बनता है पारस नही बनता लेकिन सन्तो के समागम मे आने वाला व्यक्ति सन्त बन जाता है। तुलसीदासजी ने सन्त समाज को तीर्थराज का रूपक देते हुए कहा है–

सज्जन कल पेखिय ततकाला काक होहि पिक बकहु मराला।
सुनि अचिरज करै जनि कोई सत्सगति महिमा नहि गोई।।

अर्थात सन्त–समाज–रूपी तीर्थराज मे मज्जन करने का फल तत्काल दिखाई देता है। इस तीर्थराज मे मज्जन करने वाला यदि कौए के समान है तो वह कोयल की तरह का हो जाता है और यदि बगुले की तरह का है तो हस की तरह का हो जाता है। इस विषय मे किसी को आश्चर्य नही करना चाहिए। क्योकि सत्सग की महिमा ऐसी ही है जो छिपी हुई नहीं है।

सत्सग की इस प्रकार प्रशसा करके तुलसीदाजी यह बताते है कि सत्सग मे ऐसी क्या विशेषता है जिससे कौए की तरह का मनुष्य कोयल की तरह का और बगुले की तरह का मनुष्य हस की तरह का हो जाता है। इसके लिए वे कहते हैं –

बिनु सत्सग विवेक न होई।

उनका कथन है कि सत्सग के बिना विवेक नही होता। जब तक विवेक नही है तभी तक मनुष्य कोए या बगुले की तरह का रहता है लेकिन जब सत्सग से विवेक होता है अविवेक मिट जाता है तब कोए और बगुल की तरह के मनुष्य का कोयल और हस की तरह का होना स्वाभाविक है।

इस कथन का यह अर्थ नही है कि मनुष्य आकृति और रग मे कौए या बगुले की तरह का होता है किन्तु कौए, बगुले कोयल और हस की उपमा देकर यह बताया गया है कि दुर्गुणी व्यक्ति सत्सग के प्रभाव से सद्गुणी बन जाता है।

उक्त कथन इस प्रकरण से पूरी तरह सिद्ध होता है। मणिप्रभ विद्याधर मे पर–स्त्री को अपना बनाने का दुर्गुण था। वह मदनरेखा के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर कैसा अनुचित कार्य करना चाहता था यह बात पिछले प्रकरण मे बताई गई है। उसमे जो दुर्गुण था या वह जो–कुछ करना चाहता था वह सब अज्ञान के कारण। वह इस सबध मे अपने हिताहित और कर्तव्याकर्तव्य को नही जानता था। मदनरेखा सब–कुछ जानती थी कि वह सतीत्व की रक्षा के लिए ही वन मे आई थी। इसलिए उसका मणिप्रभ के विचार से विरुद्ध विचार रखना स्वभाविक था लेकिन वह महान् मोह मे गिरे हुए मणिप्रभ पर अपने विचारो का प्रभाव डालने और अविवेक मिटाने मे असमर्थ रही। फिर भी–

विधिवश सुजन कुसगति परही।
फणि मणि सम निज गुण अनुसरही।।

अर्थात् यदि योगायोग से सज्जन लोग कुसगति मे पड जाते हैं, तो उस समय भी वे अपने सद्गुणो की उसी प्रकार रक्षा करते हैं जिस प्रकार साप के साथ रहने वाली मणि अपना गुण नही जाने देती, किन्तु सुरक्षित रखती है।

इसके अनुसार मदनरेखा ने मोहग्रस्त मणिप्रभ के पजे मे फसकर भी अपने सतीत्व की रक्षा की और उसकी दुर्भावना मिटाने तथा उसका मोह हटाने के लिए उसने उसको सन्त–समागम कराने का उपाय किया। मदनरेखा द्वारा किया गया उपाय सफल भी हुआ एव सन्त की सेवा मे पहुचने पर और उनका सदुपदेश सुनने पर मणिप्रभ का अज्ञान किस तरह मिट गया उसका दुर्गुण किस प्रकार नष्ट हो गया तथा वह कैसा सद्गुणी एव सदाचारी बन गया आदि बात इस प्रकरण मे बताई गई हैं।

परस्पर विरुद्ध भावना के रग मे रगे हुए मणिप्रभ और मदनरेखा दोनो उन सुविहित तथा अतिशय ज्ञानधारक मुनि की सेवा मे उपस्थित हुए। दोनो उन मुनि की विधिपूर्वक वन्दना करके यथायोग्य स्थान पर बैठ गये। मुनि का दर्शन करके मदनरेखा को सीमातीत प्रसन्नता हुई। वह अपने मन मे कहने लगी कि आज का दिन कैसा अच्छा है जो मुझे इस कष्ट के समय

मे भी इन मुनि का दर्शन हुआ। इस मुनि के दर्शन की इच्छा मात्र से ही मेरा उस सकट से उद्धार हुआ है जो वन मे विद्यमान था तो अब मैं मुनि की सेवा मे ही आ गई हू, इसलिए अब मेरा सब दु ख उसी तरह चला गया है जिस पकार कल्पवृक्ष या चिन्तामणि रत्न पाप्त हो जाने पर सब भौतिक दु ख मिट जाते हैं। अब तो मेरी यही भावना है कि मेरे इस भाई मे जो दुर्बुद्धि आ गई है वह मिट जाये और यह मुझे अपनी बहन माने। मुझे विश्वास है कि मुनि की सेवा मे आ जाने से इसकी भावना अवश्य ही बदलेगी और यह सद्बुद्धि धारण करेगा। अच्छा हुआ, जो यह भाई मेरी बात मानकर इन मुनि की शरण मे आ गया। इस भाई मे विकार आने पर जिस तरह इसको मुनि का दर्शन हो गया उसी तरह मेरे जेठ मे जिस समय विकार आया था उस समय यदि उन्हे भी ऐसे मुनि का दर्शन हो जाता तो उनके द्वारा वह अनर्थ क्यो होता? परन्तु वह अनर्थ अवश्यभावी था इसलिये उन्हे मुनि का दर्शन नही हुआ। जो होना था वह हुआ अब तो मैं यही चाहती हू कि इस भाई की भावना शुद्ध हो तथा यह सुमार्ग पर आवे।

मुनि सेवा मे बैठी मदनरेखा तो इस प्रकार का विचार कर रही थी और मणिप्रभ विद्याधर यह सोच रहा था कि मैं कब यहा से जाऊ तथा इस अप्सरा जैसी स्त्री को अपनी पत्नी बनाकर इसका आलिगन करू। उधर चार ज्ञान के धारक मुनि मदनरेखा का पूर्व एव वर्तमान वृत्तात अपने ज्ञान से जान रहे थे और मदनरेखा के पति मणिप्रभ विद्याधर की दुर्भावना उन मुनि से छिपी हुई नही थी। उन्हे यह भी ज्ञात हुआ कि यह सती अपने सतीत्व की रक्षा के लिए मणिप्रभ को यहा लाई है तथा चाहती है कि मणिप्रभ की भावना शुद्ध हो जाये। यद्यपि मणिप्रभ विद्याधर मदनरेखा को लेकर अपने घर जाने के लिए उत्सुक हो रहा था परन्तु वे मुनि उसके पिता थे इसलिए वह वसा नही कर सका। इतने मे ही उन मुनि ने पसगोचित उपदेश पारम्भ किया। उन चार ज्ञान के धारक मुनि के मर्मस्पर्शी उपदेश का मणिप्रभ विद्याधर के हृदय पर यथेष्ट पभाव पडा। वह कुलीन था इसलिए मुनि का उपदेश सुनकर उसके हृदय की दुर्भावना उसी पकार मिट गई जिस पकार सूर्योदय से घना अधकार भी मिट जाता है। वह मदनरेखा के पति किये गये अपने व्यवहार के लिए मन ही मन पश्चात्ताप करने लगा तथा कहने लगा कि आज मैं किस तरह पतित हो रहा था। मै खेचर हू और यह भूचरी है फिर भी मेरे हृदय मे इसके पति दुर्भावना हो आई और मै धर्म एव मर्यादा का उल्लघन करने के लिए तैयार हो गया बल्कि इस सती ने तो अपने सतीत्व की रक्षा के लिए

मुझे भाई और पिता ही कहा, परन्तु मुझे इसको वहन वनाना पसद नहीं था। मैं तो इसे अपनी पत्नी बनाना चाहता था। यदि मेरी भावना की तरह इस सती की भी भावना खराव हो गई होती तो मैं पतित होकर अपने कुल और धर्म को कलकित कर ही देता! लेकिन यह अपने व्रत–नियम पर दृढ रही तथा इसने जब मेरी दुर्भावना मिटती न देखी तो मुझे यहा ले आई। इस प्रकार इस सती ने मुझे भी पतित होने से बचा लिया और अपने सतीत्व की भी रक्षा की। मैंने तो इसे पृथ्वी पर गिरने से ही बचाया परन्तु इसने तो मुझे नरक मे गिरने से बचाया है। यदि यह सती मुझे इन मुनि के पास न ले आती तथा इन मुनि ने यह उपदेश न दिया होता तो मेरे पतन मे शेष बचा ही क्या था?

ऐसा विचार कर मणिप्रभ विद्याधर हाथ जोडकर मुनि के सामने खडा हुआ और नम्रतापूर्वक प्रार्थना करने लगा– हे प्रभो! मेरे साथ आपका दर्शन करने आई हुई इस सती के प्रति मेरे हृदय मे दुर्भावना पैदा हुई थी। मैं इसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर स्वय पथभ्रष्ट होना चाहता था और इस सती को भी पथ–भ्रष्ट करना चाहता था। आपके सदुपदेश से मेरी वह दुर्भावना नष्ट हुई है। मुझमे जो दुर्भावना आई इसके लिए मुझे पश्चात्ताप है। भविष्य मे किसी भी स्त्री के प्रति दुर्भावना न हो इसके लिए मे आपके सामने प्रतिज्ञा करता हू कि आज से मेरे लिए विवाहिता पत्नी के सिवाय दूसरी सभी स्त्रिया माता या वहन के समान हैं। कृपा करके आप मुझे पर–स्त्री का प्रत्याख्यान करा दीजिय।

मणिप्रभ विद्याधर की प्रार्थनानुसार मुनि ने उसे पर–स्त्री का प्रत्याख्यान कराया। मुनि से पर–स्त्री का प्रत्याख्यान लेकर मणिप्रभ विद्याधर मदनरेखा के सामने उपस्थित हुआ। वह अपने दोनो हाथ जोडकर मदनरेखा से कहने लगा– हे वहन ! मैंने तुम्हारे साथ वहुत अपराध किया है। आपके लिए ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जिनका प्रयोग करना सर्वथा अनुचित था। मैने तो ऐसा अपराध किया फिर भी आपने मुझ पर उपकार ही किया है। मैं आपका उपकार कदापि भूल नही सकता। मुझ पापी को आप इन महात्मा के पास ले आई और इनके सदुपदेश से मेरे हृदय की दुर्भावना मिटी। यदि आप मुझे इन महात्मा के पास न लाई होती अथवा जैसी दुर्भावना मेरे मे आई थी वैसी ही दुर्भावना आपमे आ गई होती तव तो अनर्थ ही हो जाता लेकिन आपने अपने वुद्धिवल से मुझे भी वचा लिया और स्वय के सतीत्व की भी रक्षा की। मैं इसके लिए आपका वहुत उपकार मानता हू, तथा अपने अपराधो के लिए आपसे क्षमा मागता हू।

रुधे कण्ठ से कहता हुआ मणिप्रभ विद्याधर मदनरेखा के पैरो पर गिर पडा। उस समय मदनरेखा मणिप्रभ को उपालम्भ दे सकती थी, परन्तु उसने उपालम्भ देने के बदले सात्वना देते हुए कहा– भाई, आप किसी प्रकार का खेद न करो। आपने मेरा कोई अपकार नही किया है, किन्तु उपकार ही किया है। आपने मेरे प्राण बचाये और मुझे इन मुनि का दर्शन कराया, यह आपका मुझ पर अनन्त उपकार है। रही मुझ से आपने जो–कुछ कहा उस सबध की बात सो आप जैसे उपकारी मनुष्य से यदि कोई भूल भी हो जाये तो वह भूल क्षम्य ही मानी जाती है और अब तो आपने अपनी उस भूल के लिए पश्चात्ताप किया है। आप वीर हैं वीर पर ही उपदेश का प्रभाव पडता है। वीर अपनी भूल को भूल मान सकता है इसलिए खेद करने की कोई बात ही नही रही। आप किसी पकार का खेद न करिये, किन्तु प्रसन्न होवे कि इस घटना के कारण आप पर–स्त्री का त्याग कर सके और सदा के लिए इस तरह के पाप से बच सके।

इस प्रकार कहकर मदनरेखा ने मणिप्रभ विद्याधर को धैर्य दिया। मणिपभ विद्याधर को शात करके मदनरेखा ने विचार किया कि मैं जिस सकट मे पड गई थी उस सकट से तो मुक्त हो गई और मेरे इस भाई की भावना भी सुधर गई। परन्तु जिस नवजात शिशु को मै वृक्ष की डाली मे झोली बाध कर सुला आई थी, उसकी कुशल तथा उसके भविष्य के विषय मे इन अतिशयज्ञानी मुनि से पूछना चाहिए। साथ ही यह भी जानना चाहिए कि वह बालक होनहार जान पडता है फिर भी उसका जन्म वन मे एव सकटपूर्ण स्थिति मे क्यो हुआ?

ऐसा विचार कर मदनरेखा ने वन मे पुत्र का जन्म आदि वृत्तान्त उन मुनि को सुना कर प्रार्थना की कि हे महात्मन! यदि आप उचित समझे तो कृपा करके मुझे उस पुत्र का भूत भविष्य तथा वर्तमान सबधी सब हाल बताने का कष्ट कीजिये। मै उसका भूतकालीन वृत्तान्त जानने के लिए तो बहुत उत्सुक नही हू, परन्तु वर्तमान एव भविष्य विषयक जानने की बहुत उत्सुक हू।

साधारणतया सामान्य साधु इस तरह की बातो के सबध मे कुछ नही कह सकते लेकिन वे मुनि आगमविहारी थे। आगमविहारी साधुओ के लिए किसी नियम–विशष का प्रतिबध नही हुआ करता। वे अपने ज्ञान मे जेसा देखते और जो उचित मानते है वही करते है। उन मुनि ने मदनरेखा के प्रश्न का उत्तर देने मे लाभ देखा इसलिए उन्होने मदनरेखा से कहा– हे धर्मपरायण महिला! तुम अपने उस पुत्र के विषय मे किसी प्रकार की चिंता न करो [illegible]

[illegible]

तुम वन मे जन्म देकर वृक्ष की डाली मे झोली बाधकर सुला आई थी। तुम्हारा वह बालक पुण्यवान है इसलिए वन मे अकेला छोडा जाने पर भी उसके प्रबल पुण्य से उसकी रक्षा हुई है। तुम अपने बालक को छोडकर सरोवर पर गई उसके कुछ देर पश्चात् ही मिथिलापुरी का राजा पद्मरथ उसी वृक्ष के नीचे आया था। अपने साथियो के साथ वह घोडे पर बैठकर वन मे आया था। अनायास ही राजा का घोडा राजा को लेकर दौडा। राजा ने घोडे को रोकने का बहुत प्रयत्न किया परन्तु जितना वह रोकने का प्रयत्न करता था घोडा और अधिक भागता जा रहा था। राजा के सब साथी छूट गये। वह अकेला ही रह गया।

अन्त मे भागते–भागते घोडा उसी वृक्ष के नीचे आकर रुक गया जिस वृक्ष की डाली से बधी हुई झोली मे तुम्हारा पुत्र सोया हुआ था। राजा थक गया था। इसलिए वह घोडे से उतर कर उस वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगा। राजा पद्मरथ नि सन्तान था। राजा पद्मरथ और उसकी रानी को सन्तान न होने के कारण बहुत चिन्ता रहा करती थी। वृक्ष के नीचे विश्राम करता हुआ राजा पद्मरथ इधर–उधर देखने लगा। सहसा उसकी दृष्टि वृक्ष की डाली मे बधी हुई झोली पर पडी। झोली देखकर राजा को बहुत ही आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा कि इस घोर जगल मे यह वृक्ष पर झोली किसने बाधी होगी। जान पडता है कि इस झोली मे कोई वस्तु भी है। इस प्रकार आश्चर्य तथा जिज्ञासा के कारण राजा का उस झोली के प्रति आकर्षण हुआ। उसने वृक्ष पर चढ कर झोली उतारी और उसमे बालक को देखकर बहुत आनदित हुआ। वह बालक की सुदरता उसके शरीर की बनावट और लक्षण देखकर सोचने लगा कि ऐसा सुन्दर तथा होनहार बालक इस निर्जन वन म कहा स आया। जैस किसी ने मेर लिए ही यह बालक यहा रखा हो तथा इसीलिए ही मेरा घोडा भी मुझे लेकर यहा आया व इसी वृक्ष के नीचे रुका। परन्तु यह बालक किसका ह?

इस प्रकार सोचत हुए राजा पद्मरथ न यह विचार किया कि मुझ इन सब बाता स क्या प्रयाजन। मर पुत्र नही ह। मुझ यह सुलक्षण बालक अनायास ही प्राप्त हुआ ह इसलिए इस बालक को ले जाकर पटरानी को देना चाहिए। पटरानी भी सतान न हान क कारण सदा चिन्तित रहती है। इस बालक का पाकर वह बहुत प्रसन्न हागी। उसकी चिता मिटगी। मालूम पडता ह कि यह बालक मर ही लिए इस वृक्ष पर झाली बाधकर सुलाया गया था। यदि एसा न हाता ता यह घाडा क्या भागता मुझ इस घार वन म लाकर क्या

आता, इस वृक्ष के समीप ही मै लगाम ढीली क्यो करता यह इसी वृक्ष के नीचे क्यो रुकता और मैं विश्राम क्यो करता? इन सब बातो पर विचार करने से यही जान पडता है कि इस बालक से मेरा पूर्वजन्म का कोई सबध है। मेरी सन्तान विषयक इच्छा पूर्ण करने के लिए ही यह मुझे प्राप्त हुआ है। यह बालक आज का जन्मा हुआ ही जान पडता है, परन्तु यहा तो किसी स्त्री या पुरुष का अस्तित्व नजर नहीं आता। ऐसी दशा मे यह बालक यहा कैसे आया तथा इसको किसने जन्म दिया? यह जहा–कहीं से भी आया हो तथा इसको किसी ने भी जन्म क्यो नही दिया हो, मुझे इस प्रपच मे नहीं पडता चाहिए कितु इस बालक को अपने घर ले जाना चाहिए और पटरानी को देकर उसकी चिन्ता मिटानी चाहिए। लेकिन कही पटरानी यह कह कर घृणा तो नही करेगी कि यह बालक मेरा जन्मा हुआ नही है। मुझे विश्वास है कि पहले तो सतानहीन पटरानी ऐसा कहेगी नही, और कदाचित् उसने ऐसा कहा भी तो मै उसको समझा दूगा जिससे वह इस बालक को अपना ही पुत्र मानेगी।

ऐसा सोचकर प्रसन्न मन राजा पद्मरथ तुम्हारे पुत्र को लेकर मिथिलापुरी की ओर चल पडा। उसने बालक को अपने पास इस तरह से रखा कि जिससे बालक को कष्ट भी न हो और किसी को बालक का पास होना ज्ञात भी न हो।

मिथिला नगरी पहुच कर बालक को साथ लेकर राजा पद्मरथ सीधा अपनी पटरानी के महल मे गया। योगायोग से उस समय पटरानी सतान विषयक चिता मे बैठी हुई यह सोच रही थी कि पति मुझे इतना आदर देते है सब तरह से प्रसन्न रखते है परन्तु यह मेरा कैसा दुर्भाग्य है कि मैं एक सतान को भी जन्म नही दे सकी। सतानहीन स्त्री का भी कोई जीवन है। उसी समय राजा पद्मरथ उसके सम्मुख पहुचा। पति को असमय अनायास ही आया देखकर रानी को कुछ आश्चर्य–सा हुआ। वह पति का स्वागत–सत्कार करने लगी। राजा पद्मरथ ने पटरानी के महल मे पहुचते ही उपस्थित दासियो को वहा से हटा दिया। फिर वह पटरानी से बोला– प्रिये! तुम मेरा स्वागत–सत्कार करना छोडो मै तुम्हारे लिए एक लाल लाया हू उसे ले लो।

के लिए पति से झूठ बोलना पाप भी है और यदि चिन्ता का सच्चा कारण पति को बताऊगी, तो उनको दु ख ही होगा।

ऐसा सोचकर रानी अपने मुह को राजा की दृष्टि से बचा पा रही थी। राजा का कथन सुनकर तो उसने अपना मुह बिल्कुल ही फेर लिया और उत्तर मे राजा से कहा– महाराज! आपने मुझे बहुत–से हीरे–लाल दिये हैं परन्तु मुझे सन्तोष नहीं है। निर्जीव लाल मेरे हृदय को शात नही कर सकते। मुझे तो कुलदीपक पुत्र रूपी लाल चाहिए। इसलिए आप जो लाल लाये हैं उसे अपने पास रखिये या कोष मे डाल दीजिये। मुझे मत दीजिए।

रानी का कथन सुनकर राजा समझ गया कि रानी पुत्र–कामना से दुखी है। उसने कहा– प्रिये! तुम इस लाल को एक वार देखो तो सही! रानी ने उत्तर दिया– स्वामिन्! मैं देखकर क्या करूगी! जिसे लेकर आप स्वय पधारे हैं और मुझे बडे प्रेम से प्रदान कर रहे हैं, वह लाल अवश्य अनमोल होगा, परन्तु मैं पहले ही निवेदन कर चुकी हू कि मुझे पुत्र–रत्न चाहिये। जड रत्नो की मुझे कोई आवश्यकता नहीं है। पुत्र–रत्न के लिए मैं किस तरह तरस रही हू, इस बात को मैं ही जानती हू, आप नही जानते। सन्तान न होने पर स्त्रियो को कैसा मनस्ताप रहता है इस बात को स्त्रिया ही जानती हैं। मुझ अभागिनी को आपके द्वारा सब प्रकार के सुख प्राप्त हुए फिर भी सन्तान–सुख प्राप्त नहीं हुआ, यह मेरे लिए कितने दुख की बात है?

इस प्रकार कहती हुई पटरानी का गला रुध गया। उसकी आखो से आसू गिरने लगे। राजा ने सोचा कि रानी को अब अधिक समय तक दुख मे नहीं रहने देना चाहिए। ऐसा सोचकर उसने पटरानी से कहा– प्रिये! तुम एक बार मेरी ओर देखो तो सही? मैं तुम्हारे लिए कौनसा लाल लाया हू।

राजा का यह कथन सुनकर रानी राजा के पास गई। राजा ने अपनी गोद का बालक बता कर रानी से कहा– मैं तुम्हारे लिए यह लाल लाया हू। बालक को देखकर रानी अत्यन्त हर्षित हुई। उसने राजा की गोद से बालक को उठा लिया और चुम्बन लेकर कहने लगी– हे स्वामिन्! आप इसको कहा से लाये हैं? यह होनहार और प्रियदर्शी बालक किसका है? कहीं आप मुझे ललचाने के लिए ही यह बालक किसी से मागकर तो नहीं लाये हैं? अथवा मेरा दु ख मिटाने के लिए अपनी राजसत्ता का उपयोग करके इसकी माता से छीन तो नही लाये हैं? मै इस बालक को पाकर बहुत हर्षित हू। यदि आप

वास्तव मे यह बालक मेरे ही लिए लाये हैं और इस बालक को प्राप्त करने के लिए आपने किसी के साथ अन्याय नही किया है तो मैं यही कहूगी कि मैं बडी सद्भागिनी हू। यह बालक मेरे इस अधेरे घर को प्रकाशित करने वाला है। कृपा करके आप यह बताइये कि आपको यह सुन्दर बालक कहा से तथा कैसे प्राप्त हुआ है?

वे मुनि मदनरेखा से कहने लगे– उत्तर मे राजा पद्मरथ ने तुम्हारा बालक कहा तथा किस प्रकार प्राप्त हुआ, वह सब वृत्तान्त पटरानी को सुनाया। पति द्वारा कहा गया सब हाल सुनकर पटरानी कहने लगी– महाराज! आपने जो–कुछ कहा, उसे सुनकर मुझे आश्चर्य होता है कि इस भव्य बालक को किस माता ने जन्म दिया और इसे वन मे छोडकर वह कहा चली गई? वह किसी सकट मे तो नहीं पड गई? यदि वह सकट मे नहीं पडी होती तब तो इस बालक को अपने से अलग ही क्यो करती? कुछ भी हो, इस बालक को आप ले आये, यह अच्छा ही हुआ। मैं, इस बालक को अपना ही पुत्र मानूगी। यदि मेरे पुत्र जन्मता भी, तो वह कैसा होता, यह कौन जाने, लेकिन मेरे सद्भाग्य से मुझे प्रसव सबधी कष्ट उठाये बिना ही ऐसा सुन्दर और भव्य पुत्र प्राप्त हुआ है।

रानी का कथन सुनकर राजा ने कहा– प्रिये! तुम्हारा कथन ठीक है और मैं भी इस बालक को अपना पुत्र बनाने के लिए ही लाया हू, परन्तु प्रत्येक कार्य उसकी विधि से ही होना चाहिए। यदि अपने पुत्र जन्म विषयक विधिया पूरी किये बिना ही इस बालक को अपना बतायेगे, तो लोग अपना कथन स्वीकार नही करेगे। इसलिए तुम इस पुत्र की जन्मदात्री माता की तरह प्रसूतिगृह मे बैठ कर यह प्रकट करो कि मेरे गुप्त गर्भ था जिसे मैंने किसी से प्रकट नही किया था वह अब पुत्र रूप मे जन्मा है। इस प्रकार मैं भी पुत्र–जन्मोत्सव मनाता हू। ऐसा करने पर ही, सब लोग इस बालक को हमारा पुत्र मान सकते हैं।

रानी ने अपने पति की बात स्वीकार करके जैसा पति ने कहा था वैसा ही किया। सारे नगर मे यह बात फैल गई कि महाराजा पद्मरथ के यहा पुत्र–जन्म हुआ है। इस समाचार को सुनकर नगर–निवासियो को बहुत आनद हुआ। वे हर्ष मना रहे हैं और राजा पद्मरथ भी पुत्र–जन्मोत्सव कर रहा है। इस प्रकार तुम्हारा पुत्र मिथिला मे आनदपूर्वक है। तुम उसके लिए चिन्ता

करती हो और सोचती हो कि वन मे उसकी न मालूम क्या दशा हुई होगी, परन्तु पुत्र पुण्यवान जीव है, इसलिए वह मिथिला नगरी मे पहुच गया है तथा उसके पहुचने से मिथिला नगरी मे वडा आनद–उत्सव हो रहा है। पुण्यवान जीव किसी भी स्थिति मे पड गये हो, पर उन्हे कहीं भी कष्ट नहीं होता। कहावत ही है–

भीम वन भवति तस्य पुर प्रधान।
सर्वोजन सुनतामुपयाति तस्य।।
कृत्स्नाच भूर्भवति सन्निधि रत्नपूर्णा।
यस्यास्ति पूर्व सुकृत विपुल नरस्य।।

अर्थात् जो मनुष्य पूर्वजन्म मे बहुत सुकृत करके आया है इस जन्म मे उसके लिए घोर वन अच्छे सुख की भाति सुख देने वाला हो जाता है, उसके लिए सब लोग सज्जनता का व्यवहार करने वाले हो जाते हैं और समस्त पृथ्वी रत्नपूर्णा हो जाती है।

हे चरमशरीरी महापुरुषो की माता! राजा पद्मरथ के पुत्र नही है इस कारण उसके शत्रु इस विचार से प्रसन्न हो रहे थे कि पद्मरथ के मरने के पश्चात् उसका राज्य हम हडप लेगे परन्तु जब वे यह सुनेगे कि पद्मरथ के यहा पुत्र उत्पन्न हुआ है तब विरोध भूलकर भेट लेकर राजा पद्मरथ के यहा उपस्थित होगे ओर उसे नमन करेगे। शत्रुओ के उस नमन को राजा पद्मरथ बालक का ही प्रताप मानेगा एव बालक का नाम नमिराज रखेगा। नमिराज कुछ काल तक राज्यसुख भोगेगा और अन्त मे ससार से वैरागी होकर राजपाट आदि सब–कुछ त्याग कर सयम लेगा तथा दीक्षा प्राप्त करेगा। तुम्हारा छोटा पुत्र नमिराज ही नही किन्तु छोटे पुत्र की ही तरह तुम्हारा वडा पुत्र चन्द्रयश भी इसी भव मे सिद्ध बुद्ध मुक्त होगा।

मदनरेखा की इच्छानुसार मदनरेखा क नवजात बालक का वर्तमान एव भविष्यकालीन वृत्तान्त सुनाकर वे मुनि मदनरेखा से बाल– अब म तुम्हारे पुत्र का भूतकालीन वृत्तान्त सुनाता हू– यह बताता हू कि तुम्हारे पुत्र तथा राजा पद्मरथ क बीच भूतकाल म क्या सबध था एव किस सबध की पूर्ति के लिए तुम्हारे पुत्र का जन्म वन म हुआ। तुम्हारा पुत्र ओर पद्मरथ इस समय तो पिता–पुत्र बन हे परन्तु पहल क कइ भव म दाना भाई–भाई रह चुक ह। दाना का भ्रातृसम्बध जम्बूद्वीपान्तर्गत पूव विदह म पुष्कलावती विजय क मणितारणपुर नगर स प्रारम्भ हाता हे। व दाना मणितारणपुर नगर क चक्रवर्ती राजा अमितयश क पुत्र थ जहा उनका नाम पुष्पशिखर ओर

रत्नशिखर था। पुष्पशिखर तथा रत्नशिखर ने एक चारण मुनि का उपदेश सुनकर सयम ले लिया था। सयम का पालन करते हुए दोनो भाई शरीर त्याग कर बारहवे देवलोक मे देव हुए। देवलोक की स्थिति भोगकर दोनो भाई, धातकीखण्ड के भारत क्षेत्र मे हरिसेन वासुदेव की रानी समुद्रदत्त की कोख से युग्म जन्मे। वहा, एक का नाम समुद्रदत्त था और दूसरे का नाम सागरदत्त था। वहा भी दोनो भाइयो ने एक साथ ही सयम लिया। सयम लेने के तीसरे दिन जब दोनो कायोत्सर्गपूर्वक ध्यानस्थ थे तब विद्युत गिरी, जिससे दोनो भाई कालधर्म को प्राप्त होकर महाशुक्र देवलोक मे देव हुए। जिस समय भगवान् अरिष्टनेमि को केवलज्ञान हुआ और भगवान् अरिष्टनेमि गिरनार पर्वत पर समवसरण मे विराजे उस समय दोनो भाई भगवान् की सेवा करने के लिए समवसरण मे उपस्थित हुए। भगवान् को वन्दन–नमस्कार करने और भगवान् का उपदेश श्रवण करके दोनो भाइयो ने भगवान से प्रश्न किया– हे प्रभो! हम दोनो भव्य और चरमशरीरी है, अथवा अभव्य और अचरमशरीरी? इस पश्न के उत्तर मे भगवान अरिष्टनेमि कहा– हे देवो! तुम दोनो सयम की आराधना करने के कारण पवित्र हो। तुम दोनो भव्य और चरमशरीरी हो। इस समय तो तुम दोनो आपस मे भाई–भाई हो परन्तु देव–स्थिति भोगने के पश्चात् एक का जन्म युगबाहु की पत्नी मदनरेखा स होगा और दूसरा मिथिला का राजा पद्मरथ होगा। इस प्रकार तुम दोनो का भाई–भाई का सबध न रहेगा पिता–पुत्र का सबध हो जायेगा। युगबाहु की पत्नी मदनरेखा से जिसका जन्म होगा वह मदनरेखा की कोख से जन्म मात्र लेगा। उसका पालन–पोषण पद्मरथ के यहा होगा और वह पद्मरथ का ही पुत्र कहा जायेगा जिसका नाम नमिराज होगा। वहा कुछ काल तक पुण्यफल भोगकर तुम दोनो क्रमश सयम लोगे और मोक्ष को पाप्त करोगे।

भगवान् अरिष्टनेमि का कथन सुनकर, दोनो देव बहुत प्रसन्न हुए। वे भगवान को वन्दन–नमस्कार करके महाशुक्र देवलोक को लौट गये। वहा की स्थिति भोग कर एक भाई तो राजा पद्मरथ हुआ और दूसरा भाई तुम्हारा यह पुत्र हुआ जो राजा पदमरथ के यहा पुत्र–रूप मे पल रहा है। तुम्हारे उस पुत्र का जन्म वन और सकटपूर्ण स्थिति मे इसलिए हुआ था कि जिससे वह राजा पदमरथ के यहा पहुच जावे।

आपकी सेवा मे उपस्थित होने से मेरा सब सकट मिट गया मेरे इन भाई की भावना भी पवित्र हो गई और मुझे अपने उस पुत्र का वृत्तान्त भी ज्ञात हो गया, जिसके लिये मुझे बहुत चिता थी। साधु-ससर्ग से ऐसा होता ही है। मैंने अपने पुत्र का जो सुकृतपूर्ण वृत्तान्त सुना और इन भाई का जो सुधार हुआ, उससे मैं भी सयम स्वीकार करने का निश्चय करती हू। वह दिन धन्य होगा जब मैं इस निश्चय के अनुसार सयम ले सकूगी। आपकी कृपा होगी तो मेरा यह निश्चय अवश्य ही पूर्ण होगा। मैं समझती थी कि पुत्र का पालन माता ही करती है परन्तु अब मुझे मालूम हो गया कि सन्तान का पालन करने मे माता तो केवल निमित्त मात्र है। प्रत्येक व्यक्ति की रक्षा उसका पूर्वसुकृत ही करता है। जो सुकृती नहीं है तो उसकी रक्षा करने या उसका पालन करने ओर उसे कष्ट से बचाने मे कोई भी समर्थ नहीं है। आपके मुख से सुकृत का प्रताप सुनकर मुझे सुकृत पर अधिक दृढ विश्वास हो गया है, इसलिए मैंने अपना जीवन एकमात्र सुकृत मे लगाने के लिए सयम लेने का निश्चय किया हे।

मदनरेखा का कथन सुनकर मुनि मणिप्रभ विद्याधर और वहा उपस्थित सभी दूसरे लोग भी बहुत प्रसन्न हुए। मणिप्रभ विधाधर तो अपने मन ही मन मे कहने लगा कि इस सती ने जो त्याग-वृत्ति बताई है उसके सामने मेरा पर-स्त्री का त्याग तुच्छ ही है। धन्य है इस सती को।

मदनरेखा का कथन समाप्त होने पर मुनि ने मदनरेखा से कहा कि तुम्हे जिस प्रकार से भी सुख प्राप्त हो, तुम वैसा ही करो। मदनरेखा से इस प्रकार वर्णन करने के पश्चात् मुनि ध्यान म स्थित हो गए।

धर्म और पाप का परिणाम

कार्य का कुछ–न–कुछ परिणाम (फल) प्राप्त होता ही है। कारण से कार्य और कार्य से परिणाम की उत्पत्ति होती ही है। कर्ता जो भी कार्य करता है वह परिणाम के ही वास्ते। परिणामरहित कार्य करने वाला मूर्ख माना जाता है।

अच्छे–बुरे प्रत्येक कार्य का परिणाम दो तरह का हुआ करता है– एक प्रकट और दूसरा अप्रकट, एक भौतिक और दूसरा आध्यात्मिक, एक परिमित और दूसरा अपरिमित, एक व्यापक और दूसरा अव्यापक एक इहलौकिक और दूसरा पारलौकिक एक स्थायी और दूसरा अस्थायी। उदाहरण के लिए एक आदमी धन के लिये चोरी करता है जिससे उसे धन मिल भी गया। इस चोरी कार्य का प्रकट परिणाम तो धन मिलना हुआ जो भौतिक है, लेकिन दूसरा अप्रकट परिणाम आध्यात्मिक है। चोरी करने के कारण उसकी आत्मा मे जो कलुषता आई वह चोरी के कार्य का ही परिणाम है जो अप्रकट है। इसी तरह एक आदमी परोपकार करता है। वह परोपकार इसलिए करता है कि मेरी आत्मा उन्नत हो तथा मुझे पारलौकिक सुख मिले लेकिन इस परिणाम के साथ ही दूसरा व्यापक परिणाम उस कार्य द्वारा लोगो को तत्कालीन लाभ तथा ऐसे कार्यो की ओर जनता का आकर्षण होता है। इस प्रकार प्रत्येक कार्य के दो परिणाम होते है। किसी भी कार्य के विषय मे विचार किया जाये तो यह बात ठीक ठहरेगी। इस बात को दृष्टि मे रखकर ही अनेकान्तवाद की प्ररूपणा की जाती है।

धर्म और पाप के लिए भी यही बात है। इन दोनो का परिणाम भी ऐसा ही होता है। मोटी रीति से धर्म और पाप का एक परिणाम तो इहलौकिक अथवा भौतिक होता है और दूसरा पारलौकिक अथवा आध्यात्मिक। यह बात दूसरी है कि प्रत्येक व्यक्ति आध्यात्मिक या पारलौकिक परिणाम को नहीं

देखता या देख नही पाता लेकिन धर्म या पाप का परिणाम दोनो ही तरह का होता है। पारलौकिक या आध्यात्मिक परिणाम स्थूल दृष्टि से दिखाई नहीं देता। हम उसको तभी देख सकते हैं, जब हमारी आत्मा के ऊपर का आवरण हटे और हमे विशेष ज्ञान प्राप्त हो। हमारी आत्मा पर से आवरण जितना अधिक हटा हुआ होगा हमे उतना ही विशेष ज्ञान प्राप्त होगा हम प्रत्येक बात उतनी ही अधिक स्पष्ट देख सकेगे। हम ऐसा विशेष ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। हम आत्मा पर से आवरण हटा सकते हैं। जिन महापुरुषो ने ऐसा किया है वे हमारे लिए अपने पदचिह्न छोड गये हैं और इन पदचिहो पर चलकर प्रत्येक अपनी आत्मा को आवरणरहित तथा ज्ञान–धनवर्द्धक बना सकता है बल्कि उन्होने ऐसा करने के लिए हमे बताया है कि आत्मा पर कर्म का जो आवरण है, उसे नष्ट कर देने से क्या लाभ प्राप्त होगा और नष्ट न करने अथवा उसको बढाने से क्या हानि होगी? महापुरुषो के ऐसे उपदेशो को मानकर हमे आत्मा को आवरणरहित बनाना चाहिए। उस समय हम धर्म एव पाप के पारलौकिक अथवा आध्यात्मिक परिणाम को भी स्पष्ट देख सकेगे। लेकिन जब तक हमने अपनी आत्मा को निरावरण नही बनाया है धर्म और पाप के आध्यात्मिक या पारलौकिक परिणाम को देखने–जानने मे समर्थ नही हुए है तब तक हमे उन महापुरुषो के कथन पर विश्वास करना चाहिए। ऐसे ज्ञानियो ने इस सबध मे जो–कुछ कहा वह गलत है– ऐसा मानने का तो कोई कारण ही नही है। क्योकि उन्हे झूठ बात कहने रो क्या लाभ? उन्होने इस विषय मे जो–कुछ कहा है वह हमारे हित की दृष्टि रो और हमे पाप से बचाने तथा धर्म–कार्य मे प्रवृत्त करने के लिए ही कहा है। ऐसा करने मे उनकी भावना जन–हित की ही हे स्वार्थ की नही। इरातिए हमारा कर्तव्य हे कि हम उनके द्वारा बताय गय धर्म और पाप के पारलौकिक परिणाम को जानकर पाप से बचे और धर्म–कार्य मे प्रवृत्त हा।

मणिरथ न अत्यन्त महान् पाप किया था। वह परदार अपनी कन्या के समान मानी जाने वाली अनुज–वधू का अपनी पत्नी बनाना चाहता था। इसक लिए उसने छल–प्रपचपूण प्रयत्न भी किया परन्तु जब अपन प्रयत्न म असफल रहा तब छोट भाई की विश्वासघातपूर्वक हत्या कर डाली। इस पाप–कार्य का इहलौकिक परिणाम हुआ निन्दा और अकाल मृत्यु। यदि वह एसा पाप–कार्य नही करता रात क समय युगबाहु का मारन क लिए नहीं जाता ता लागा द्वारा उसकी निन्दा न हाती और वह अकाल मृत्यु रा भी न मरता। इसी प्रकार युगबाहु न अन्तिम समय म मदनरेखा द्वारा उपदेशित धम

स्वीकार किया था। मदनरेखा द्वारा सुनाया गया धर्मोपदेश स्वीकार करने के कारण ही वह शान्ति से प्राण त्याग सका। मणिरथ के पाप और युगबाहु के धर्म का इहलौकिक परिणाम तो यह हुआ लेकिन पारलौकिक परिणाम क्या हुआ यह उन विशेषज्ञानी मुनि ने बताया जिनके उपदेश से मणिप्रभ की दुर्भावना मिटी थी और मदनरेखा भय–रहित हुई थी। इस सबध मे उन मुनि ने क्या कहा, यह बात इस प्रकरण से प्रकट होगी।

वे सुविहित सयमी और अतिशय ज्ञानी मुनि ध्यानस्थ थे और मदनरेखा मणिप्रभ विद्याधर तथा दूसरे लोग उनके सामने बैठे थे। इतने ही मे देव विमान के घण्टे की ध्वनि सुनाई दी। देखते ही देखते एक विमान वहा आकर उतरा और एक तेजस्वी देव विमान से निकल कर मुनि के सामने उपस्थित हुआ लेकिन उसने मुनि को वन्दन करने से पहले मदनरेखा को वन्दन किया और फिर मुनि को वन्दन करके मुनि के सम्मुख बैठ गया। देव ने पहले एक स्त्री को और फिर मुनि को वन्दन किया, यह देखकर उपस्थित लोगो को बहुत ही आश्चर्य हुआ। कई लोग तो अपने मन मे यहा तक कहने लगे कि यह देव इस स्त्री का सौन्दर्य देखकर मर्यादा भी भूल गया है और इस पर मुग्ध होकर पहले स्त्री को वन्दन किया और बाद मे मुनि को। मणिप्रभ विद्याधर भी अपने मन मे कहने लगा कि इस बहन के सौन्दर्य ने मेरे को तो भ्रम मे डाला ही था, लेकिन यह देव भी भ्रमित हो गया। जब यह देव भी इस बहन के सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया तब मै मुग्ध हुआ इसमे आश्चर्य की क्या बात है?

उपस्थित लोग अपने–अपने मन मे देव के इस कृत्य की आलोचना कर रहे थे। इतने मे ही मुनि का ध्यान समाप्त हुआ। मुनि ने अपने ज्ञान द्वारा उपस्थित लोगो और विशेषत मणिप्रभ विद्याधर के मन की बात को जान लिया था। उन्होने सोचा कि इस देव पर निष्कारण ही कलक आ रहा है। लोगो को जब वास्तविक बात का ज्ञान नही होता तभी वे ऊपरी कार्य देखकर ही मनचाही कल्पना कर लेते है। इसलिए यही उचित होगा कि लोगो को वास्तविक बात से परिचित कराया जाय और इस देव को कलक से बचाया जाये।

वन्दन क्यो किया? इस बहन ने इस देव पर बहुत बडा उपकार किया है। इसकी सहायता से ही इस देव ने देव–भव पाया है। यह देव देव–भव पाने से पूर्व उस बहन मदनरेखा का पति था। उस समय इसका नाम युगबाहु था। मदनरेखा के रूप पर मोहित होकर मदनरेखा को हस्तगत करने के लिए युगबाहु के बडे भाई मणिरथ ने युगबाहु पर खडग का प्रहार किया था। युगबाहु आहत होकर गिर पडा था। उस समय युगबाहु को अपने भाई के प्रति बहुत क्रोध हो रहा था। यदि उसी क्रोध मे युगबाहु का प्राणान्त हुआ होता तब तो युगबाहु नरक मे जाता, परन्तु इस बहन ने ऐसा धर्मोपदेश दिया कि जिससे युगबाहु का क्रोध तो शात हुआ ही साथ ही प्राण त्यागते समय वह पचपरमेष्ठि की शरण भी ले सका। धर्म पर विश्वास करने तथा पचपरमेष्ठि की शरण लेने के कारण युगबाहु मर कर इस देव–भव मे जन्मा। देव–भव मे जन्म पाते ही इस देव ने अपने ज्ञान का उपयोग करके अपना पूर्वभव जानने के साथ ही इसने यह जाना कि मैंने मदनरेखा की कृपा से ही इस भव को पाया है। अन्यथा मुझे नरक मे जन्म लेना पडता। यह जानकर इसको विचार हुआ कि मदनरेखा का मुझ पर बहुत उपकार है। उसने मेरा सकट तो मिटाया परन्तु कही वह स्वय तो सकट मे नही पडी है? मुझे अपना उपकार करने वाली मदनरेखा का हाल जानना चाहिए और यदि वह सकट मे हो तो उसका सकट दूर करना चाहिए। इस प्रकार सोचकर इस देव ने फिर अपने ज्ञान का उपयोग किया तब इसको मदनरेखा का यहा होना ज्ञात हुआ। इसने विचार किया कि मुझे दूसरे कार्य मे लगने से पहले अपना उपकार करने वाली मदनरेखा की सहायता करनी चाहिए। इस विचार से प्रेरित होकर वह यहा आया और इसने पहले मदनरेखा को वन्दन किया। इसलिए इस देव के सबध मे तुम लोग अपने मन मे कोई दूसरा विचार न लाओ।

मुनि द्वारा मदनरेखा और उस देव का पूर्वसम्बन्ध तथा देव ने मदनरेखा का वन्दन किया इसका कारण सुनकर उपस्थित लोगो के हृदय की शका दूर हुई। सब लोग मदनरेखा और उस उपकार मानने वाले देव की प्रशसा करने लगे। मणिप्रभ विद्याधर भी यह सोचने लगा कि ऐसी सती के लिए भी मुझ पापी के हृदय मे दुर्भावना उत्पन्न हुई। यह तो अच्छा हुआ कि इस सती के प्रयत्न से मै यहा आ गया जिससे मेरी भावना भी शुद्ध हो गई और मै इस सती पर बलात्कार करने एव इसका सतीत्व हरण करने का

प्रयत्न करने से बच गया, अन्यथा मैं दुर्गति मे भी जाता और इस देव का कोप–पात्र भी बनता।

देव के सबध मे मुनि ने जो–कुछ कहा– उसे सुनकर उपस्थित लोगो के मन मे यह जानने की इच्छा हुई कि जिस मदनरेखा के लिए राजा मणिरथ ने अपने छोटे भाई की हत्या की, वह तो यहा चली आई है। इसलिए अब राजा मणिरथ मदनरेखा को प्राप्त करने के लिए क्या प्रयत्न करता है? इस इच्छा से प्रेरित होकर एक व्यक्ति ने राजा मणिरथ के सबध मे मुनि से प्रश्न किया। उपस्थित श्रोताओ का समाधान करने और पाप का फल बताने के लिए मुनि बोले– अपने भाई के मस्तक पर खड्गाघात करके मणिरथ भागा परन्तु उसको युगबाहु के सामन्तो ने रोक लिया। मणिरथ युगबाहु के सामन्तो के घेरे से निकलने का प्रयत्न करने लगा, इस कारण कोलाहल मच गया। उस समय युगबाहु तलवार मे लगे हुए विष के प्रभाव से तडफडा रहा था। इस सती ने सोचा कि पति का अन्त समीप है तथा साथ ही इनको क्रोध सता रहा है। यदि इसी क्रोधावेश मे इनकी मृत्यु हुई तो ये नरक मे जायेगे। इसलिए इनको धर्मोपदेश सुनाना चाहिए। परन्तु इस कोलाहल मे पति मेरे शब्दो को कैसे सुन सकेगे? इसके सिवा हत्या के बदले हत्या करना कराना या होने देना भी अनुचित है। पाप का बदला पाप करके नही लेना चाहिए। इस प्रकार सोचकर इस मदनरेखा ने अपने सामन्तो को आज्ञा दी कि मणिरथ को जाने दो और कोलाहल बन्द कर दो।

मदनरेखा की आज्ञानुसार सामन्तो ने मणिरथ को छोड दिया। सामन्तो के घेरे से छूट कर मणिरथ भागा, लेकिन उसे अपने दुष्कृत्य के विषय मे बहुत पश्चात्ताप होने लगा। वह कहने लगा– हाय! मैंने यह क्या किया? जिस भाई को युवराज बनाया था जिसके भरोसे रह कर मैं अनेक विचार किया करता था जो मेरी आज्ञा का कभी भी उल्लघन नही करता था और जो मेरे प्रति पूर्ण श्रद्धा भक्ति तथा विश्वास रखता था मैने अपने उस छोटे भाई की हत्या कर डाली! वह भी रात के समय तथा धोखे से कायरतापूर्वक! मुझ पापी से यह कैसा भयकर दुष्कृत्य हुआ है! मदनरेखा ने मुझ पापी को क्यो छुडा दिया! क्या ही अच्छा होता यदि युगबाहु के सामन्त मुझे मार डालते! सामन्तो के घेरे से मुझे छुडा कर मदनरेखा ने मुझ पापी पर और अधिक पाप लाद दिया है।

मणिरथ अपने कुकृत्य से इतना दुखी हो गया कि अपने महल की ओर न जा कर मार्ग मे ही घोडे से उतर पडा और कहने लगा कि मैं अब

उस महल मे जाकर क्या करूगा जिसमे रहते मुझे भाई की हत्या करने की कुमति पैदा हुई। मैं अब अपना यह कलकित मुख किसी को कैसे दिखाऊगा मुझ बन्धुघाती के लिए लोग क्या कहेगे? मैं दूसरो को तो छोटे—छोटे अपराधो के लिए भी दण्ड देता हू और स्वय ऐसा भयकर अपराध करू। क्या मेरा यह अपराध क्षम्य हो सकता है? धिक्कार है मुझे, अपनी वीरता दुस्साहस इन हाथो और इस खडग को। मैंने अपने बन्धु की हत्या की इससे अधिक धिक्कार की बात दूसरी क्या हो सकती है? मुझे अपने इस दुष्कृत्य का फल अवश्य ही भोगना चाहिए। मेरे लिए अब यही अच्छा है कि मैंने जिस तलवार से अपने भाई की हत्या की है उसी से स्वय को समाप्त कर डालू। अपना कलकित मुख किसी को नहीं दिखाऊ। मेरे दृष्कृत्य का प्रायश्चित्त इसी तरह हो सकता है।

मणिरथ इस प्रकार अत्यन्त पश्चात्ताप करता हुआ दुख से बडबडा रहा था। दुख के कारण उसके हाथ से उसका अश्व भी छूट गया। उसके लिए अपने दुष्कृत्य का भार असह्य हो उठा इसलिए उसने आत्महत्या करने का निश्चय किया। वह बडबडाता हुआ पश्चात्ताप कर रहा था और आत्महत्या करने के लिए तैयार ही था कि इतने मे वहा राज—परिवार मे रहने वाला वीरसिह नाम का एक वीर सेवक आ गया। युगबाहु के वश की व्यवस्था की जा रही थी उसी बीच मदनरेखा वहा से भाग निकली। मदनरेखा के भाग जान के पश्चात् उसकी खोज होने लगी। जब मदनेरखा वहा नही मिली तब इस विचार से कि शायद गर्भवती युवराझी अपने महल मे चली गई होगी। राजमहल मे मदनरेखा की उपस्थिति जानने के लिए वीरसिह नगर की ओर चल पडा। वीरसिह उसी ओर होकर जा रहा था जहा मणिरथ पश्चाताप कर रहा था और आत्महत्या करने के लिय तैयार था। वीरसिह ने मणिरथ की बडबडाहट सुनी। मणिरथ का स्वर पहचान कर उसकी बडबडाहट सुनता हुआ वीरसिह मणिरथ क पास गया। मणिरथ की बडबडाहट से वीरसिह समझ गया कि मणिरथ का अपने कृत्य क लिय बहुत पश्चाताप हो रहा है। वह दुख स घबरा कर आत्महत्या करने के लिय तत्पर है। मणिरथ के पास जाकर वीरसिह न उसका हाथ पकड लिया और कहन लगा— महाराज! आप यह क्या कर रह है? आपसे पाप अवश्य हुआ है आपको युवराज की हत्या क लिए पश्चाताप है लेकिन आत्महत्या करन से पाप कभी नहीं मिट सकता बल्कि आत्महत्या करना तो पाप पर पाप करना है। इस पाप का प्रायश्चित्त आत्म—हत्या करना नही हो सकता। यदि आपको प्रायश्चित्त

करना है और पाप से मुक्त होना है तो इसका मार्ग दूसरा है। अपराध तो आत्मा करे और शरीर को दण्डस्वरूप नष्ट किया जाये, यह अपराध का पायश्चित्त नहीं है। इसलिए आप आत्मघात करने का विचार त्याग दीजिये। मै आपको इस पाप के प्रायश्चित्त का मार्ग बताता हू। आपके छोटे भाई युगबाहु तो इस ससार से विदा हो गये हैं परन्तु उनके पुत्र चन्द्रयश विद्यमान है। आप उनके सामने अपने दुष्कृत्य के लिए पश्चात्ताप करके क्षमा मागिये। चन्द्रयश उदार स्वभाव के हैं, अत मुझे विश्वास है कि वे आपको अवश्य ही क्षमा प्रदान कर देगे। चन्द्रयश से क्षमा मागने पर आपके पाप का प्रायश्चित्त भी हो जाएगा और आप आत्महत्या के महान् पाप से भी बच जाएगे।

वीरसिह के कथन के उत्तर मे मणिरथ अत्यन्त दुख के साथ कहने लगा– हे भाई! तुम मुझ पापी को रोको मत मुझे चन्द्रयश को अपना पापी मुह दिखाने की बात मत कहो। मैं चन्द्रयश का पितृहन्ता हू। वह मुझे कदापि क्षमा नही कर सकता। चन्द्रयश सामन्तो के घेरे से मुझे छुडा देने वाली मदनरेखा का पुत्र है। इसलिए सभव है कि वह भी अपनी माता की तरह मुझे क्षमा कर दे परन्तु मैं अपना यह कलकित मुह लेकर उसके सामने कैसे जाऊ! उससे यह कैसे कहू कि मैने तुम्हारे पिता को मार डाला हे और फिर भी तुम क्षमा कर दो! मै क्षत्रिय हू। मैंने आज तक किसी के सम्मुख नम्रता या दीनता नही प्रकट की है। फिर मै चन्द्रयश के सामने अपनी दीनता कैसे प्रकट कर सकता हू कि तुम मुझे क्षमा कर दो! और वह भी केवल इसलिए कि मुझे मरना न पडे! तुम जो मार्ग मुझे बता रहे हो उस पर चलना मेरे लिए सर्वथा असम्भव है। इसलिए तुम उसी खडग से मुझे मर जाने दो जो खडग बन्धु–रक्त से सना हुआ है। चन्द्रयश से क्षमा माग कर और जीवित रहकर मैं करूगा भी क्या? अपना मुह किसी को कैसे दिखाऊगा? जीवन–भर अपने पाप के ताप से जलता ही रहूगा! मेरे लिए आत्महत्या के अलावा और कोई मार्ग नही जो मुझे शाति दे तथा इस पाप के ताप से बचावे।

से मैं यहा हू यह जान कर जब चन्द्रयश यहा आयेगा तब मैं उसे अपना मुह कैसे दिखाऊगा! उसे क्या कहूगा? जब वह मेरे पैरो पड कर मुझ से घर चलने का अनुरोध करेगा तव मैं उसे क्या उत्तर दूगा? चन्द्रयश के साथ वीरसिह तथा दूसरे सामन्त लोग आयेगे ही! वे मेरे लिए क्या कहेगे और उनसे मैं क्या कहूगा? इसलिए यही अच्छा है कि मैं यहा से किसी और स्थान पर चला जाऊ तथा चन्द्रयश से मिलू ही नही।

इस प्रकार सोचकर मणिरथ उत्पथ से वन की ओर चल पडा। वह दुख तथा पश्चात्ताप से बडबडाता जा रहा था। एक तो अधेरी रात का समय था दूसरे दुख तथा पश्चात्ताप के कारण मणिरथ की आखे पूरी तरह मार्ग नहीं देख पाती थी इसलिए उत्पथ से जाते हुए मणिरथ का पाव एक विषधारी सर्प पर पड गया। मणिरथ का पाव पडने से साप क्रुद्ध हो उठा और मणिरथ को काट खाया। मणिरथ के शरीर मे विष का प्रभाव फैल गया। सर्प के काटने से पहले तक तो मणिरथ को वन्धु-हत्या के लिए खेद और पश्चात्ताप था परन्तु सर्प काटने के पश्चात् मणिरथ की मति फिर पहले की-सी हो गई। वह कहने लगा- युगवाहु को मार डाला इसके लिए मैं खेद या पश्चाताप क्यो करू? इसमे खेद या पश्चात्ताप की कौनसी वात है! मैं क्षत्रिय हू! इच्छित वस्तु की प्राप्ति के मार्ग मे उपस्थित वाधा को हटाना या नष्ट करना क्षत्रिया का साधारण कर्तव्य है। मैंने युगवाहु को मार कर इसी कर्तव्य का पालन किया है। में मदनरेखा से प्रेम करता हू। उसे अपनी वनाना चाहता हू। युगवाहु मेरे उसी प्रममार्ग मे वाधक था इसलिए उसे मारकर मैने कुछ भी वुरा नही किया हे। जिस तरह मदनरेखा को मैं चाहता हू उसी तरह अव मदनरेखा भी मुझसे प्रेम करती हे। युगवाहु क मरते ही मदनरेखा ने समझ लिया कि अव मरे लिए मणिरथ ही आधार है इसलिए वह भी मुझ रा प्रम करने लगी हे। इसका प्रमाण हे मदनरेखा का सामन्ता स मुझे छुडवाना और मेरे प्राण वचाना। यदि मैंन युगवाहु का नही मारा हाता ता मदनरेखा मुझरो प्रेम न करती। इस प्रकार मैंने युगवाहु का मारकर उचित ही किया है।

इस तरह वडवडाता हुआ मणिरथ विष के प्रभाव रा पृथ्वी पर गिर पडा। उस समय भी वह इसी प्रकार वडवडाता हुआ युगवाहु की हत्या को उचित वता रहा था तथा कह रहा था कि प्रिय मदनरखा! मैंन युगवाहु का मार कर प्रम का मार्ग निष्कण्टक कर दिया परन्तु यहा मुझ साप ने डरा लिया है। म यहा पडा हुआ हू। तुमन मुझ जिस तरह सामन्ता रा वचाया उसी तरह क्या यहा सर्प क विष स मरी रक्षा नही करागी? तुम किसी प्रकार का गकाव

मत करो, किन्तु यहा आकर मेरी रक्षा करो और मेरे प्राण बचाओ। युगबाहु मारा गया तो क्या हुआ, चन्द्रयश तो है। वह मुझे कुमार्ग पर कैसे जाने देगा? पहले तो चन्द्रयश मेरे और तुम्हारे प्रेम–सबध मे किसी प्रकार की बाधा डालेगा ही नही। क्योकि प्रेमी अपनी प्रेमिका या प्रेमिका अपने प्रेमी से मिले, यह किचित् भी अनुचित नहीं है। ऐसा होते हुए भी, कदाचित् चन्द्रयश मेरे और तुम्हारे प्रेम–सबध मे बाधक बनेगा, तो मैं उसको भी युगबाहु की तरह मृत्यु के हवाले कर दूगा। इसलिए तुम निर्भय होकर आओ और मुझे बचा लो।

कुछ देर तक तो मणिरथ इस प्रकार बडबडाता रहा, परन्तु फिर सर्प–विष के प्रभाव से उसका बडबडाना सदा के लिए बन्द हो गया, अर्थात वह मर गया। युगबाहु की हत्या के पश्चात् उसके हृदय मे जो खेद और पश्चात्ताप था यदि उसकी मृत्यु उस पश्चात्ताप करते समय होती तब तो अन्त समय मे जैसी मति वैसी गति' के अनुसार उसको कदाचित् नरक मे उत्पन्न न होना पडता। परन्तु उसके दुष्कृत्यो ने उसमे वह पश्चात्ताप की मति नही रहने दी वरन् जैसी गति वैसी मति यानी जो गति प्राप्त होनी होती है मरने के समय वैसी ही मति हो जाती है, इसके अनुसार मणिरथ के दुष्कृत्यो ने उसमे फिर वही दुर्मति ला दी, जो उसमे पहले थी और जिसके कारण उसने युगबाहु की हत्या की थी। इसलिए मणिरथ मिथ्या मोह तथा पापवृत्ति मे शरीर त्यागकर धूमप्रभा–पचमी नरक मे अपने दुष्कृत्यो का फल भोगने के लिए उत्पन्न हुआ है।

यह सब वृत्तान्त सुनाकर मुनिराज ने कहा– इधर मणिरथ तो मर गया और उधर वीरसिह चन्द्रयश के पास गया। उसने चन्द्रयश से मणिरथ का सब हाल कहा। चन्द्रयश ने सोचा कि पिता तो अकाल मृत्यु से स्वर्गवासी हुए ही अब पितृव्य भी आत्महत्या कर रहे है। यदि पितृव्य ने भी आत्महत्या कर डाली तो बडा ही अनर्थ होगा। सारा घर ही नष्ट हो जावेगा। मैं अनाथ हो जाऊगा। मेरा रक्षक कोई नही रहेगा। इसलिए पितृव्य को अनुनय–विनयपूर्वक ले आना चाहिए। ऐसा सोचकर वह कुछ सामन्तो तथा वीरसिह के साथ उस स्थान पर आया जहा वीरसिह ने मणिरथ को छोडा था। लेकिन मणिरथ उस स्थान पर नही मिला। खोज करने पर कुछ दूर पर उसका शव पडा हुआ मिला। मणिरथ का शव देखकर चन्द्रयश को बहुत ही दुख हुआ। वह विलाप करने लगा। सामन्तो ने उसको धैर्य बधाया। अन्त मे युगबाहु और मणिरथ के शव की अन्त्येष्टि करके प्रजा के अत्याग्रह से चन्द्रयश राजा बना। सबके कहने–सुनने से वह राजा तो बन गया परन्तु उसके हृदय मे युगबाहु मणिरथ

और मदनरेखा के लिए बडा ही दुःख है। युगबाहु तथा मणिरथ के लिए तो वह जानता है कि ये दोनो मर गये लेकिन बहुत खोज करने पर भी मदनरेखा का कुछ पता न लगने से उसे बहुत खेद है। अभी वह मदनरेखा की खोज करा ही रहा है।

मुनि द्वारा यह सब वृत्तात सुनकर उपस्थित श्रोताओ ने धर्म एव पाप के परिणाम को जाना। सब लोग मदनरेखा तथा उस देव की प्रशसा करने लगे। मणिप्रभ विद्याधर को भी यह विचार हुआ कि यदि यह बहन मुझे इन मुनि की सेवा मे न ले आती तो अन्त मे मुझे भी वैसा ही फल भोगना पडता जैसा फल राजा मणिरथ भोग रहा है। यह मुनि–दर्शन का प्रताप है कि मै परलोक के कष्ट से भी बच गया और इस लोक मे भी अपयश का पात्र नही बना।

सब लोग मुनि को वन्दन करके अपने घर जाने लगे। मणिप्रभ विद्याधर भी अपने घर जाने को तैयार हुआ। वह मुनि को विधिवत वन्दन–नमस्कार करके मदनरेखा के पास गया और उसे प्रणाम करके कहने लगा–हे माता ! आपने मुझ पर बहुत बडा उपकार किया है। मैं आपका चिर कृतज्ञ हू। आप मुझे उसी प्रकार सन्मार्ग पर लाई हैं जिस प्रकार चतुर महावत मस्त हाथी को मार्ग पर चलाता है। आपने मुझे घोर नरक से बचाया है। मैं आपके द्वारा किये उपकार का वर्णन करने मे समर्थ नही हू, इसलिए थोडे मे यही कहता हू कि जिस प्रकार जन्मदात्री माता का उपकार बालक के ऊपर होता है उसी प्रकार आपका उपकार मुझ पर है। मैं आपके उपकार से कदापि उऋण नही हो सकता। अब आप कृपा करके मुझे ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि मैं मुनि के सम्मुख की गई अपनी प्रतिज्ञा का पूरी तरह पालन कर सकू और उत्तरोत्तर सन्मार्ग पर बढता जाऊ।

मणिप्रभ के कथन के उत्तर मे मदनरेखा अपना जीवन बचाने एव मुनि का दर्शन कराने के लिए मणिप्रभ की प्रशसा करके उसका उपकार मानने लगी। इस तरह मदनरेखा और मणिप्रभ परस्पर एक–दूसरे की प्रशसा करने तथा एक–दूसरे का उपकार बताने लगे। बात का अन्त आते न देख कर वह देव दोनो से बोला कि तुम दोनो परस्पर एक–दूसरे की प्रशसा करना त्याग कर मुनि का गुणगान करो जिनकी कृपा से अज्ञान मिटा है सब बाते जानने को मिली है पाप–धर्म का फल सुनने को मिला है और सबका सकट टला है। महात्माओ से सुने हुए उपदेश के प्रभाव से ही यह सती मर कर भी नरक से बचा सकी है तुम्हे भी नरक से बचा सकी है तथा अपने शील की

रक्षा करने मे समर्थ हुई है। इसलिए यह मानो कि महात्माओ के प्रताप से ही बहुतो का उपकार हुआ है होता है तथा होगा। ऐसा मान कर महात्माओ की सेवाओ मे चित्त लगाओ।

देव का कथन शिरोधार्य करके मणिप्रभ विद्याधर तथा मदनरेखा ने पारस्परिक बातचीत बन्द कर दी और वे दोनो महात्मा की वाणी का उपकार मानने लगे। मणिप्रभ विद्याधर ने मुनि को फिर वन्दन–नमस्कार किया। वह अपने घर जाने लगा, तब मदनरेखा तथा देव ने उसको प्रेमपूर्वक विदा किया।

सती सुव्रता

बुद्धिमान और आत्मा को जीवनमुक्त बनाने की इच्छा रखने वाले भव्य लोग यही भावना किया करते हैं कि हम कब ससार–व्यवहार से निकल कर आत्मा को मोक्ष की ओर अग्रसर करने के प्रयत्न मे लगे। वे ऐसे अवसर की प्रतीक्षा करते हैं, ऐसा अवसर प्राप्त करने का प्रयत्न किया करते हैं तथा ऐसा अवसर मिलते ही सयम मे प्रव्रजित होकर आत्मा का कल्याण करने मे भी लग जाते हैं। ऐसे अवसर को व्यर्थ खोने की भूल वे कदापि नही करते। ससार–व्यवहार के जाल से निकल कर फिर उसमे नहीं फसते। वास्तव मे जिस ससार को एक वार त्याग चुके है उसी मे फिर फसना बडी स बडी मूर्खता है। जेसे कोई बन्दी बन्दीखाने से छूटने की भावना रखता हो बन्दीखाने से छूटने के लिए प्रयत्नशील रहा हो, बन्दीखाने से निकलने का अवसर पा जाये तथा वन्दीखाने से निकल भी जाये लेकिन फिर स्वय ही आकर बन्दीखाने मे वन्द हो जावे तो क्या उसे मूर्ख नही कहा जायेगा? इसी तरह जो व्यक्ति ससार–व्यवहार से निकल कर आत्मकल्याण करने की भावना रखता हो वह ऐसा अवसर मिलन पर और अपने सिर पर से ससार–व्यवहार का वोझ अनायास उतर जाने पर भी यदि आत्मकल्याण करने मे न लगे किन्तु वह वोझ फिर अपने सिर पर ले ले तो क्या उसे बुद्धिमान कहा जायेगा? कदापि नही। बुद्धिमान व्यक्ति उतरा हुआ ससार–व्यवहार का वोझ फिर अपने सिर पर कदापि नहीं लाद सकता। जिस सासारिक प्रपच से वह निकल चुका हे उसमे कदापि नहीं फस सकता। उतरे हुए वोझ को फिर अपने सिर पर लादने वाला जिस ससार–जाल से एक वार छुटकारा पा चुका हे अपने–आप को फिर उसी मे फसा लेने वाला व्यक्ति मूर्ख ही है।

मदनरेखा मे युगबाहु के मरने से पहले भी धार्मिक भावना तो थी, वह सयम को उत्कृष्ट मान कर यह भावना भी करती थी कि 'वह दिन धन्य होगा जब मैं ससार–व्यवहार से निकल कर सयम ले सकूगी'। लेकिन यह भावना कब पूर्ण होगी, यह बात वह स्वय भी नही जानती थी। उसका पति युगबाहु भावी राजा तथा वह भावी रानी थी और गर्भवती भी थी। इसलिए निकट भविष्य मे वह गृह–ससार से निकल कर अपनी इस भावना को कार्यान्वित न कर सकती थी, लेकिन अब अनायास ही उसे अपनी भावना सफल करने का अवसर मिल गया। पापी मणिरथ द्वारा युगबाहु के मारे जाने पर वह अपने सतीत्व की रक्षा के लिए वन मे भाग गई। इस प्रकार वह गृह–प्रपच के भार से सहज ही छूट गई। फिर भी उस पर गर्भ मे रहे हुए बालक को जन्म देने तथा पालने–पोषने का भार रह गया था। इन दोनो मे से बालक को जन्म देने का कार्य भी हो चुका। रहा बालक को पालने–पोषने का कार्य, वह बालक को अरक्षित त्याग कर या बालक को साथ लेकर तो सयम ले नही सकती थी। मातृदया और अहिसा की रक्षा के लिए बालक का पालन–पोषण तथा बालक की व्यवस्था करना उसके लिए आवश्यक था। परन्तु उसके ऊपर का यह भार भी राजा पद्मरथ और उसकी रानी ने ले लिया। अब यदि वह स्वय ही किसी प्रपच मे न पडे तो उसके लिए सयम लेने का मार्ग साफ था। लेकिन उसके हृदय मे अपने उस बालक को देखने की इच्छा शेष थी, जो अब राजा पद्मरथ के यहा था। यदि उसकी यह इच्छा नष्ट न हुई होती, यदि उसने अपनी इस इच्छा को कार्यान्वित किया होता, तब तो सभव था कि वह प्राप्त सुयोग को खो देती अभी सयम न ले पाती और सासारिक प्रपच मे फिर फस जाती। परन्तु किस प्रकार सती के उपदेश से उसकी यह इच्छा नष्ट हो गई वह प्राप्त सुयोग का उपयोग कर सकी तथा फिर सासारिक प्रपच मे पडने से बच गई। आदि बाते इस प्रकरण से ज्ञात होगी।

मणिप्रभ विद्याधर को विदा करके देव ने मदनरेखा से कहा– आपका मुझ पर बहुत उपकार है। आपकी कृपा से ही मै नरक मे जाने से बच गया और यह देव–भव पाया। मै आपके उपकार से कदापि उऋण नही हो सकता फिर भी मेरी यह प्रार्थना है कि आप मुझे कोई कार्य बतलाइये जिस करके मै अपने चित्त को कुछ शाति प्रदान कर सकू।

देव के यह कहने पर मदनरेखा ने उससे कहा– इन महात्मा का उपदेश सुनकर मैंने ससार–व्यवहार से निकलकर सयम मे प्रव्रजित होने का निश्चय किया है। अब मैं अपना शेष जीवन सयम का पालन करने मे ही विताना चाहती हू, परन्तु एक बार मै अपने उस बालक को देख लेना चाहती हू, जिसे जन्म देकर मैं वन मे वृक्ष की डाली मे झोली बाध कर सुला आई थी और जिसे मिथिला का राजा पद्मरथ अपने घर ले गया है। इसलिए यह अच्छा होगा कि आप मुझे मिथिलापुरी पहुचा दे। मिथिलापुरी धार्मिक क्षेत्र है। भगवान् श्री मल्लिनाथ की जन्मभूमि है। वहा कोई–न–कोई साध्विया होगी ही। मिथिलापुरी मे अपने पुत्र को भी देख सकूगी तथा साध्वियो से सयम भी ले सकूगी।

यद्यपि मदनरेखा को मुनि से यह ज्ञात हो गया था कि मेरा पुत्र चन्द्रयश राजा हुआ है और वह मेरी खोज करा रहा है फिर भी उसने राजमाता बनने की इच्छा नही की तथा देव मे यह नही कहा कि मुझे सुदर्शनपुर मे चन्द्रयश के पास पहुचा दो। मदनरेखा का कथन सुनकर एव उसकी धर्म–भावना जानकर देव बहुत प्रसन्न हुआ। उसने मदनरेखा को मिथिलापुरी पहुचाना स्वीकार किया।

मदनरेखा ओर देव ने मुनि को विधिवत् वन्दन–नमस्कार किया। मुनि का वन्दना–नमस्कार करके उस देव ने मदनरेखा का अपन विमान मे बठा कर विमान को मिथिलापुरी की ओर बढाया। मार्ग मे मदनरेखा ने अपना वन म भाग आना वन म पुत्र जन्मना हाथी द्वारा उछाली जाना ओर मुनि की सेवा म पहुचना आदि सब वृत्तात उस दव का सुनाया। सब वृतान्त सुना चुकन पर मदनरेखा चुप हाकर शातिपूर्वक विमान म बैठी रही। यद्यपि यह देव–विमान बहुत सुन्दर था। मदनरेखा का कभी वैसा विमान बैठन के लिए तो दूर रहा दखन क लिए भी नही मिला था और उस समय मदनरेखा भय चिन्ता म भी नही थी फिर भी उसन न तो विमान को उसम लगे हुए बहुमूल्य पदार्थों को ही उत्सुकतापूर्वक दखा तथा न ही उस विमान म बैठन के कारण कोई प्रसन्नता ही हुई। वह अनासक्त भाव स विमान म बैठी हुई थी। [illegible] त उस विमान पर ललचायी ही न उसन कोई आश्चर्य ही प्रकट किया तथा न ही उसे किसी प्रकार का अभिमान ही हुआ। मदनरेखा को निस्पृह भाव से विमान म बैठी देखकर वह देव सोचन लगा कि यह विमान देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ था और यह विमान प्राप्त होने के कारण मैंने अपने–आप को

सद्भागी माना था परन्तु यह सती किस प्रकार निरासक्त बैठी हुई है। इसको न तो विमान के प्रति लोभ जान पडता है न विमान के विषय मे कोई प्रसन्नता या आश्चर्य होना ही देख पडता है। इस प्रकार विचार करते हुए उस देव ने, मदनरेखा से कहा कि हे सती! मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हू। यदि आप स्वीकृति दे तो मै पूछू? उत्तर मे सती ने कहा– आप जो–कुछ पूछना चाहते हैं वह नि सकोच पूछिये। सती की स्वीकृति पाकर देव कहने लगा कि आप इस विमान मे भी नीची दृष्टि किये हुए ही बैठी हैं विमान मे लगी हुई श्रेष्ठ तथा मनमोहक सामग्री को देखती तक नही है इसलिए मैं यह जानना चाहता हू कि क्या यह विमान आपके चित्त को किचित् मात्र भी आकर्षित नही कर सका है? इस विमान मे बैठने के कारण आपको कुछ भी प्रसन्नता नही हुई?

देव के इस कथन के उत्तर म सती ने उससे कहा– आप अब भी भूल रहे हैं। भला यह तो बताइये कि यह विमान आया कहा से है ? आपको यह विमान मिला कैसे? आप वह समय स्मरण करिये जबकि आपके बडे भाई ने आपके सिर पर खडग मारा था और क्रोध से तडफडा रहे थे। आपने यदि उसी क्रोध मे शरीर त्यागा होता तो क्या आपको यह विमान मिल सकता था? आपने अपने हृदय मे धर्म को स्थान दिया इसी से यह विमान प्राप्त हुआ है। इस तरह यह विमान धर्म से प्राप्त हुआ है। फिर म इस विमान को क्या देखू? उस धर्म को ही क्यो न देखू जिसके प्रताप से यह विमान प्राप्त हुआ है। मेरे हृदय मे इस विमान के प्रति आकर्षण नही किन्तु उस धर्म के प्रति आकर्षण है जिसकी थोडी–सी सेवा का यह परिणाम है। मै आप से भी यही कहती हू कि आप इस विमान को ही न देखिये किन्तु उस धर्म को देखिये जिसके प्रभाव से आप नरक जाने से बचे तथा इस विमान को प्राप्त कर सके है। इस विमान के ममत्व मे पडकर धर्म को न भूलिये।

मदनरेखा का यह कथन सुनकर देव बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने इस उपदेश के लिए मदनरेखा की प्रशसा करके, उसे धन्यवाद दिया।

मार्ग–भर देव और मदनरेखा मे इसी प्रकार की धर्मचर्चा होती रही। विमान चलते–चलते मिथिलापुरी के समीप आया। देव ने मदनरेखा से कहा कि यह मिथिलापुरी दिखाई दे रही है। इस मिथिलापुरी मे साध्विया भी हैं और राजा पद्मरथ के यहा आपका पुत्र भी है। बोलो आप पहले किस ओर जाना चाहती हैं? पहले पुत्र को देखना चाहती हो या सतियो का दर्शन करना चाहती हो? आप जहा के लिए कहे, मैं आपको पहले वही पहुचा दू।

देव के इस कथन के उत्तर मे मदनरेखा ने कहा– मेरे हृदय मे पुत्र के प्रति स्नेह होने पर भी मुझे यह विचार आता है कि पुत्र की और मेरे सतीत्व की रक्षा धर्म के प्रताप से ही हुई है और वह धर्म, मुझे सन्त–सतियो की कृपा से ही प्राप्त हुआ था। मैं आपकी जो धार्मिक सहायता कर सकी थी वह भी सतियो की कृपा से ही। इस प्रकार आत्मा का कल्याण करने वाली सतिया ही हैं पुत्र मेरी आत्मा का कल्याण नही कर सकता। इसलिए आप पहले मुझे रातियो की सेवा मे ले चलिये।

मदनरेखा के इस कथन ने भी देव को आनन्दित ही किया। वह अपने मन मे कहने लगा कि सती! तुम्हे धन्य है! एक ओर तो इसका पुत्र है और दूसरी ओर सतिया हैं, लेकिन इसकी भावना पहले सतियो की ओर ही जाने की हुई। मन मे इस प्रकार मदनरेखा की प्रशसा करता हुआ वह देव मदनरेखा को सुदर्शना नाम की आर्यिका के स्थान पर ले गया। सती सुदर्शना का दर्शन करके मदनरेखा को बहुत प्रसन्नता हुई। उसने और देव ने सुदर्शना सती को विधिवत वन्दन–नमस्कार किया। पश्चात् मदनरेखा ने नम्रतापूर्वक सुदर्शना सती से यह प्रार्थना की कि आप मुझे निर्ग्रन्थ प्रवचन का उपदेश सुनाने की दया कीजिये। मेरी यह उत्कृष्ट अभिलाषा है कि मैं आप रा केवलीभाषित धर्म का उपदेश श्रवण करू। सुदर्शना सती ने मदनरखा की यह प्रार्थना स्वीकार करके उसे सयम के महत्त्व का उपदेश सुनाया, जिरा सुन कर मदनरेखा को भी हर्ष हुआ तथा उस देव को भी।

उपदश सुन कर मदनरेखा हाथ जाडकर सुदर्शना राती रा कहने लगी कि आपक उपदश न मेरे हृदय म पूरी तरह जागृति ला दी है। मैं उन लागा को धन्य मानती हू, जा सासारिक प्रपचा रो निकल कर सयम म प्रव्रजित हाते हैं। आपक उपदेश स मेरे हृदय म भी यह भावना जाग्रत् हुई है कि ससार क प्रपचा स सर्वथा निकल कर सयम स्वीकार करू।

सुदर्शना सती से ऐसा कह कर मदनरेखा ने देव से कहा– अब मैं पुत्र को देखने के लिए भी नही जाऊगी। पुत्र को देखने पर सम्भव है कि मेरा भी अहित हो तथा पुत्र का भी। मैं जब अपने पुत्र को देखूगी तब मेरे हृदय मे पुत्र के प्रति जो स्नेह होगा उसे देखकर राजा पद्मरथ की रानी या दूसरे लोगो को सन्देह हो सकता है और उस सदेह के कारण किसी प्रकार के अनर्थ को भी सम्भावना हो सकती है। इसके सिवा, यह भी हो सकता है कि मेरे हृदय मे उसके प्रति ऐसा ममत्व उत्पन्न हो जिससे मैं सयम न ले सकू। इसलिये मै यही उचित समझती हू कि पुत्र को देखने के लिए न जाऊ किन्तु मुनि के तथा आपके कथनानुसार यह मान कर सन्तोष करू कि पुत्र आनद मे है। मैं यह पूरी तरह समझ गई हू कि कोई भी व्यक्ति किसी का पालन या किसी की रक्षा करने मे समर्थ नही है। आत्मा के साथ जो पूर्व–सचित पुण्य लगा हुआ है, उसी से पालन भी होता है और रक्षा भी होती है। इसलिए अब मैं आपको यह कष्ट नही देना चाहती कि आप मुझे राजा पद्मरथ के यहा ले जावे किन्तु यह कष्ट देना चाहती हू कि आप इन महासतीजी से कह कर मुझे सयम दिलवा दीजिये और इस प्रकार मेरी धार्मिक सहायता कीजिये।

मदनरेखा का कथन सुन कर वह देव हृदय मे तो मदनरेखा की दूरदर्शिता तथा धर्म–भावना से प्रसन्न ही हुआ फिर भी उसन मदनरेखा से कहा– आप सयम तो लेना चाहती है परन्तु कही आपक हृदय म पुत्र का देखने की कामना न रह जाये। किसी कामना के रहत सयम मे प्रव्रजित होन से सभव है कि सयम का पूरी तरह पालन न हो सके। आप इस बात का विचार करके फिर मुझ से कहिये कि मै क्या करू?

मदनरेखा का कथन समाप्त होने पर सुदर्शना सती तथा मदनरेखा को हृदय मे धन्यवाद देते हुए देव ने सुदर्शना सती से मदनरेखा के लिए यह प्रार्थना की कि इनकी इच्छा सयम लेने और आपकी शिष्या बनने की है। अत आप इन्हे दीक्षा देने की कृपा करे। इसी तरह मदनरेखा ने भी सुदर्शना सती से दीक्षा देने के लिए प्रार्थना की। परिणामस्वरूप सुदर्शना सती ने दीक्षा देकर मदनरेखा का नाम सुव्रता सती रखा। दीक्षा दिलाकर वह देव सुदर्शना और सुव्रता (मदनरेखा) सती को विधिवत् नमस्कार करके अपने देवलोक को चला गया। सुव्रता सती अपनी गुरुआनी सुदर्शना सती की सेवा करती हुई उत्कृष्ट भाव से सयम का पालन करते हुए अधिकाधिक धार्मिक ज्ञान प्राप्त करने लगी।

उधर सुदर्शनपुर मे चन्द्रयश राज्य करने लगा। उसने मदनरेखा की बहुत खोज कराई परन्तु जब कही पता न लगा तब वह मदनरेखा की ओर से निराश हो गया। दूसरी ओर उसका छोटा भाई नमिराज– जिसे मिथिलापुरी का राजा पद्मरथ ले गया था– पाच धायो के सरक्षण मे वृद्धि को प्राप्त होने लगा। जब नमिराज कुछ बडा हुआ तब राजा पद्मरथ ने उसको अठारह देशो की दासिया के सरक्षण मे रखा जिससे कुछ ही समय मे वह अठारह देशो के रहन–सहन भाषा एव वेषभूषा से परिचित हो गया और उसके बाद वह अधिक बडा हुआ तब उसको विद्या पढने और कला सीखने के लिए कलाचार्य के पास बैठाया। नमिराज होनहार था इसलिए थोडे ही समय मे वह विद्वान् तथा कलाकुशल हो गया।

जब नमिराज नवयुवक हुआ। राजा पद्मरथ ने नमिराज को विवाह के योग्य जानकर उसका सुन्दर और कुलवती कन्याओ के साथ विवाह कर दिया। नमिराज आनदपूर्वक गृहस्थ जीवन व्यतीत करने लगा। कुछ समय के पश्चात राजा पद्मरथ ने विचार किया कि अब नमिराज सब तरह से योग्य है। वह राजकाज भलीभाति चला सकता है। प्रजा भी इससे प्रसन्न है तथा मै वृद्ध हो गया हू। अत अब यह उचित नही कि राजकाज और ससार–व्यवहार के भार को मै अपने सिर पर लादे रहू, सासारिक झझटो मे फसा हुआ ही मरू तथा आत्मकल्याण के लिए कोई प्रयत्न न करू। मेरे लिए अब यही योग्य है कि मै राजपाट आदि सब–कुछ नमिराज को सौपकर सयम मे प्रव्रजित हो जाऊ और आत्मसाधना करू।

राजा पद्मरथ ने अपना यह विचार नमिराज एव मन्त्रियो के सामने प्रकट किए। मन्त्रियो ने तो पद्मरथ के विचार का समर्थन किया परन्तु

नमिराज को राजा पद्मरथ का विचार सुनकर दु ख हुआ। उसने अपने पिता पद्मरथ से विचार–परिवर्तन के लिए बहुत प्रार्थना की लेकिन अन्त मे राजा पद्मरथ और मन्त्रियो के समझाने से नमिराज ने राजा बनना स्वीकार किया।

राजा पद्मरथ ने राजपाट आदि नमिराज को सौंप दिया, नमिराज मिथिला का राजा बना। वह राजकाज भलीभाति चलाने लगा। नमिराज को राजपाट सौपकर पद्मरथ धर्मकार्य करने लगा। वह इस प्रतीक्षा मे रहने लगा कि किन्ही मुनिराज का यहा आगमन हो और मैं उनसे सयम ग्रहण करू। योगायोग से कुछ समय के पश्चात् ही एक स्थविर मुनि का शिष्य–मण्डली सहित आगमन हुआ। राजा पद्मरथ ने स्थविर मुनि का उपदेश सुना और उनसे दीक्षा लेकर सयम का पालन करते हुए शरीर त्याग, सिद्ध पद प्राप्त किया।

युद्ध

ससार मे लोग ऐसे बहुत कम होते हैं जिन्हे प्रभुता प्राप्त होने पर भी अहकार नही होता। अधिकाश लोगो को प्रभुता मिलने पर अहकार होता ही है। इस सबध मे तुलसीदासजी ने कहा है–

तुलसी को जनमेउ जग माही।
प्रभुता पाय जाहि मद नाही।।

अर्थात् ससार मे ऐसा कौन जन्मा है, जिसे प्रभुता पाकर अहकार न हो?

प्रभुता और अहकार का कारण–कार्य सबध है। जहा कारण है वहा कार्य होता ही है। ऐसी घटना कोई–सी ही देखने मे आयेगी जहा कारण के होने पर भी कार्य न हो। इसके अनुसार प्रभुता मिलने पर भी अहकार न हो एसा व्यक्ति भी अपवादस्वरूप कोई ही देखने को मिलेगा। यद्यपि अहकार की उत्पत्ति के दूसरे कारण भी हैं लेकिन प्रभुता अहकार को बहुत शीघ्र जन्म देती हे आर जहा अहकार है वहा अविवेक का होना भी उतना ही सभव हे, जितना सभव प्रभुता से अहकार का होना है। प्रभुता अहकार को जन्म देती है ओर अहकार विवेक को नष्ट करता है। अहकार के कारण जा व्यक्ति विवेक–भ्रष्ट हो गया हे वह अर्थ–अनर्थ को देख–समझ कर भी अनर्थ से बचने मे असमर्थ रहता हे। ऐसा व्यक्ति तुच्छ के लिए महान् की हानि सहज ही कर डालता हे। इसी से कवि ने कहा है कि–

यौवन धन सम्पति प्रभुत्वमविवेकता।
एकैकमप्यनर्थाय किम् यत्र चतुष्टयम्।।

अर्थात योवन धन–सम्पति प्रभुता ओर अविवक इनम रा प्रत्येक अनर्थकारी हे ता जहा य चारा ही हा वहा के अनर्थ का ता कहना ही क्या हे?

ससार मे जितने भी युद्ध हुए हैं, उनमे से अधिकाश अहकार के कारण ही हुए हैं। युद्ध के योग्य कोई उचित कारण न होने पर भी अपने अहकार का पोषण करने के लिए युद्ध किया गया तथा रक्त की नदिया बहाई गई। युद्ध के प्रवर्तक राजा लोग अहकारवश इस बात का विचार तक नही करते कि युद्ध करने से कितनी हानि होगी? केवल पाच ग्राम पाकर सन्तुष्ट होने के लिए तत्पर पाण्डवो से कौरवो ने युद्ध क्यो किया था? पाण्डवो का विशाल राज्य हडप लेने वाले कौरव यदि पाण्डवो को पाच ग्राम देकर युद्ध रोक देते तो उनकी कोई हानि नहीं थी। लेकिन वे अहकार के कारण कृष्ण के समझाने पर भी ऐसा करने के लिए तैयार नहीं हुए। परिणामत भयकर युद्ध हुआ जो महाभारत के नाम से प्रसिद्ध है। गत वर्षो मे योरोपीय महायुद्ध हुआ था उसके वास्तविक कारणो की खोज की जाये तो ज्ञात होगा कि वह युद्ध अहकार के कारण ही हुआ था। हल्दीघाटी के प्रसिद्ध युद्ध का कारण भी मानसिह या अकबर का अहकार ही था। इस प्रकार अहकार के कारण युद्धादि अनेक अनर्थ हुए और होते रहेगे।

इस प्रकरण मे भी एक ऐसे युद्ध का वर्णन है जो एक तुच्छ कारण को आगे रख कर केवल अहकारवश पारम्भ किया गया था। नमिराज और चन्द्रयश दोनो राजा थे। दोनो के यहा हाथियो की कमी न थी। यदि नमिराज का एक हाथी चन्द्रयश ले लेता या चन्द्रयश का एक हाथी नमिराज ले लेता तो दोनो मे से कोई कगाल नही हो सकता। लेकिन दोनो ही राजा युवक सम्पन्न प्रभुताप्राप्त और अहकार से भरे हुए थे। इस कारण दोनो ने केवल एक हाथी के लिए युद्ध ठान दिया। उनमे से किसी ने यह विचार नही किया कि एक हाथी के लिए युद्ध करने पर कितने हाथी मारे जायेगे कितने मनुष्यो के प्राण जायेगे कितनी स्त्रिया विधवा हो जायेगी कितने बालक अनाथ हो जायेगे कितना धन नष्ट जायेगा? तथा यह सब होने पर भी जिसके लिए युद्ध करते है वह हाथी पाप्त हो सकेगा या नही?

मिथिलापुरी मे नमिराज और सुदर्शनपुर मे चन्द्रयश राज्य कर रहे थे। यद्यपि ये दोनो एक ही माता–पिता की सन्तान थे दोनो सहोदर भाई थे परन्तु यह बात दोनो मे से कोई भी नही जानता था। चन्द्रयश तो यह जानता था कि मै युगबाहु का पुत्र हू और नमिराज यह मानता था कि मै पद्मरथ का पुत्र हू। दोनो को यह मालूम न था कि हमारे कोई भाई है किन्तु दोनो

यही मानते थे कि हम अपने पिता के इकलौते पुत्र हैं। उन विशेष ज्ञानी मुनि से जिन्होने सुना था उनके सिवा किसी को भी यह पता न था कि चन्द्रयश और नमिराज दोनो भाई हैं। लेकिन एक ऐसी घटना हो गई कि जिसके कारण यह गुप्त बात प्रकट हो गई।

राजा नमिराज के यहा एक अच्छा हाथी था। वह हाथी मदोन्मत्त होकर अपने स्थान से छूट जगल मे निकल गया। राजा नमिराज के सेवको ने उस हाथी की बहुत खोज की, परन्तु उसका पता नही चला कि वह किस ओर गया है? हाथी वन मे घूमता–फिरता सुदर्शनपुर की सीमा मे पहुच कर उत्पात मचाने लगा। हाथी से भयग्रस्त होकर प्रजा राजा चन्द्रयश के पास पहुची। उसने प्रार्थना की कि एक हाथी न मालमू कहा से आया है, जो डील–डौल मे बहुत बडा और देखने मे सुन्दर है? लेकिन उसके उत्पात से हम लोग बहुत दु खी हो गए हैं, अत आप हमारी रक्षा कीजिये।

राजा चन्द्रयश ने ध्यानपूर्वक प्रार्थना सुनकर प्रजा को सान्त्वना दी और कहा– मैं तुम्हे सुखी करने के लिए ही राजा हू, अत तुम लोग निर्भय होओ। मै शीघ्र ही हाथी को वश मे करके तुम्हे कष्टमुक्त करूगा।

राजा चन्द्रयश को प्रजा द्वारा यह ज्ञात हो ही गया था कि वह उत्पात मचाने वाला हाथी भीमकाय और सुडोल है। इसलिए उसने हाथी को भगाने या मारने के बदल, अधीन करने का निश्चय किया एव प्रजा का दु ख मिटान के लिए अपनी सेना और हाथी पकडने मे कुशल लोगो को साथ लेकर उस स्थान पर पहुचा जहा हाथी ने उत्पात मचा रखा था। हाथी का पता लगाकर चन्द्रयश ने उसे घर लिया तथा अधीन कर लिया। मद उतर जाने स अथवा और किसी गुप्त कारण से वह हाथी बिना किसी श्रम या कठिनाई के इस तरह चन्द्रयश क अधीन हो गया जैसे वह चन्द्रयश के अधीन होने क लिए ही यहा आया हो। चन्द्रयश उस हाथी को सुदर्शनपुर ल आया और उस करिगृह (हाथीशाला) म बाध दिया। हाथी शान्तिपूर्वक रहने लगा। उस हाथी की प्राप्ति स चन्द्रयश को बहुत प्रसन्नता हुई। वह अपन मन म कहा करता था कि हाथी मेरे सद्भाग्य से ही मेरे राज्य म आया तथा मेरे अधीन हुआ है। चन्द्रयश कभी–कभी उस हाथी पर आरूढ भी हुआ करता था। राजचिह्न क साथ उस हाथी पर बैठा हुआ वह ऐसी शोभा पाता था जैसे ऐरावत हाथी पर बैठा हुआ दूसरा इन्द्र ही हो।

उधर राधा नमिराज के सेवक हाथी की खोज मे ही थे। खोज करते–करते उन्हे ज्ञात हुआ कि हाथी सुदर्शनपुर मे राजा चन्द्रयश के यहा है। राजा चन्द्रयश ने उस हाथी को अपने अधीन करके बाध रखा है। यह जानकर, सेवक महाराज नमिराज के पास आये और हाथी विषयक सब समाचार कहे।

मेरा प्रधान हाथी सुदर्शनपुर मे राजा चन्द्रयश के यहा है यह जानकर नमिराज ने एक बलवान और चतुर दूत को बुलाकर उससे कहा– तुम सुदर्शनपुर जाओ। मेरा प्रधान हाथी सुदर्शनपुर मे राजा चन्द्रयश के यहा है। तुम चन्द्रयश से कहना कि वे उस हाथी को मेरे यहा भेज दे। उनसे कहना कि हाथी भेज देने से तुम्हारे और नमिराज के बीच मैत्री–सम्बन्ध होगा। इसके विरुद्ध यदि हाथी न दोगे तो तुम्हे विवश होकर हाथी देना होगा तथा उसके साथ हानि भी उठानी पडेगी।

यह सन्देश देकर नमिराज ने दूत को सुदर्शनपुर भेजा। दूत सुदर्शनपुर पहुचकर राजसभा मे उपस्थित हुआ। उसने राजा चन्द्रयश का उचित अभिवादन किया। राजा चन्द्रयश ने दूत से उसके आने का कारण पूछा। दूत ने चन्द्रयश से कहा– मुझे मिथिलापति महाराज नमिराज ने आपकी सेवा मे भेजा है। उनका प्रधान हाथी उन्मत्त होकर छूट गया था। जो आपके यहा आ गया था और इस समय भी आपके यहा पर ही है। महाराज नमिराज ने उस हाथी को लेने के लिए ही मुझे आपके पास यह प्रस्ताव लेकर भेजा है कि आप वापस हाथी हमारे पास भेज दीजिये। ऐसा करने से हमारे और आपके बीच नवीन मैत्री–सम्बन्ध स्थापित होगे। उन्हे विश्वास है कि आप यह प्रस्ताव स्वीकार करके हाथी भेज देगे। इसलिये मै आपकी सेवा मे उपस्थित हुआ हू।

जब किसी समय मनुष्य का भी अपराध क्षमा कर दिया जाता है तो हाथी तो पशु है । इसलिए क्या आप उसका अपराध क्षमा न करेगे? और वह भी महाराज नमिराज जैसे बलवान और पराक्रमी राजा से मैत्री–सम्बन्ध जोडने के लिए । महाराज नमिराज के यहा अनेक हाथी हैं परन्तु वह हाथी सब मे प्रधान है तथा महाराज को उससे विशेष प्रेम है। यदि ऐसा न होता तो वे एक हाथी के लिए आपके पास कोई प्रस्ताव नही भेजते। महाराज नमिराज का प्रस्ताव तो आपको सुना ही दिया है तथा मेरी सम्मति भी यही है कि आप महाराज नमिराज का प्रस्ताव स्वीकार कर ले। ऐसा करने से आपको महाराज नमिराज की मैत्री सहज ही प्राप्त हो जायेगी, जिसके लिए अनेक राजा लोग प्रयत्न करते रहते हैं और मूल्यवान पदार्थ भेट भेजा करते हैं। आपको तो सहज ही मैत्री–सम्बन्ध जोडने का सुयोग मिला है। आप इस सुयोग को अपने हाथ से न जाने दीजिए।

दूत के कथन के उत्तर मे चन्द्रयश ने कहा– तुम्हारा कहना ठीक है परन्तु मुझे तुम्हारे महाराज की मैत्री के लिए ऐसी उत्सुकता नही है कि जिसके लिए मैं हाथी ही उन्हे प्रदान कर दू। यदि मेरी राजनीति अच्छी है तो सभी राजा मेरे मित्र ही हैं। मैं शुल्क देकर किसी से मैत्री नही करना चाहता न मुझे इसकी आवश्यकता ही है।

दूत न कहा– वैसे तो मैं आपका उत्तर महाराज नमिराज की सेवा म निवेदन कर दूगा लेकिन इससे पहले मैं आपसे यह निवेदन करना उचित समझता हू कि आप एक बार फिर विचार कर लीजिये। आपने जो उत्तर दिया उसे हमारे महाराज अपना अपमान मानेग और वे अपना अपमान कदापि सह नही सकते। इसके अलावा व अपने प्रिय हाथी का आपके यहा नहीं रहने दगे। सभव हे व कुपित होकर आपके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दे। महाराज नमिराज का कोप सहना कोई सरल बात नहीं है। जिस पर महाराज नमिराज का कोप होता है उसकी रक्षा तभी हो सकती है जबकि वह महाराज नमिराज स प्राणभिक्षा माग अथवा प्राण बचाने के लिए वन म भाग जाव। महाराज नमिराज स मैत्री क बदल कवल उन्ही क हाथी क लिए शत्रुता मोल लकर अपने सिर पर आपत्ति बुलाये यह मेरी समझ स तो उचित नहीं है। फिर आप जैसा उचित समझ वैसा कर।

दूत की बात सुनकर चन्द्रयश की आखे क्रोध से लाल हो गई। उसने दूत स कहा– तुम्हारे राजा कैसे प्रतापी तथा बलवान है यह म भलीभाति

जान गया हू। एक हाथी को वश मे नहीं रखना ही उनके बल–पराक्रम का पता बताता है। मुझे न तो उन्हे प्रसन्न करने की इच्छा है और न उनके कोप से भय है। तुम्हारे महाराज की जैसी इच्छा हो, वैसा कर सकते हैं लेकिन हाथी कदापि नही लौटा सकता। यदि तुम्हारे महाराज ने चढाई करने का दु साहस किया तो उन्हे भी वही परिणाम भोगना पडेगा, जो सुदर्शनपुर की सीमा मे आकर उत्पात मचाने पर हाथी को भोगना पडा। तुम जाओ और जैसा उचित समझो, वैसा अपने महाराज से कह देना। अब अधिक कुछ कहने–सुनने की आवश्यकता नही है।

बातचीत भग हो गई। दूत मिथिलापुरी लौट गया। उसने नमिराज को वह सब बातचीत सुनाई जो उसके तथा चन्द्रयश के बीच हुई थी। साथ ही उसने अपना मन्तव्य भी प्रकट किया। उन सब बातो को सुनकर नमिराज ने मन्त्रियो को बुलाकर सब बातो से परिचित किया और चन्द्रयश पर चढाई करने की इच्छा प्रकट की। मन्त्रियो ने भी समर्थन किया। अन्त मे नमिराज ने सुदर्शनपुर पर चढाई कर दी। उसने रात के समय सुर्दशनपुर के चारो ओर सेना का घेरा डाल दिया। घेरा डालने से पहले उसने चन्द्रयश को अपनी चढाई की खबर तक नही होने दी।

जब चन्द्रयश को ज्ञात हुआ कि नमिराज ने चढाई कर दी और उसकी सेना ने नगर को घेर लिया है। यह ज्ञात होने पर चन्द्रयश ने अपने सेनापति एव मन्त्रियो को परामर्श करने के लिए बुलाया। सबकी सम्मति यही हुई कि नमिराज ने वीरोचित मार्ग त्याग कर कायरो की तरह चढाई की है और नगर को घेरा है। यदि नमिराज वीर होता तो इस तरह चुपचाप नही आता किन्तु हमे सावधान करता। कुछ भी हो जब शत्रु स्वय चढाई करके आया हो और हमे युद्ध के लिए ललकार रहा हो तब उसस युद्ध न करना कायरता है। इसलिए नमिराज पर अवश्य ही आक्रमण करना चाहिए और उसकी रण–तृष्णा सदा के लिये शान्त कर देनी चाहिए।

युद्ध करना चाहिए कि शत्रु–सेना की तो अधिक हानि हो परन्तु अपनी अधिक हानि न हो। साथ ही शत्रु–सेना निर्बल तथा उत्साहहीन हो जाए और अकुलाकर थक जाए। ऐसा होने पर अपने लिए शत्रु–दल को परास्त करना बहुत सरल होगा। उस समय यदि हम शत्रु–सेना पर अनायास आक्रमण करेगे तो शत्रु–सेना अवश्य ही छिन्न–भिन्न होकर भाग जाएगी। इसके लिए मैं यह उचित समझता हू कि अपनी सेना दुर्ग के ऊपर से ही युद्ध करे नगर एव दुर्ग के द्वार तो बन्द हैं ही उन्हे अभी नही खोला जाए। कुछ दिनो के पश्चात् जब शत्रु–दल मे शिथिलता देखी जाये, तब अचानक द्वार खोलकर उस पर आक्रमण कर दिया जाये। ऐसा करने पर निश्चय ही अपनी विजय होगी।

सेनापति की यह सम्मति चन्द्रयश को भी उचित जान पडी और मन्त्रियो को भी। इस प्रकार सेनापति की सम्मति के अनुसार ही युद्ध करने का निश्चय किया।

चन्द्रयश ने अपनी सेना को तेयार होने का आदेश दिया। चन्द्रयश की आज्ञानुसार सेना सुसज्जित हो गई। चन्द्रयश ने सैनिको को युद्ध के कारणा से परिचित करके नमिराज की चढाई को अनुचित बताया। फिर सनिको को उत्तजित करने के लिए उनकी वीरता की प्रशसा की तथा उन्हे वीरोचित कर्तव्य का भी भान कराया। चन्द्रयश ने जब सेनिको को उत्साहित देखा तब उन्ह दुर्ग पर चढकर शत्रु–सेना से युद्ध करने की आज्ञा दी। आज्ञा प्राप्त हाते ही सना दुर्ग पर चढ गई और नमिराज की सेना पर प्रहार करन लगी।

नमिराज की सना नीचे थी और चन्द्रयश की सेना दुर्ग पर थी। इसलिए नमिराज की सना चन्द्रयश की वेसी हानि नहीं कर पाती थी जेसी हानि चन्द्रयश की सना द्वारा नमिराज की सना को हो रही थी। नमिराज समझता था कि चन्द्रयश की सना दुर्ग स बाहर निकल अभिमुख हो युद्ध करगी लकिन जब चन्द्रयश की सना को दुर्ग पर स ही प्रहार करत देखा तब उस बहुत निराशा हुई। वह कुछ निश्चय न कर सका कि इस समय क्या करना चाहिए? चन्द्रयश की सना द्वारा नमिराज क बहुत–स सैनिक हताहत हुए। नमिराज की सना का उत्साह भी बहुत–कुछ मन्द पड गया।

सध्या क समय युद्ध बन्द होन पर नमिराज न हताहत सैनिको की व्यवस्था कराई। यह करक वह अपन साथी सामन्तो एव सेनाधिपो स परामश

करने लगा कि आगामी दिन अपनी युद्ध–विधि कैसी होनी चाहिए? उसने उपस्थित लोगो से कहा– चन्द्रयश यदि वीर होता तो इस तरह द्वार बन्द करके दुर्ग मे ही नहीं बैठा रहता, किन्तु बाहर निकल कर युद्ध करता। उसका दुर्ग से बाहर नहीं निकलना यह सिद्ध करता है कि वह हम लोगो से भयभीत है।

नमिराज के सामन्तो एव सेनानियो ने भी नमिराज के सुर मे अपना सुर मिलाया। वे भी चन्द्रनश को कायर कहने लगे। नमिराज ने इस तरह की पारम्भिक बाते करके कल की युद्ध–विधि कैसी हो यह प्रसग छेडा। उसने कहा– चन्द्रयश तो कायरता बता रहा है परन्तु अपने को क्या करना चाहिए और कल किस तरह युद्ध करना चाहिए? शत्रु–सेना दुर्ग के ऊपर से शस्त्र–वर्षा करके हमारी हानि करती है। यदि वह बाहर निकले तब तो हमे अपना पराक्रम दिखाने का अवसर मिले परन्तु वह तो कायर चन्द्रयश की सेना ठहरी! कायर की सेना भी कायर ही होती है। ऐसी दशा मे हम लोग नगर का घेरा डाले कब तक पडे रहेगे? इस तरह घेरा डालकर पडे रहने से एव धन–जन की क्षति होती रहने से सैनिको का उत्साह मन्द पड जायेगा। वे अकुला जायेगे और उनमे शिथिलता आ जायेगी। इसलिए ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे युद्ध शीघ्र समाप्त हो जाए तथा कायर चन्द्रयश को उसके कृत्य का दण्ड दिया जा सके।

तब नमिराज के सामन्तो और सेनानियो ने राय दी– इसका एकमात्र उपाय यही हो सकता है कि कल नगर तथा दुर्ग के द्वार पर आक्रमण करके उसे तोडा जावे। जब नगर और दुर्ग का द्वार टूट जायगा तब हमारी सेना दुर्ग तथा नगर मे प्रवेश कर सकेगी अथवा चन्द्रयश एव उसकी सेना को बाहर आना होगा और उस दशा मे सहज ही विजय प्राप्त की जा सकेगी। हम कल ऐसा ही करेगे तब चन्द्रयश एव उसकी सेना को ज्ञात हो सकेगा कि दुर्ग मे छिपकर शस्त्रास्त्र चलाने तथा बाहर न निकलने का क्या परिणाम होता है।

प्रात काल नमिराज ने अपनी सेना की वीरता की प्रशसा की उसको वीरोचित उपदेश दिया और उसे नगर एव दुर्ग का द्वार तोडकर नगर और दुर्ग पर अधिकार करने की आज्ञा दी। साथ ही उसने सैनिको को यह शिक्षा भी दी कि नि शस्त्र प्रजा की धन–जन सम्बन्धी कोई हानि मत करना। अपराध केवल चन्द्रयश का है न कि प्रजा का। निरपराध पर अत्याचार करना, वीरता पर कलक लगाना है। प्रजा के धन को धूल और प्रजा की बहू–बेटियो को अपनी मा–बहन मानकर सुदर्शनपुर की प्रजा को यह सिद्ध कर दिखाना कि मिथिला के सैनिक वीर हैं वे निरपराध लोगो और निरस्त्र तथा भागते हुए शत्रुओ के साथ उदारता एव क्षमा का व्यवहार करते हैं।

अज्ञानान्त

आत्मा मे जब तक अज्ञान रहता है आत्मा जब तक वास्तविकता को नही जानती है वस्तु के स्वरूप को नही पहचानती है तब तक वह कार्य भी विपरीत ही करती है। जो व्यक्ति चादी को चादी नही समझता किन्तु सीप मानता है वह चादी का वैसा ही अनादर करता है जैसा अनादर सीप का किया जाता है। बल्कि वह सीप मानी हुई चादी को हाथ मे आने पर भी त्याग देता है। वास्तविकता न जानने पर ऐसा होता ही है। किसी कवि ने कहा ही है–

नवेत्तियो यस्य गुणप्रकर्ष सत सदा निन्दति नात्र चित्रम्।
यथा किराति करिकुम्भ लब्धा मुक्ता परित्यज्य बिभर्ति गुजाम।।

अर्थात् जो जिसके गुण को नही जानता वह उसका अनादर करता है। जैसे भीलनी गुजा (घूघची) तो पहनती है लेकिन गजमुक्ता को फेक देती है।

भीलनी गजमुक्ता का अनादर और गुजा का आदर इसीलिए करती है कि वह गुजा और गजमुक्ता के गुण मूल्य एव दोनो के भेद से अपरिचित है। वास्तव मे जब तक अज्ञान है तब तक यह मालूम ही नही पड़ता कि हेय ज्ञेय और उपादेय क्या है। इस कारण दृष्टि मे विपर्यास होना और वस्तु के साथ विपरीत व्यवहार करना स्वाभाविक है।

सेना को प्रोत्साहन एव वीरोचित कर्तव्य की शिक्षा देकर नमिराज नगर ओर दुर्ग का द्वार ताडने के लिए सेना को भेजना ही चाहता था कि इतने मे उसकी दृष्टि अपनी ओर आती हुई दो साध्वियो पर पडी। साध्वियो को देखकर नमिराज को आश्चर्य हुआ कि ये सयमधारिणी यहा युद्धस्थल पर कैसे आई। इस तरह आश्चर्य करता हुआ नमिराज उन साध्वियो के सम्मुख पहुचा और उनको विधिवत वन्दन–नमस्कार किया तथा उनके दर्शन–लाभ होने के कारण अपने भाग्य को सराहा। तत्पश्चात उसने साध्वियो से कहा– आप सयमधारिणी यहा युद्धस्थल पर किस प्रयोजन से पधारी हैं? आप लोगो के लिए ऐसे स्थान पर जाना जहा युद्ध हो रहा हो कल्पना के बाहर है। इस समय मैं चन्द्रयश को तथा चन्द्रयश मुझे मार डालना चाहते हैं। ऐसे द्वन्द्व के समय आपका कोई उपदेश सार्थक नही हो सकता तथा इसी कारण भगवान ने सयमधारी के लिए ऐसे समय म एव ऐसे स्थान पर जाने का निषेध किया है। ऐसा होते भी आपका आगमन यहा कैसे हुआ यह जानने के लिए म बहुत उत्सुक हू।

नमिराज के सम्मुख उपस्थित दोनो सतियो मे से एक तो सती सुव्रता (पूर्व की मदनरेखा नमिराज की जन्मदात्री माता) थी ओर दूसरी सती उनक साथ आई थी। नमिराज क कथन क उत्तर म सती सुव्रताजी ने कहा– राजन्! तुम्हारा कथन ठीक हे कि सयमधारी को ऐसे स्थान पर नहीं जाना चाहिए परन्तु हम किसी विशेष कारण स ही यहा आई ह और यह जानना चाहती ह कि इस युद्ध का कारण क्या हे? किस घटनावश इस युद्ध का प्रसग उपस्थित हुआ हे?

नमिराज न अधिकार क गर्व एव क्रोध क वश होकर चन्द्रयश पर चढाई की थी ओर युद्ध भी प्रारम्भ कर दिया था फिर भी वह चरमशरीरी महापुरुष था तथा धर्म भी जानता था। इस कारण वह सुव्रताजी सती क प्रश्न का उत्तर दन क लिए असमजस म पड गया। सोचन लगा कि प्रश्न का क्या उत्तर दू? इनक सम्मुख झूठ बोलकर युद्ध का दूसरा कारण बताना तो सर्वथा अनुचित एवम महान पाप होगा ओर यदि वास्तविक कारण बताता ह, तो य सती यही कहगी कि तुम दूसर क छोट–छोट अपराधो का तो विचार करत हो तथा उन्ह दण्ड दत हो और स्वय एक हाथी क लिए इतने मनुष्यो क [illegible] कर रह हो! ऐसी दशा म इन सती को क्या उत्तर दू?

इस प्रकार विचार करने के पश्चात् नमिराज इस निश्चय पर पहुचा कि इन सती का प्रश्न बिना उत्तर दिये ही टाल देना चाहिए। इस निश्चय पर पहुच कर उसने सती सुव्रताजी से कहा– आप जैसी त्यागी साध्वी को यह प्रश्न करना ही नही चाहिए। ये ससार के झगडे इसी तरह चला करते है। सयमधारियो को न तो ऐसे झगडो का कारण ही पूछना चाहिए तथा न ही इस तरह के किसी पपच मे ही पडना चाहिए। इसलिए आप युद्ध का कारण न पूछिये किन्तु यहा से पधार जाइये और किसी शात स्थान पर पहुच कर ज्ञान–ध्यान द्वारा मोक्षप्राप्ति का प्रयत्न कीजिये।

नमिराज का यह उत्तर रूक्ष था फिर भी सुव्रता सती के हृदय पर नमिराज के उत्तर का कोई पतिकूल प्रभाव नही हुआ। वे पहले की तरह ही प्रसन्न बनी रही। उन्होने नमिराज से कहा– राजन! ऐसा जान पडता है कि युद्ध का कारण बताने मे तुम्हे कुछ सकोच हो रहा है। इसी से तुमने ऐसा उत्तर दिया है और जिस अज्ञानता के कारण तुम नर–रक्त बहाने को तैयार हुए हो उसी अज्ञानता मे हमे भी रखना चाहते हो। लेकिन तुम्हारा यह प्रयत्न व्यर्थ है। हम से युद्ध का कारण छिपा नही है। हम सब जानती है तथा इसी कारण हम तुम्हारा यह अज्ञान मिटाने के लिए ही यहा आई है जिसके कारण यह युद्ध का वातावरण उत्पन्न हुआ है।

मिटाने के लिए आप जो उपदेश दे उसे सुनू। राजनीति और धर्म भिन्न–भिन्न वस्तु हैं। आप धर्म का मर्म तो जानती हैं, लेकिन राजनीति नहीं जानती। क्या इसी से मेरा अज्ञान मिटाने का प्रयत्न करना चाहती है?

नमिराज के कथन के उत्तर मे सती ने कहा– राजनीति और धर्म मे कोई सबध नही मानना भी और हमे राजनीति से अनभिज्ञ कहना भी तुम्हारी अज्ञानता है। हम राजनीति ही नहीं, बल्कि उसका तल भी जानती हैं। तुम अपना अज्ञान नही मिटाना चाहते हो लेकिन अज्ञान न मिटाने पर चन्द्रयश की अपेक्षा तुम अपनी ही हानि अधिक करोगे। जो अज्ञान हम अभी मिटाना चाहती हैं वह यदि अभी न मिटकर युद्ध के बाद मिटा तो उस दशा मे तुम्हे असह्य पश्चात्ताप तथा दु ख होगा। इसलिए यही अच्छा है कि तुम हमारे कथन को सुनना स्वीकार करो और अज्ञानान्धकार से निकल कर प्रकाश मे लौट आओ। हमारा कथन विस्तृत भी नही होगा कि जिसे सुनने मे अधिक समय की आवश्यकता हो।

राती सुव्रताजी के कथन ने नमिराज के हृदय मे खलबली पैदा कर दी। वह सोचने लगा कि ये सतिया न मालूम क्या कहना चाहती है? यदि मै इनका कथन नही सुनता हू, तो सम्भव है मुझे युद्ध के अन्त मे दु खी होना पडे ओर यदि सुनना स्वीकार करता हू, तो ये न मालूम क्या कहेगी? ऐसा सोचकर नमिराज इस निश्चय पर पहुचा कि एक बार इनका कथन सुनना ता चाहिये ही। यदि इनके कथन म कोई महत्त्व की बात हुई तब तो ठीक ही ह नही ता में अपना कार्य करने के लिए स्वतन्त्र हू।

इस तरह साचकर नमिराज ने सती सुव्रताजी रा कहा– अच्छा आप क्या कहना चाहती हे कहिये। लकिन जो–कुछ भी कहे वह बहुत थाडे म कहे। नमिराज के यह कहन पर सुव्रता राती न कहा– राजन्! तुम यह युद्ध एक हाथी क लिए ही तो कर रहे हा परन्तु यह तो बताओ कि यदि छोट भाई का एक हाथी बडा भाई ले ले तो क्या छाट भाइ क लिए यह उचित हे कि वह बड भाई का मार डाले या मार डालने क लिए उद्यत हा? राती क इस कथन क उत्तर म नमिराज न कहा– नहीं छाट भाइ का ऐसा कदापि नहीं करना चाहिए किन्तु बड भाई क लिए अपना सर्वस्व त्याग दना चाहिए। लकिन मेरे और चन्द्रयश क बीच यह सबध कहा है जो आप ऐसा प्रश्न करती ह? न ता चन्द्रयश मरा भाई है न मैं चन्द्रयश का भाई हू। इसलिए आपका यह कथन इस प्रसग क लिए सर्वथा असगत है।

नमिराज का कथन सुनकर सुव्रता सती बोली– राजन्! यही तो अज्ञान है और इसी अज्ञान को मिटाना मेरा उद्देश्य है। सुनो! तुम और चन्द्रयश दोनो सहोदर भाई हो तथा मैं तुम दोनो की जन्मदात्री माता हू। चन्द्रयश बडा और तुम छोटे हो। इस सबध के होते हुए तुम दोनो केवल एक हाथी के लिए युद्ध करो यह कदापि उचित नही है।

सती का कथन सुनकर नमिराज को बहुत ही आश्चर्य हुआ। उसने कहा– आपके इस कथन को मैं सत्य कैसे मान सकता हू, जबकि मैं महाराज पद्मरथ और महारानी पुष्पमाला का पुत्र हू? तब चन्द्रयश मेरा भाई कैसे हुआ? तथा आप मेरी माता किस तरह हुई? नमिराज के इस कथन पर सती सुव्रताजी ने अपने गृहस्थ जीवन का परिचय देकर उस घटना का वर्णन किया जिसके कारण उन्हे वन मे भाग जाना पडा था और वहा उसका जन्म हुआ था। इसके बाद उन्होने कहा– मै एक वृक्ष की डाली मे वस्त्र की झोली बाध उसमे तुम्हे सुलाकर शरीर की शुद्धि के लिए सरोवर पर गई थी जहा हाथी ने अपनी सूड से मुझे आकाश मे फेक दिया और मै मणिप्रभ विद्याधर के विमान मे जा गिरी। मणिप्रभ की कृपा से मै एक विशेष ज्ञानी मुनि की सेवा मे पहुच गई जिन्होने तुम्हारे विषय मे मुझ से कहा कि तुम्हारे बालक को मिथिला का राजा पद्मरथ ले गया है तथा उसकी रानी पुष्पमाला अपना पुत्र बताकर पाल–पोष रही है। मुनि से यह जानकर मुझे सन्तोष हुआ। साथ ही तुम्हे देखने की प्रबल इच्छा भी हुई। इतने मे वही पर तुम्हारे देव–पदधारी पिता भी आ गये जिनके विमान मे बैठकर मै मिथिला आई। वहा सुदर्शना सती का उपदेश सुनने से मुझे ससार से सर्वथा विरक्ति हो गई

दे तो मैं जाकर वह अज्ञान मिटा दू और उस आग को भी शात कर दू। मेरे यह कहने पर गुरुआनीजी ने पूछा कि ससार मे आग किस तरह लगी हुई है तथा तुम उसको किस तरह शात कर सकती हो? मैंने कहा कि मेरे दोनो पुत्र नमिराज और चन्द्रयश यह नही जानते कि हम दोनो सहोदर भाई हैं। इस अज्ञानता के कारण वे आपस मे युद्ध कर रहे हैं तथा एक–दूसरे के प्राण लेना चाहते हैं। यदि उनका यह अज्ञान मिट जाये तो सम्भव है वे युद्ध करना त्याग दे। आप स्वीकृति दे तो मैं जाकर इस गुप्त रहस्य को प्रकट करके उनका अज्ञान मिटा दू, जिससे युद्ध रुक जावे।

मेरी इस प्रार्थना पर गुरुआनीजी ने कहा– सयमधारियो को युद्ध–स्थल पर जाना तो नही चाहिए, लेकिन वह युद्ध तुम्हारे गये बिना मिट भी नहीं सकता। क्योकि उन दोनो के भाई होने की बात को तुम्ही जानती हो। ऐसी बातो को दृष्टि मे रखकर ही भगवान् ने उत्सर्ग तथा अपवाद ये दो मार्ग बताये हैं। उत्सर्ग मार्ग मे तो सयमी का युद्धस्थल पर जाना निषिद्ध ही है लेकिन मैं अपवादस्वरूप तुम्हे यह आज्ञा देती हू कि तुम जाकर इस अज्ञान को मिटाने और युद्ध रोकने का प्रयत्न करो। इस प्रकार गुरुआनीजी की आज्ञा लेकर ही मैं यहा आई हू तथा तुम से कहती हू कि तुम और चन्द्रयश आपस मे भाई–भाई हो इसलिए युद्ध न करो।

सती सुव्रताजी के कथन को नमिराज ने ध्यानपूर्वक सुना। सती का कथन समाप्त हो जाने पर वह कहने लगा कि आप साध्वी होने के कारण झूठ तो नही बोल सकती फिर भी मै आपके कहने मात्र से आपको अपनी माता तथा चन्द्रयश को अपना भाई कैसे मान सकता हू? साथ ही जिन्होने मेरा पालन–पोषण करके मुझे अपना उत्तराधिकार दिया राज्य सौंपा उन महाराज पद्मरथ और महारानी पुष्पमाला को माता–पिता मानना कैसे त्याग सकता हू? आज तो आप मेरी माता बनने को तैयार हो गई लेकिन बाल्यकाल मे यदि पद्मरथ तथा पुष्पमाला ने मेरी रक्षा न की होती मेरा पालन–पोषण न किया होता तो क्या मेरा जीवन रह सकता था? इसके सिवा यदि आपके कथनानुसार मैं आप ही का पुत्र हू, तब भी मै आपका परित्यक्त पुत्र हू। इसलिए मेरा और आपका क्या सबध रहा? मैं आपको अपनी माता कैसे मान लू?

नमिराज के कथन के उत्तर मे सती सुव्रता कहने लगी– राजन्! स्त्रियो का जीवन कैसा होता है और तुम्हे जन्म देने के पश्चात मैं कैसे सकट

मे पड गई थी इसका तुम्हे पता ही नही है। नहीं तो तुम ऐसा कदापि नही कहते। यह तो मेरा आयुर्बल शेष था जिससे मैं जीवित रह गई तथा तुम से यह कह रही हू कि तुम्हारी जन्मदात्री माता हू, लेकिन मर गई होती तो यह भी कौन कहता! मैं तुमको सदा के लिए त्याग कर तो गई नही थी। कुछ देर के लिए छोड कर शरीर शुद्ध करने गई थी। यदि मुझे सदा के लिए तुम्हारा परित्याग करना होता तो मै तुम्हारी रक्षा का प्रयत्न क्यो कर जाती? वृक्ष की डाली मे झोली बाध कर उसमे तुम्हे क्यो सुला जाती और तुम्हारे सबध मे मुनि से पूछताछ क्यो करती? मैं विषम परिस्थिति मे पड गई थी इसी कारण तुम मुझ से बिछडे। नही तो मातृ–हृदय ऐसा कठोर नही होता है कि जो अपने बालक को त्याग दे। इतने पर भी मैं यह नही कहती कि तुम पुष्पमाला को माता न मानो। मै तो यही कहती हू कि तुम्हारी जन्मदात्री माता मै हू। इसके सिवा मैं तुम से कुछ चाहने के लिए यह सबध नही बता रही हू। मेरी यह कामना नही है कि तुम मुझे राजमाता बनाओ ओर मै राजमाता बन कर राजैश्वर्य का उपभोग करू। मै तो केवल यह कह रही हू कि चन्द्रयश तुम्हारा भाई है अत एक हाथी के लिए उसके प्राणो के ग्राहक मत बनो। कदाचित् तुम्हारी दृष्टि मे मै अपराधिनी होऊ इस कारण मुझे माता न बनाना चाहो लेकिन चन्द्रयश ने तो तुम्हारा कोई अपराध नही किया है। इसलिए उसको भाई मानने मे तो तुम्हे कोई आपत्ति नही होनी चाहिए। उसके साथ प्रेम का व्यवहार करना चाहिए युद्ध नही।

इससे उबरने के लिए मैं यह कहती हू कि तुम तो जन्मते ही मुझसे छूट गये थे इस कारण मुझे नही पहचानते परन्तु चन्द्रयश तो अब भी मुझे पहचान लेगा। क्योकि जिस समय तुम्हारे पिता की हत्या की गई थी तथा मैं वन मे भाग गई थी उस समय चन्द्रयश सयाना था। इसलिए वह मुझे अवश्य ही पहचान लेगा। मै उसके पास जाकर उसे भी यह सब बताती हू कि नमिराज तुम्हारा छोटा भाई है। मैं विश्वास करती हू कि यह जानते ही वह भ्रातृ–स्नेह के वश अवश्य ही तुम्हारे पास आयेगा, जिससे तुम्हे पूरी तरह विश्वास हो जायेगा कि चन्द्रयश मेरा बडा भाई है। लेकिन मैं चन्द्रयश के पास जाने से पहले तुम से यह प्रतिज्ञा कराना आवश्यक समझती हू कि जब चन्द्रयश तुम से मिलने के लिए आये तब तुम सद्भावपूर्वक उसका सम्मान करोगे हृदय मे किसी प्रकार की दुर्भाव नही रखोगे न ही ऐसा व्यवहार ही करोगे जिसका करना बडे भाई के प्रति अनुचित माना जाता हो। क्या तुम इन बातो के लिए मुझे विश्वास दिला सकते हो?

नमिराज ने उत्तर दिया– आपके इस कथन ने मुझे असमंजस मे डूबने से बचा लिया है। अत मै प्रतिज्ञा करता हू कि यदि महाराज चन्द्रयश मुझ से मिलने आयेगे तो मैं उनका हृदय से सम्मान करूगा उनके प्रति कोई दुर्भाव नही रखूगा। मिलने आये हुए शत्रु के प्रति भी आदर और प्रेम का व्यवहार किया जाता है तो जिन्हे आप मेरा बडा भाई कहती है उनके साथ मे अनादर का व्यवहार कैसे कर सकता हू। बल्कि मुझे यह विश्वास हो जाये कि चन्द्रयश मेरे भाई है तो मैं स्वय उनकी सेवा मे उपस्थित होकर अपने अपराध के लिए उनसे क्षमा माग लूगा। आप मेरी ओर से निश्चिन्त रहिए तथा जो–कुछ करना चाहती है वही करिये।

नमिराज का कथन सुनकर सती सुव्रताजी नमिराज से यह कहकर सुदर्शनपुर की ओर चल दी कि अब तुम नगर और दुर्ग पर आक्रमण मत करना।

नमिराज के यहा से चलकर दोनो सतिया सुदर्शनपुर के द्वार पर आई। द्वार बन्द था। द्वार–रक्षको के सरदार ने सतीजी से कहा– यह युद्ध का समय है इसलिए द्वार नही खुल सकता। तब सती ने सरदार का नाम लेकर उसे कहा– तुम पूर्ण स्वामिभक्त हो यह मै जानती हू। इसलिए युद्ध के समय तुम्हारा द्वार न खोलना और किसी को भीतर न आने देना उचित ही है परन्तु जिस समय युद्ध स्थगित है उस समय हम साध्वियो को नगर मे आने देने मे तो कोई आपत्ति नही होनी चाहिए।

सुव्रताजी सती के मुख से अपना नाम सुनकर सरदार को आश्चर्य हुआ। उसने कहा कि आपको मेरा नाम कैसे ज्ञात हुआ? सती ने उत्तर दिया कि मैं तुम्हारा नाम बहुत पहले से ही जानती हू। सरदार ने पूछा कि कब से और कैसे? तब सती ने अपना पूर्व परिचय सुनाकर बताया कि मैं तुम्हारे राजा चन्द्रयश की माता हू। सती का परिचय जानकर सरदार ने कहा कि आप यहा पधारी यह तो बडी प्रसन्नता की बात है, परन्तु युद्धकाल मे दुर्ग या नगर का द्वार खोलना नियम–विरुद्ध है। सरदार के इस कथन के उत्तर मे सती ने कहा कि यदि तुम अपने अधिकार से द्वार नही खोलना चाहते तो अपने स्वामी से स्वीकृति प्राप्त कर लो। मेरा परिचय देकर उनसे यह भी कहना कि नमिराज से तुम्हे किचित् मात्र भी भय नही करना चाहिए। नमिराज तुम्हारा छोटा भाई है जो अज्ञानतावश तुमसे युद्ध करने आया था परन्तु अब उसने यह सबध जान कर युद्ध स्थगित कर दिया है।

सती का यह कथन सुनकर द्वाररक्षक सामन्त को और भी आश्चर्य हुआ। उसने कहा– अच्छा आप यही ठहरिए मैं अभी जाकर महाराज को यह सब समाचार सुनाता हू। फिर वे जैसी आज्ञा देगे वैसा ही करेगे। सती से यह कहकर द्वाररक्षक सामन्त चन्द्रयश के पास गया। उसने चन्द्रयश के पास सूचना भेजी कि द्वाररक्षक सामन्त एक आवश्यक शुभ समाचार लेकर उपस्थित हुआ है। सामन्त द्वारा भेजी गई सूचना से चन्द्रयश बहुत ही प्रसन्न हुआ। शत्रु का नम्र होना और सधि–प्रस्ताव भेजना यही युद्ध के समय शुभ समाचार माना जाता है इसलिए चन्द्रयश ने यही समझा कि एक ही दिन मे हुई क्षति से नमिराज भयभीत हो गया होगा और उसने किसी के द्वारा सधि का प्रस्ताव भेजा होगा। ऐसा समझ कर प्रसन्नतापूर्वक चन्द्रयश ने द्वाररक्षक सामत को उपस्थित होने की आज्ञा दी। द्वाररक्षक चन्द्रयश के सम्मुख उपस्थित हुआ और निवेदन किया– महाराज! आपकी जय हो विजय हो एक शुभ समाचार लेकर आपकी सेवा मे उपस्थित हुआ हू।

द्वाररक्षक सामत का कथन सुनकर, चन्द्रयश अत्यत हर्षित हुआ। उसने द्वाररक्षक से कहा– द्वार के समीप शत्रु सेना तो नहीं है यह जानने के पश्चात् द्वार खोलकर तुम माताजी को भीतर ले आओ मैं भी आ रहा हू। चन्द्रयश की आज्ञा पाकर द्वाररक्षक सामत द्वार पर आया। नमिराज की सेना द्वार के समीप नही है यह विश्वास करने के पश्चात् उसने कपाट खोलकर सुव्रता सती और उनके साथ की दूसरी सती को नगर मे प्रवेश कराया। नगर मे आ जाने पर द्वाररक्षक सामत ने उनसे अपने अपराध के लिए क्षमा माग कर यह प्रार्थना की– आप यहीं ठहरिए, महाराज चन्द्रयश अभी यही आते हैं। द्वाररक्षक ऐसा कह रहा था कि इसी बीच चन्द्रयश भी वही आ गया। उसने देखते ही माता को पहचान लिया और इतना हर्षित हुआ कि उसकी आखो से आसू गिरने लगे। उसने सती को विविधपूर्वक वन्दन किया और फिर रुधे कठ से कहने लगा– मैंने बहुत ढूढा, लेकिन आपका कही भी पता न लगा। आज का दिन बडा ही शुभ दिन है जो अनायास ही आपका दर्शन हुआ और वह भी इस सकट के समय मे। मुझे वह दु खद समय याद आ रहा है जब पिता तथा पितृव्य के देह–त्याग के साथ ही, मुझ अभागे को आपने भी असहाय छोड दिया था। आप उस सकटकाल मे कहा तथा क्यो चली गई थी? मै यह जानने के लिए उत्सुक हू कि आप इतने समय तक कहा रही सयम–वश क्या धारण किया एव उरा वालक का क्या किया जो आपके गर्भ म था?

सती सुव्रता ने चन्द्रयश को धेर्य प्रदान कर शात किया। महाराज चन्द्रयश की सयमधारिणी माता आई है यह जानकर नगर और राजपरिवार के अनेक लोग भी वहा एकत्रित हो गए थ। चन्द्रयश को धेर्य देकर राती न युगवाहु क मरने के पश्चात का अपना राव हाल कह सुनाया और वताया कि में किन कारणो से वन म गई थी? चन्द्रयश ने जव राती रा नमिराज विषयक समाचार सुना तव वह वहुत ही प्रसन्न हुआ और वाला– इरा रामाचार ने मुझ वहुत ही आनदित किया हे कि नमिराज मरा भाई ही है। यह वात मुझ पहले मालूम हा जाती ता में एक हाथी क लिए नमिराज रो युद्ध करने को कदापि तैयार नहीं हाता। अब में नमिराज रो युद्ध नही करूगा किन्तु उराकी प्रराननता क लिए अपना सर्वस्व त्यागना भी कर्तव्य मानूगा।

यह कहकर चन्द्रयश नमिराज क पास जान का उद्यत हुआ। उपस्थित लागा का भी यह वृतात सुनकर वडी प्रराननता हुई कि नमिराज आर चन्द्रयश दाना भाई–भाई हैं। सव लाग इरा विचार रा और अधिक

आनदित हुए कि जिस युद्ध के कारण लोग भविष्य की चिता से दु खी हो रहे थे, वह युद्ध नही होगा।

नमिराज के पास जाने के लिए उद्यत चन्द्रयश से सती ने कहा– चन्द्रयश ठहरो! इतने उतावले मत बनो। अभी मैंने यह बताया ही नही कि मैंने सयम क्यो लिया और यहा क्यो नही आई? चन्द्रयश को ठहरा कर सती ने सयम लेने का कारण और नमिराज के पास जाने एव सुदर्शनपुर आने तक का सब वृत्तात कह सुनाया तथा नमिराज से जो बातचीत हुई थी, वह सुनाकर कहा– तुम और नमिराज मे अज्ञानता के कारण ही युद्ध हो रहा है। नमिराज और तुम दोनो अज्ञानता मे हो। अभी तक दोनो ही यह नही जानते थे कि हम आपस मे भाई–भाई हैं। मैं तुम दोनो का यह अज्ञान मिटाने के लिए ही आई थी। मेरा यह उद्देश्य पूरा हो गया है। अब तुम्हे जैसा उचित जान पडे वैसा ही कर सकते हो, लेकिन मैं अपनी ओर से तो नमिराज की ही तरह तुमसे भी यही कहती हू कि एक हाथी के लिए भाई–भाई का आपस मे युद्ध करना और मनुष्यो का रक्त बहाना सर्वथा अनुचित है। नमिराज ने मेरे कथन को स्वीकार करके युद्ध स्थगित कर दिया है। वह तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा होगा।

सती का कथन समाप्त होने पर चन्द्रयश ने कहा– अब तक मुझे ज्ञात न था कि मेरा कोई भाई भी है जिससे अपने को भ्रातृहीन और अभागा मानकर खेद किया करता था तथा सोचा करता था कि मुझे किस कारण भ्रातृहीन होना पडा है। नमिराज मेरा छोटा भाई है यह जानकर मेरा यह खेद मिट गया है तथा मुझे अत्यत आनद ही हुआ है। ऐसी दशा मे अब मैं नमिराज से युद्ध क्यो करू? हाथी तो क्या यदि वह मेरे प्राण लेने के लिए भी उद्यत हो जाये तब भी उसके विरुद्ध शस्त्र नही उठा सकता। आपने जन्म देकर और पाल–पोष कर तो मुझे अपना ऋणी बनाया ही था अब मुझे भाई बताकर मेरा बहुत बडा उपकार किया है। इसके लिए मैं आपका महान ऋणी हू। अब मैं नमिराज के पास जाता हू। साथ लौटकर आपका दर्शन एव आपको वदन करूगा।

भ्रातृमिलन

सासारिक लोगो के लिए भाई ' शब्द बहुत ही प्रिय होता है और जिसका वाचक शब्द प्रिय है उसका वाच्य व्यक्ति या पदार्थ प्रिय हो यह स्वाभाविक है। ससार मे जितने भी स्नेह हे उनमे भ्रातृस्नेह भी एक है। नीतिकारो का कहना है कि ससार मे दूसरे स्नेही सबधियो का मिलना उतना कठिन नही है जितना कठिन भाई का मिलना है। तुलसीदासजी ने रामायण मे राम के मुख से कहलाया है कि–

सुत वित नारि भवन परिवारा। होहि जाहि जग बारहिबारा।।
अस विचारि जिय जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता।।

अर्थात् (मूर्च्छित लक्ष्मण से रामचन्द्रजी कहते है) ससार मे पुत्र धन स्त्री और घर–परिवार तो बार–बार मिल जाते है लेकिन सहोदर भाई का मिलना कठिन है यह जानकर तुम जागो।

वेसे तो भाई शब्द और भाई का सबध प्रिय होने से व्यवहार मे भी एक–दूसरे को भाई कहते हैं लेकिन इन सब से जुडा हुआ स्नेह–सबध बहुत कम जगह देखने मे आयेगा जहा भ्रातृ–सबध का पूरी तरह पालन किया जाता है। भाई का सबध किस तरह निभाया जाता है या किस तरह निभाना उचित है उसके लिए राम लक्ष्मण भरत का भ्रातृस्नेह आदर्श है। राम ने भाई भरत के लिये अपने अधिकार का राज्य ही त्याग दिया था। लक्ष्मण अपने भाई राम के स्नेहाधीन हो राजसी सुख त्याग कर उनके साथ वन मे चले गये थे और भरत को यह जानकर बहुत दुःख हुआ था कि राम मेरे लिये ही वन मे गये है तथा उन्होने राम को लौटाने का बहुत प्रयत्न किया था और प्रयत्न मे असफल होने पर उन्होने राम की ओर से ही चौदह वर्ष तक वनवासी के समान चलाया था एव राम के लौटने पर राज–पाट उन्हें सौंप दिया था। मतलब यह कि भ्रातृ–सबध बहुत स्नेहपूर्ण होता है और उसे निभाने के लिए अधिक से अधिक त्याग एव औदार्य की आवश्यकता है।

जब भाई का ऐसा सबध है तब भाई का मिलना कैसा सुखद होगा! और वह भी एसे भाई का मिलना जिसे पहले देखा तक नही है तथा जो भ्रातृ-सबध ज्ञात न होने के कारण प्राणघातक शत्रु बना हुआ था। राणा प्रताप का भाई शक्तिसिह शत्रु बनकर अकबर की सेना के साथ प्रताप से युद्ध करने के लिए आया था। लेकिन जब शक्तिसिह ने प्रताप को आहत एव उनके प्राणो को सकट मे देखा तब वह शत्रुता त्याग प्रताप की रक्षा के लिये दौड पडा तथा प्रताप का पीछा करने वाले शत्रुओ को मारकर भाई से मिला। उस समय दोनो भाइयो को कैसा हर्ष हुआ होगा! उससे भी अधिक हर्ष चन्द्रयश और नमिराज को हुआ होगा जब वे आपस मे मिले होगे। क्योकि चन्द्रयश तथा नमिराज का एक-दूसरे को देखना तो दूर रहा वे यह भी नही जानते थे कि हमारे कोई भाई भी है। वे स्वय को भ्रातृहीन मानते थे। जबकि राणा प्रताप और शक्तिसिह दोनो यह जानते थे कि वे भाई है। चन्द्रयश एव नमिराज को अपना भ्रातृ-सबध उनकी माता सती सुव्रता द्वारा ज्ञात हुआ था। यह सबध ज्ञात होने पर दोनो भाई किस तरह मिले और भ्रातृ-सबध को विशालता देने के लिए कैसा त्याग किया आदि बाते इस प्रकरण से ज्ञात होगी।

चन्द्रयश सती के [illegible] आदि की व्यवस्था करके नमिराज के पास जाने को उद्यत हुआ। उस समय उसके हृदय मे अत्यन्त हर्ष था। सुदर्शनपुर की प्रजा भी युद्ध मिटने और नमिराज तथा चन्द्रयश के भ्रातृ-सबध को जानने के कारण बहुत ही आनदित हो रही थी। राज-परिवार एव नगर के अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति भी नमिराज का स्वागत करने के लिए चन्द्रयश के साथ चल पडे।

को अपने सीने से लगा लिया। उस समय दोनो के हृदय मे अपार हर्ष था और दोनो की आखो से हर्षाश्रु गिर रहे थे। दोनो भाइयो का यह मिलन देख कर सुदर्शनपुर की प्रजा तथा नमिराज की सेना आनदित होती हुई जय–जयकार करने लगी।

हर्षावेग कम होने पर नमिराज युद्ध एव अपने बडे भाई के वारते कहे गये कटु शब्दो के लिए स्वय को अपराधी मान कर चन्द्रयश से अपराध क्षमा करने की प्रार्थना करने लगा। दूसरी ओर चन्द्रयश स्वय को अपराधी बताकर कहने लगा कि तुम्हारा कोई अपराध नहीं है। तुमने अपनी ओर से तो मेरे पास यही प्रस्ताव भेजा था कि हाथी देकर प्रेम सबध जोड लिया जावे परन्तु मैने ही उस प्रस्ताव को ठुकरा दिया और हाथी लौटाने के बदले तुम्हारे लिए कठोर एव अपमानपूर्ण क्षब्द कहे। मेरे इस व्यवहार से यदि तुम मुझ पर चढाई कर आओ तो यह बात एक क्षत्रिय के लिए अस्वाभाविक नही है। इस प्रकार अपराध तुम्हारा नही मेरा है। तुम्हारे लिए क्षमा मागने का कोई कारण नही है क्षमा तो मै मागता हू।

इस तरह दोनो भाई अपना–अपना अपराध मानकर एक–दूसरे से क्षमा मागने लगे। जहा प्रत्येक व्यक्ति अपना अपराध मानता है वहा किसी प्रकार का कलह नही रह कर प्रेम और आनद ही रहता है। कलह तो वही है जहा दूसरे को अपराधी तथा स्वय को निरपराधी माना जाता है। इसके लिए राजा भोज के समय की एक घटना भी प्रसिद्ध है जो इस प्रकार है–

राजा भोज के नगर मे एक गरीब ब्राह्मण रहता था। परिवार मे वह उसकी माता और पत्नी, कुल तीन व्यक्ति थे। यद्यपि ब्राह्मण भीख मागने को बुरा मानता था परन्तु आजीविका का दूसरा साधन न था इसलिए यदि बिना मागे कोई कुछ देता था तो वह ले लेता था और उससे अपना काम चलाता था।

एक दिन ब्राह्मण सब जगह घूमा परन्तु उसको किसी ने कुछ नहीं दिया। दिन–भर भटक कर सन्ध्या को घर लौट आया। वह भूखा भी था तथा थक भी बहुत गया था। घर आकर उसने पत्नी से कहा– आज मुझे कहीं से कुछ भी प्राप्त नही हुआ है। भटकने के कारण मैं बहुत थक भी गया हू और मुझे भूख भी लगी है। इसलिए कुछ खाने को हो तो दो। ब्राह्मणी भी दिन–भर से भूखी थी। जब उसने पति से यह सुना कि आज कुछ नही मिला है तब उसे निराशा भी हुई और क्रोध भी बहुत आया। उसने कहा– मेरे पास क्या है जो मैं तुम्हे दू! यदि कुछ लाये होते तो फिर मुझ से देने को कहते तब तो ठीक भी था लेकिन लाने को कुछ नहीं और मुझ से कहते हो कि खाने

को दो। मैं क्या किसी के यहा चोरी करने जाऊं? ब्राह्मण ने कहा– मैं नित्य जो–कुछ लाता हू वह तुम्हे सौंप देता हू। गृहिणी का कर्तव्य है कि वह घर मे आई हुई वस्तु मे से कुछ आगे के लिए बचा कर रखे जिससे समय–असमय भूखा न रहना पडे। तुमको इस कर्तव्य का पालन करना चाहिए था जो नहीं किया और उलटा जवाब देती हो। ब्राह्मणी बोली– क्या आज तक कभी इतना अन्न घर मे लाये कि एक बार भी पूरी तरह पेट भर जाता? तब मैं बचा कर कहा से रखती? तुम्हारी तरह के लोग जो अपनी पत्नी को पेट–भर अन्न भी नही दे सकते वे विवाह ही क्यो करते हैं?

ब्राह्मण और ब्राह्मणी मे इस तरह की बाते होते–होते झगडा बढ गया और फिर ब्राह्मण क्रुद्ध होकर ब्राह्मणी को पीटने लगा। ब्राह्मणी रोने चिल्लाने लगी तथा कहने लगी कि मेरे को खाने के लिए देना तो दूर रहा उलटे मुझसे खाने को मागते हो और इसके ऊपर से पीटते हो आदि। ब्राह्मणी का रोना–चिल्लाना सुनकर पहले तो पुलिस ने ब्राह्मणी को बचाया और फिर पत्नी को पीटने के अपराध मे ब्राह्मण को पकड लिया। पुलिस द्वारा पकडे जाने के पश्चात् ब्राह्मण अपने मन मे पश्चात्ताप करने लगा। वह मन ही मन कहने लगा कि मैने पत्नी को पीट कर बहुत बुरा किया। मेरा कर्तव्य है कि मै अपनी पत्नी का पालन–पोषण करू। लेकिन मैने अपने इस कर्तव्य का पालन भी नही किया और पत्नी को पीटा। क्षुधा व दुःख तथा क्रोध के आवेश मे मैने यह अनुचित कार्य कर तो डाला लेकिन अब मुझे बात सम्हाल लेनी चाहिए। बात बढने नही देनी चाहिये।

चाण्डालोचित क्रोध निर्दयता आदि दुर्गुण आ गये इसी से मुझे आपके सम्मुख उपस्थित किया गया है। इसलिए आप मुझे ब्राह्मण नहीं किन्तु चाण्डाल कहिये। ब्राह्मण की बात सुनकर राजा ने कहा— तुम्हारा कहना ठीक है लेकिन मुझे तो चाण्डाल का भी न्याय करना होगा। इसलिए बताओ कि तुमने अपनी पत्नी को क्यो मारा? ब्राह्मण बोला— महाराज सुनिये—

अम्बा तुष्यति न मया न सनुशाया सागपि न अम्बया न मया।
अहमपि न तया न तया, वद राजन् कस्य दोषोऽयम्।।

अर्थात् मेरे घर मे मैं, मेरी माता और मेरी पत्नी ये तीन व्यक्ति हैं। मेरी माता मुझे कभी सतोष नही देती। वह मीठे शब्द भी नही बोलती किन्तु जब भी बोलती है, कटु शब्द ही। वह मेरी पत्नी के प्रति भी ऐसा ही व्यवहार करती है। इसी प्रकार मेरी पत्नी मेरी माता की सेवा—शुश्रूषा करना या उसकी आज्ञा मानना तो दूर रहा मेरी माता को कटु शब्द ही कहती है। मेरी मा या मेरी पत्नी ही ऐसी हो यह बात नही, किंतु मैं भी मा और पत्नी दोनो के प्रति ऐसा ही व्यवहार रखता हू। किसी को भी सन्तुष्ट नही रखता। और मेरी पत्नी का मेरे प्रति कैसा व्यवहार रहता है इसके लिए तो मैं आपके सम्मुख अभियुक्त बन कर खडा हुआ ही हू। अब आप ही बताइये कि इसमे किसका दोष हे और आप जिसका दोष मानते हो उसे दण्ड दीजिये।

राजा भोज ने ब्राह्मण के कथन पर विचार किया और भण्डारी को बुलाकर आज्ञा दी कि इसको एक सहस्र स्वर्ण—मुद्रा दे दो। भण्डारी ने सब बात जानकर राजा से कहा— पत्नी को पीटने के कारण इस ब्राह्मण को एक हजार स्वर्ण मुद्रा दने पर बेचारी स्त्रिया की तो दुर्गति ही हो जायेगी। आपसे हजार मुद्राए प्राप्त करने के लिये दूसरे भी अपनी—अपनी पत्नी को पीट कर आपके पास हजार मुहर लने को आ पहुचेगे। राजा ने भण्डारी का कथन सुनकर कहा कि तुम केवल ऊपरी बाता को ही देखते हो वास्तविक बात नही दखते। दण्ड उसी को दना चाहिए जिसका अपराध हो। जिस अपराध के कारण इसको मर सामन उपस्थित किया गया है उस अपराध का कारण है दरिद्रता। उस दरिद्रता को दण्ड न दकर इसे दण्ड देना अन्याय है और ऐसा करन स अपराधो की परपरा भी बढेगी। इसलिए उस दरिद्रता को ही दण्ड क्यो न दिया जाय जिसके कारण इसके यहा कलह रहता है। राजा का काम है प्रजा की दरिद्रता मिटाये जिससे वह अपराध न करे। यदि राजा होकर भी मै प्रजा की दरिद्रता मिटान के लिए कोष खुला न रखू तो फिर मैं राजा किस काम का? मै इस ब्राह्मण को हजार मुहर इसलिए नहीं द रहा हू कि इसन पत्नी को पीटा है किन्तु इसकी दरिद्रता को मिटाने के लिए द रहा हू।

यदि इसका उदाहरण लेकर कोई सम्पन्न व्यक्ति अपनी पत्नी को पीटेगा तो उसे दण्ड मिलेगा।

राजा का कथन सुनकर भण्डारी तथा अन्य सब लोग प्रसन्न हुए। भण्डारी ने ब्राह्मण को एक सहस्र स्वर्ण–मुद्रा दे दी। राजा ने ब्राह्मण से कहा कि जिसका अपराध था उसे मैने दण्ड दिया है। अब सावधानी रखना और जिसको दण्ड दिया है उसको फिर अपने यहा मत आने देना। राजा का कथन शिरोधार्य करके ब्राह्मण राजा को आशीर्वाद देता हुआ अपने घर आया तब उसकी पत्नी तथा माता मे यानी सास–बहू मे झगडा हो रहा था। सासू बहू को दोष दे रही थी कि मेरे भूखे लडके से यदि क्रोधभरी बाते नही कही होती तो झगडा क्यो होता और उसे पुलिस क्यो पकड ले जाती? अब न मालूम उसको क्या दण्ड भोगना पडेगा! दूसरी ओर बहू सास को दोष देती हुई कह रही थी कि जब तुम्हारा पुत्र मेरा पेट भी नही भर सकता तब उसने मेरे साथ विवाह क्यो किया? तुमने ऐसा बेटा जन्मा जो मुझे खाने को देने के बदले पीटता है इसलिए सब अपराध तुम्हारा ही है।

सासू–बहू इस तरह एक–दूसरे को दोष देकर झगडा कर रही थी। इतने मे उन्होने गठरी लिए हुए ब्राह्मण को आते देखा। गठरी देखकर दोनो का झगडा बन्द हो गया और सासू यह कहती हुई उठने लगी– मेरा भूखा बेटा भार लेकर आ रहा है मै जाकर उसका भार ले लू! तब बहू ने सासू से कहा– आप ठहरिये मै जाती हू। आप वृद्ध है इसलिए आपसे भार न उठेगा। सासू ने कहा– नही बहू मुझे ही जाने दो। भार के कारण तुम्हारा शरीर व्यथित हो रहा होगा। बहू ने उत्तर दिया– पति के हाथ की ऐसी मार दु ख नही किन्तु आनद देती है। कहावत ही है कि पति के हाथ की मार और घी की नाल बराबर होती है।

अपराध तो मैंने किया है। आपकी तो मुझ पर दया ही रही है। मैं ऐसा अभागा हू कि कभी आपको पेट–भर भोजन भी नही दे सका और न कभी सम्मान ही किया। फिर भी आपने मुझ जैसे कुपुत्र को भी घर मे ही रहने दिया घर से नही निकाला। यह आपकी महान् कृपा है।

माता और पुत्र मे इस तरह की बाते हो रही थी इतने म बहू कहने लगी कि आप दोनो का कोई अपराध नही है अपराध तो मेरा है। मैं ही अभागिन हू। आज मार खाकर दुर्भाग्य भाग गया है, इससे सब आनद हुआ है। पत्नी के इस कथन के उत्तर मे ब्राह्मण ने कहा– प्रिय! तुम दुर्भागिनी नही किंतु सद्भागिनी हो परन्तु मुझ दुर्भागी के साथ होने के कारण कष्ट पाती रही हो। जो हुआ सो हुआ, अब भविष्य मे कलह न करने के लिए सावधान रहना चाहिए और राजा भोज की जय हो जिसने कलह का कारण दरिद्रता को पहचान कर, उसे दण्ड दिया है।

मतलब यह है कि झगडा तभी तक रहता है जब तक कि मनुष्य दूसरे को अपराधी मानता है दूसरे का दोष देखता है और स्वय को निर्दोष तथा निरपराधी मानता और समझता है। जो लोग दूसरे मे दोष न देखकर प्रत्येक बात के लिये स्वय को ही अपराधी मानते है उनसे किसी का कभी झगडा होता ही नही है किंतु आपस मे प्रेम रहता है। चन्द्रयश और नमिराज म इसी कारण कलह था कि एक वे एक–दूसरे का अपराधी मानते थे। जब दोनो अपने को ही अपराधी मानने लगे तब कलह कैसे रह सकता था!

नमिराज और चन्द्रयश अपना–अपना अपराध मानकर एक दूसरे से क्षमा मागते रह तब बात का अत आता न देखकर किसी बुद्धिमान ने दोनो से कहा– इस विषयक निर्णय का भार सतीजी पर रखिये। इसलिए सतीजी की सेवा म चलना अच्छा है। बुद्धिमान का कथन उचित मानकर दोनो भाई सुव्रताजी सती की सेवा म उपस्थित होने के लिए चले। साथ के लोग 'महाराज चन्द्रयश' 'महाराज नमिराज' 'महासती सुव्रताजी' की जय बोलते चल रहे थे। इस प्रकार हर्षोत्साहपूर्वक चन्द्रयश और नमिराज जब लोगो के साथ महासती सुव्रताजी की सेवा म उपस्थित हुए उस समय नगर म अपूर्व आनद छाया हुआ था। सब लोग यही कह रहे थ कि न मालूम आज कैसा घमासान युद्ध होने वाला था और नगरनिवासियो पर न जाने कैसी महान आपत्ति आने वाली थी परन्तु महासतीजी की कृपा से वह आपत्ति टल गई और यह आनद हुआ है।

चन्द्रयश नमिराज एव उनके साथ के सब लोग वदन करके सती के सम्मुख बैठ गये। चन्द्रयश हाथ जोडकर सती सुव्रताजी से कहने लगा कि

इस समय आपने यहा पधार कर एक पकार से सब लोगो को जीवन–दान दिया है। मैं और भाई नमिराज परस्पर शत्रु बनकर एक–दूसरे के प्राण लेने को उद्यत थे। यदि आज आप न पधारी होतीं तो हम दोनो अपनी भावनानुसार एक–दूसरे के पाण लेने का प्रयत्न करते और इसके लिए भयकर युद्ध होता तथा अनेक निर्दोष मनुष्य हताहत होते। लेकिन आपकी दया से वह विषमय वातावरण अमृतमय बन गया है। मैंने अपनी मूर्खता से ही धन–जन–नाशक युद्ध छेड दिया था। मुझे अपनी भूल के लिए बहुत पश्चात्ताप है और यह विचार होता है कि यदि आप न पधारी होती तो या तो भाई नमिराज मुझे मार डालते या मै उन्हे मार डालता तथा इस प्रकार दूसरे रूप मे उसी घटना की पुनरावृत्ति होती जो हमारे पिता और पितृव्य के बीच घटी थी।

कारण को लेकर बडा भाई छोटे भाई को और छोटा भाई वडे भाई को मार डालता है? लेकिन तुम दोनो को यह ज्ञात ही न था कि हम दोनो आपस मे भाई–भाई हैं। अज्ञान होने पर ऐसा होता ही है। अब अज्ञान मिटा तो युद्ध भी मिट गया और तुम दोनो शत्रु से भाई बन गए। अब तक जिस हाथी को क्लेश का कारण माना जाता रहा है, लेकिन अब विचार करो कि हाथी का यहा आना क्लेश का कारण रहा या हर्ष का? हाथी क्लेश का कारण तभी तक था, जब तक अज्ञान था। अज्ञान मिटते ही वही हाथी प्रेम कराने वाला हो गया। इस प्रकार हाथी या कोई दूसरा क्लेश अथवा प्रेम कराने वाला नहीं किन्तु अज्ञान ही क्लेश कराने वाला है और ज्ञान ही क्लेश मिटाकर प्रेम कराने वाला है। जिस ज्ञान के प्रभाव से युद्ध मिटा है एव तुम दोनो भाई–भाई एक हुए हो उस ज्ञान को अधिक बढाने पर तुम्हे ज्ञात होगा कि ससार के सभी जीव हमारे भाई है। जब तुम मे इस तरह का ज्ञान होगा और तुम ससार के सब जीवो को अपना भाई मानोगे, तब तुम किसी भी जीव को दुख नही दोगे किंतु सबके साथ प्रेम का व्यवहार करोगे तथा इस तरह सहज ही आत्मा का कल्याण कर सकोगे। इसलिए अज्ञान को दूर करो। ज्ञान–वृद्धि का प्रयत्न करो। ज्ञान की जैसे–जैसे वृद्धि होती जावेगी अज्ञान भी वैसे–वैसे मिटता जावेगा। जब पूर्ण ज्ञान हो जावेगा, अज्ञान सर्वथा नि शेष हो जावेगा। तब आत्मा जीवनमुक्त हो जावेगी। भव्य लोग आत्मा मे रहे हुए अज्ञान को नि शेष करके ज्ञानधन बनने के लिए ही सयम लेते हैं। वे सोचते हैं कि जब तक मुझ म किंचित मात्र भी अज्ञान है, तब तक ससार के किसी–न–किसी जीव को मेरी ओर स यत्किंचित् पीडा होगी ही तथा जब तक मेरी ओर से किसी भी जीव को थोडी–सी भी पीडा होगी, तब तक मेरा ससार मे जन्मना–मरना भी नही छूट सकता। इस विचार से ही व सासारिक सुखो का त्याग कर सयम म प्रव्रजित होते हैं तथा सयम का पालन करते हैं। तुम लोग यदि एकदम से ऐसा नही कर सकत तो धीरे–धीरे ज्ञान बढाने एव अज्ञान से निकलने का प्रयत्न करो जिससे बढते–बढते कभी सर्वथा अज्ञानरहित हो सको और किसी भी जीव से कलह नही करना पडे।

प्रत्येकबुद्ध नमिराज

भव्य प्राणी किसी भी बात कार्य या पदार्थ से ज्ञान लेकर सासारिक पदार्थो के स्वरूप को समझ जाते हैं। यह जान लेते हैं कि आत्मा का इन सासारिक पदार्थो से क्या सबध है और यह जान लेने के कारण वे समस्त सासारिक सुख–वैभव को तृणवत् त्याग कर आत्मा को भौतिक पदार्थो से सर्वथा सबधरहित करने के प्रयत्न मे लग जाते है। वैसे तो प्रत्येक कार्य कारण से ही हुआ करता है परन्तु निमित्त मात्र भी कार्य का एक कारण है। इसके अनुसार सयम लेने और भौतिक पदार्थो से सबधरहित होने का प्रधान कारण तो ज्ञानावरणीय तथा चारित्रावरणीय कर्म का क्षयोपशम ही है लेकिन साधारणतया कोई निमित्त भी सयम लेने का कारण होता है। ऐसा निमित्त किसी के लिए बड़ा होता है और किसी के लिए छोटा। जिसके ज्ञानावरणीय तथा चारित्रावरणीय कर्म का अधिक क्षयोपशम हुआ है वह तो किसी छोटे–से निमित्त को पाकर ही सयम मे प्रव्रजित हो जाता है और जिसका क्षयोपशम कम हुआ है

अमुक निमित्त ही सयम लेने का कारण है यह नही कहा जा-सकता। कोई निर्ग्रन्थ प्रवचन का उपदेश सुनकर कोई किसी व्यक्ति या पदार्थ को देखकर, कोई किसी घटना के कारण तथा कोई स्वय ही तत्त्वो का विचार करके सयम लेता है। अनाथी मुनि ने शरीर–वेदना होने और सयम की भावना करने पर शरीर की वेदना मिट जाने से सयम लिया। समुद्रपाल ने शूली पर चढने के लिए जाते हुए चोर को देख कर सयम लिया था। मेघकुमार, शालिभद्र आदि ने उपदेश सुनकर सयम लिया था। सेठ धन्नाजी ने अपनी पत्नी सुभद्रा की बात सुनकर लिया था और इस कथा मे आये हुए चन्द्रयश ने सती सुव्रता द्वारा सयम का महत्त्व जानकर सयम लिया था। इस प्रकार सयम मे प्रव्रजित होने के निमित्त कारण भिन्न–भिन्न होते हैं। नमिराज के लिए भी एक ऐसा निमित्तकारण हो गया था जिससे उसने मिथिला और सुदर्शनपुर का राज्य त्यागकर सयम लिया तथा मोक्ष प्राप्त किया। नमिराज के सयम लेने का निमित्त कारण क्या था यह बात इस प्रकरण से ज्ञात होगी।

सती सुव्रता का उपदेश सुनकर चन्द्रयश नमिराज तथा अन्य उपस्थित लोग गद्‌गद हो गये। उस समय अन्य लोगो की भावना तो किसी सीमा तक ही रही, परन्तु चन्द्रयश की भावना बहुत उच्च हो गई। वह सती को नमस्कार कर बोला– आज जो आनन्द हुआ तथा सतीजी ने जो उपदेश दिया है उससे मैं इसी निर्णय पर पहुचा हू कि यह सब आनन्द सयम का आभारी है। यदि इन माताजी ने सयम न लिया होता और तब ये हम दोनो भाइयो को शान्ति का उपदेश देती तो सम्भव है कि उस उपदेश का यथेष्ट प्रभाव होता या न होता। इसके सिवा यदि इन्होने सयम न लिया होता तो इन्हे यह भी पता न लगता कि हम दोनो भाइयो मे युद्ध हो रहा है। सयम लेने के कारण ही इन्हे हमारे युद्ध तथा युद्ध का कारण ज्ञात हो सका और ये हमारा अज्ञान हटाकर युद्ध रोकने मे समर्थ हुई। इस प्रकार हम दोनो भाइयो का युद्ध भी सयम से मिटा है और मिलन भी सयम से हुआ है। माताजी ने भी अभी सयम का बहुत महत्त्व बताया है इससे मेरे हृदय मे सयम के प्रति आकर्षण हुआ है। इसलिए मै सुदर्शनपुर का राज्य भाई नमिराज को सौपकर सयम लेना चाहता हू। अब मैं अपनी आत्मा का कल्याण करने मे लगूगा। जिस ससार मे अज्ञान भरा हुआ है उसमे इस युद्ध की तरह अनेक अनर्थ होना सम्भव है। मैं अब इस ससार–व्यवहार मे नही रहना चाहता।

चन्द्रयश का यह कथन सुनकर नमिराज घबराया। वह उठकर चन्द्रयश से कहने लगा– भाई आप यह क्या कह रहे है? आज ही तो मुझ

आपके दर्शन हुए हैं और आज ही आप मुझे छोड रहे हैं। मै इस कारण आनन्दित हुआ था कि मैं भ्रातृहीन नही रहा। मैं आपका छोटा भाई हू, इस कारण आपको मुझ पर दया तथा कृपा रखनी चाहिए लेकिन आप तो मुझे छोड रहे हैं ओर वह भी मेरे सिर पर अधिक बोझा रखकर। मिथिला के राज्य का बोझा तो है ही फिर आप यह और अधिक बोझ लादने का विचार कैसे कर रहे हैं। कदाचित् आप मेरे अपराध के कारण यह दण्ड दे रहे हो तो इसके लिए मै आपसे दया की भिक्षा मागता हू और पार्थना करता हू कि आप मुझ पर राज्य का अधिक बोझ डालने और मुझे भ्रातृहीन बनाने का दण्ड मत दीजिये। वह दण्ड मेरे लिए बहुत ही असह्य है। इसलिए अभी आप सयम लेने का विचार मत कीजिये। यद्यपि सयम को मैं अच्छा मानता हू, फिर भी इसी अवसर पर आपका सयम लेना मैं उचित नही मानता। जब आप मुझे इस योग्य बना दे कि मै दोनो जगह का राज्य–भार सभाल सकू, दोनो जगह की प्रजा को सुख दे सकू एव स्वय मे अभिमान अहकार न रहने दू, तब आपका सयम लेना ठीक हो सकता है लेकिन अभी सयम लेना प्रत्येक दृष्टि से असामयिक है। इस पर भी यदि आप अपने लिए सयम लेना सामयिक मानते हो तो मै आप से यही निवेदन करता हू कि सयम मे भी साथ लेकर अपनी सेवा का सुअवसर प्रदान कीजिये।

पालन करने के समय कायरता न दिखाओ। रही तुम्हारे सयम लेने की बात सो इसके लिए मैं कह ही चुका हू कि तुम्हे अभी ऐसा करने का अवसर नही है। तुमने अभी न तो मेरी तरह ससार–व्यवहार का अनुभव ही किया है न दूसरे कार्य ही किये हैं। जब तुम ऐसा कर चुको तथा उपयुक्त अवसर देखो तब जिसे अधिकारी समझो, उसे राजपाट सौपकर सयम ले लेना। यदि तुम भी अभी मेरे साथ ही सयम लोगे तो प्रजा की रक्षा कौन करेगा? इसके सिवा जिस प्रजा की मैं रक्षा करता हू, उसकी रक्षा का भार अपने ऊपर लेकर मुझे सयम लेने का अवसर देना, यह मेरी सेवा करना ही है। मैं अब तक इसी चिन्ता मे ही था कि राजपाट का भार किसको सौंपकर आत्म–कल्याण करने के लिए सयम लूगा? तुम्हारे मिल जाने से मेरी चिन्ता मिट गई। अब तुम राज्य का भार अपने ऊपर लेना अस्वीकार करके विघ्न न डालो, किन्तु अपने बडे भाई की आज्ञा मानकर मुझे प्रसन्न रखने के लिए या मेरा कल्याण हो इस इच्छा से सुदर्शनपुर का राज्य स्वीकार करके मेरे लिए सयम लेने का मार्ग साफ कर दो।

चन्द्रयश के यह कहने पर, नमिराज अधिक कुछ न कह सका। वह चुपचाप आसू बहाता रहा। चन्द्रयश ने उसको धैर्य बधाया और अधिकारियो को राज्याभिषेक की तैयारी करने के लिए आज्ञा दी। चन्द्रयश का निश्चय सुनकर प्रजा घबराई। वह चन्द्रयश से प्रार्थना करने लगी कि आप हम लोगो को मत त्यागिये सयम मत लीजिये। चन्द्रयश ने घबराई हुई और सयम न लेने की प्रार्थना करने वाली प्रजा को एकत्रित करके उसकी शक्ति का भान कराकर कहा कि यदि प्रजा अपनी शक्ति का उपयोग करे तो कोई भी राजा उसका किंचित् मात्र भी अहित नही कर सकता न उसे दुःख ही दे सकता है। यह तो अच्छा है कि भाई नमिराज ही तुम्हारे राजा हो रहे हैं जिन्हे इस राज्य से तथा तुम लोगो से पूरी तरह स्नेह है लेकिन कदाचित् ऐसी बात न होने पर भाई नमिराज या कोई दूसरा शत्रु मुझे पराजित करके यहा का राजा होता और उस दशा मे मैं तुमसे अलग होता तब तुम क्या करते? इसलिए तुम लोग अपनी शक्ति को समझ कर निर्भय होओ तथा मैने तुम लोगो की जो सेवा की है उसके बदले मे मुझे आत्म–कल्याण करने का अवसर दो। मैने अब तक तो तुम लोगो की सेवा की ही है अब भी तुम्हारे सामने सयम लेकर तुम्हारी सेवा करने के लिए ही जा रहा हू। जब मैं तुम लोगो का हितचिन्तक हू तब मुझे ससार–व्यवहार मे ही नही फसा रहना चाहिए। क्योकि प्रजा के हित के लिए राजा का कार्य आदर्श होता है तथा वह राजा द्वारा रखे

गये आदर्श के अनुसार कार्य करने मे आनद का अनुभव करती है। इसलिए राजा यदि ससार–व्यवहार मे फसा हुआ मरता है तो प्रजा भी ऐसा करती है और राजा यदि सासारिक सम्पदा त्याग कर सयम लेता है तो वह प्रजा भी त्याग–भावना सीखती है। मैं तुम लोगो के सामने त्याग का आदर्श रखने के लिए ही जा रहा हू। मैं तुम से दूर नहीं हो रहा हू, किंतु त्याग के आदर्श के नाते तुम्हारे समीप ही हू। इसलिए दु खी न होकर इस विचार से आनद मानो कि हमारा राजा हमारे लिए परलोक–साधन का आदर्श रखने जा रहा है। इसको देखकर तुम लोग हर समय इस बात का विचार रखो कि जब हमारे राजा ने सारा राजपाट ही त्याग दिया, तो हम छोटी–छोटी वस्तु के लिए आपस मे कलह क्यो करे?

प्रजा को इस तरह समझा कर चन्द्रयश ने नमिराज से कहा– भाई, राजा को प्रजा का पालन किस तरह करना चाहिए यह बात तुम भली प्रकार जानते हो। फिर भी बडा भाई होने के नाते मेरे लिये यह आवश्यक है कि मै अपनी ओर से तुम्हे कुछ शिक्षा दू। इसलिए मैं तुमसे यह कहता हू कि प्रजा का पुत्रवत् पालन करना प्रजा की रुचि और मति जानकर उसे सतुष्ट करना तथा प्रत्येक कार्य विचारपूर्वक करना। जिस तरह मैंने एक हाथी के अहकारवश युद्ध ठान लिया था और युद्ध से होने वाले जन–सहार का कुछ भी विचार न किया था वैसी भूल तुम कभी मत करना।

चन्द्रयश का यह कथन सुनकर नमिराज का हृदय गद्गद हो उठा। उसकी आखो से आसू गिरने लगे। वह चन्द्रयश के पैरो पड कर रुधे कण्ठ से कहने लगा– मेरे लिए आप जैसे भाई का मिलना सौभाग्य की बात है किंतु दुर्भाग्य की बात यह है कि आपकी छत्रछाया से वचित होना पड रहा है। आपने मुझे जो–कुछ समझाया है उसके कारण मै अधिक कुछ नहीं कह सकता किंतु यही कहता हू कि आपकी दी हुई शिक्षा रूपी सम्पत्ति मैं सदा

नमिराज को राज्य सौंपकर चन्द्रयश ने पचमुष्टि लोच करके सयम स्वीकार किया। चन्द्रयश मुनि हुए उस समय नमिराज एव प्रजा की आखो से चन्द्रयश के वियोग–दु ख के कारण आसू गिर रहे थे। चन्द्रयश मुनि ने सबको सयम का महत्त्व समझाया और सबको धैर्य देकर चन्द्रयश मुनि वन मे जाने के लिए तैयार हुए। उस समय सती सुव्रताजी ने उनसे कहा– हे मुनि जन्म–सबध से तो आप मेरे पुत्र हो लेकिन सयम के सबध मे हम साध्वियो के आचार्य हुए हो। इसलिए मैं आपसे अधिक कुछ नही कह सकती फिर भी इतना तो अवश्य ही कहूगी कि मेरा सारा प्रयत्न सफल हुआ है और आपने सयम लेकर पारस्परिक कलह का मूल ही नष्ट कर दिया।

सती सुव्रताजी के इस कथन के उत्तर मे चन्द्रयश मुनि ने कहा– आप शास्त्र की दृष्टि से मुझे चाहे आचार्य माने लेकिन वास्तव मे मेरी गुरुआनी तो आप ही हैं। आपने मुझे जन्म देकर तथा पाल–पोष कर एव अज्ञान मिटा कर पारलौकिक कल्याण किया है। इस तरह आपने मातृत्त्व का पूरी तरह पालन किया है। मातृकर्तव्य का पूरी तरह पालन करने वाली माता वही है, जो अपने पुत्र का इहलौकिक तथा पारलौकिक कल्याण करे। आपने मेरे प्रति इस कर्तव्य का पालन किया है इसलिए मै आपका चिरऋणी हू।

चन्द्रयश मुनि वन के लिए चल पडे। वन मे जाते हुए चन्द्रयश मुनि को वन्दन–नमस्कार करके नमिराज आदि सब लोग नगर को लौट आये। सब लोगो के हृदय पर चन्द्रयश मुनि के त्याग का बहुत प्रभाव था। जहा–तहा यही कहते थे कि मनुष्य–जन्म पाना उसी का सफल है जो ससार के प्रपच से निकल कर सयम लेता है और जन्म–मरण से छूटने का प्रयत्न करता है। नमिराज पर अपने बडे भाई द्वारा किये गये त्याग का बहुत प्रभाव पडा था। वह यही सोचता था कि जिस विशाल राज्य को भाई ने तृण के समान त्याग दिया है उस राज्य को पाकर मेरे मन मे किसी प्रकार का अभिमान न आ जाय! मै अन्याय–अत्याचार न करने लगू!

सती सुव्रताजी भी अपनी गुरुआनीजी की सेवा मे उपस्थित हुई। उन्होने गुरुआनीजी को वन्दन–नमस्कार करके प्रार्थना की आपकी कृपा से युद्ध टल गया और सर्वत्र शाति हो गई है। सती सुव्रताजी ने तो इतना ही कहा लेकिन साथ की सती ने गुरुआनीजी को आद्योपान्त सब वृतात सुनाकर बताया कि सती सुव्रताजी ने अपनी वाणी द्वारा दोनो भाइयो का वैर मिटा कर उन्हे आपस मे कैसे मिलाया तथा इनके उपदेश का इनके बडे पुत्र चन्द्रयश पर कैसा प्रभाव पडा आदि। साथ ही यह भी कहा कि इस सती का त्याग

कैसा है? यह राजाओ की माता होकर भी कैसी विनम रहती हैं एव सभी सतियो की कैसी सेवा करती हैं? दूसरी सती द्वारा कहा गया वृत्तात सुनकर सती सुव्रताजी तो मन मे सकुचाई लेकिन सब सतिया बहुत प्रसन्न हुई और सती सुव्रताजी की पशसा करने लगी। सती सुव्रताजी सब सतियो की सेवा करती हुई एव सयम का भली पकार पालन करके अपूर्वकरण से शुक्ल-ध्यान मे पहुच कर क्षपकश्रेणी पर आरूढ हो क्रम से तेहरवे गुणस्थान पर पहुची और तेरहवे गुणस्थान की स्थिति भोग कर अन्त मे चौदहवे गुणस्थान पर पहुची और शरीर त्याग कर सिद्ध बुद्ध मुक्त हो गई।

सयम लेकर चन्द्रयश मुनि ने बहुत वर्षो तक सयम का पूरी तरह पालन किया। अन्त मे वे सिद्ध बुद्ध मुक्त हो गये।

नमिराज मिथिलापुरी और सुदर्शनपुर पर राज्य करने लगे। अपने भाई चन्द्रयश के उपदेशानुसार नमिराज पजा का भली प्रकार पालन करते, अत्याचार न हो इसके लिए सावधान रहते और यह भावना करते रहते कि वह दिन कब आएगा जब मै भी सयम लेकर आत्मा का कल्याण करने मे लगूगा? पूर्व-जन्म के बाद से तो उनकी यह भावना अधिक प्रबल हो गई थी। इसी बीच मे एक ऐसी घटना घट गई कि जिसके कारण नमिराज अपनी सयम लेने की भावना को पूर्ण कर सके।

कि महाराज के शरीर मे दाहज्वर हुआ है और इस व्याधि की औषध है शरीर पर बावना चन्दन का लेप करना। यह निर्णय हो जाने पर नमिराज की एक सहस्र रानिया बावना चन्दन घिसने लगी तथा पटरानी महाराज के शरीर पर चन्दन का लेप करने लगी। चन्दन का लेप होने से महाराज नमिराज को कुछ शाति मिली, जिससे उन्हे नींद आ गई। पति को नीद आई जानकर पटरानी बहुत ही आनदित हुई। मेरी किसी चेष्टा से महाराज की नीद न खुल जाये इस विचार से पटरानी नमिराज के पास से हट गई। पति को नींद आने का समाचार सुन कर अन्य रानियो को भी प्रसन्नता हुई। वे नमिराज के शरीर पर लेप किये जाने के लिए फिर चन्दन घिसने लगी जिससे उनके हाथ की चूडिया परस्पर टकराने लगी। चूडियो के टकराने के सम्मिलित शब्द से महाराज नमिराज की नीद खुल गई। पति की नीद उडी जानकर पटरानी दौडी हुई नमिराज के पास गई और पूछने लगी– महाराज आपकी नीद क्यो खुल गई? क्या फिर दाह होने लगा है? नमिराज ने उत्तर दिया– दाह तो शात है लेकिन यह शब्द कैसे हो रहा है? इस शब्द के कारण ही मेरी नीद खुल गई है। पटरानी ने कहा– महाराज आपके शरीर का दाह शात करने के लिए सब रानिया चन्दन घिस रही हैं। उनके हाथो मे जो कगन तथा चूडिया हैं वे हाथ हिलने से आपस मे टकराते हैं। यह शब्द चूडियो के टकराने का है। नमिराज ने कहा– चूडियो से उत्पन्न इस शब्द ने तो मुझे बडा ही कष्ट दे रखा है। यह शब्द नीद नही आने देता। नीद आने के कारण मुझे जो शान्ति मिली थी, वह इस खनखन शब्द ने नष्ट कर दी है। नमिराज के इस कथन के उत्तर मे पटरानी बोली– महाराज हम चूडी–कगन या दूसरे आभूषण आपकी प्रसन्नता के लिए ही पहनती हैं लेकिन जब वे आपके लिए दु खदायी प्रतीत हो तब हमारे लिए उनका पहन रहना सर्वथा अनुचित है।

यह कहकर पटरानी अन्य रानियो के पास गई। उसने रानियो से कहा– चन्दन घिसने के कारण चूडियो का जो शब्द होता है उससे महाराज की नीद उड गई है। हमारा कर्तव्य है कि हम अपने द्वारा कोई ऐसा कार्य कदापि न होने दे जिसके कारण उन्हे दु ख हो किन्तु वे ही काम करने चाहिये जो उनके लिए आनन्ददायक हो तथा शान्ति दे। इसलिए यही उचित होगा कि हम सब अपने हाथो मे मगल–सूचक केवल एक–एक चूडी ही रहने दे बाकी सभी शेष चूडिया उतार दे।

यह कहकर पटरानी ने अपने हाथो मे केवल एक–एक चूडी रखकर शेष आभूषण और चूडिया निकाल डालीं। पटरानी के साथ ही अन्य रानियो

ने भी ऐसा ही किया। सबके हाथो मे केवल एक–एक ही चूडी रहने से चन्दन घिसने पर भी वैसा शब्द नहीं हुआ जैसा शब्द पहले होता था। पटरानी फिर नमिराज के पास आई और कहने लगी– नाथ! अब तो शब्द बन्द हो गया न! नमिराज ने कहा– हा शब्द तो बन्द हो गया है लेकिन शब्द का बिलकुल ही बन्द होना यह बताता है कि रानियो ने चन्दन घिसना बन्द कर दिया है। तब उत्तर मे पटरानी ने कहा– नही महाराज, हमने केवल शब्द का होना ही बन्द किया है काम बन्द नही किया है। नमिराज ने पूछा कि जब पहले की तरह चन्दन घिसा जा रहा है, तब शब्द का होना कैसे बन्द हो गया? पटरानी ने उत्तर दिया– स्वामिन् हाथो मे आभूषण के साथ अनेक चूडिया होने से वे आपस मे टकराती थी जिससे शब्द होता था लेकिन अब हम सबने अपने हाथो मे केवल एक–एक मगल–सूचक चूडी ही रहने दी है तथा शेष आभूषण तथा चूडिया निकाल कर रख दी हैं इससे शब्द बन्द हो गया।

पटरानी का कथन सुनकर नमिराज विचार मे पड गया। वह मन ही मन सोचने लगा कि ससार मे जो भी दुख हैं, वे आपस मे टकराने से हैं। जब एकता से अनेकता हो जाती है तब आपस मे टकराना या द्वन्द्व होना भी स्वाभाविक है। लेकिन जब अनेको के साथ न रहकर अकेला होता है अथवा अनेकत्व मिटकर एकता हो जाती है तब किसी प्रकार का द्वन्द्व भी नही होता। रानियो के हाथ मे अनेक चूडिया थी तब तक तो वे आपस मे टकराती थी और उनका शब्द ऐसा होता था कि जिससे दूसरे को कष्ट हो। लेकिन जब एक चूडी रह गई तब उसका किसी के साथ द्वन्द्व भी नहीं रहा। इसी तरह आत्मा जब तक अनेक के साथ है तभी तक इसके साथ द्वन्द्व लगा हुआ है और यह कष्ट पाती है। जब यह अकेली हो जायेगी कर्म के साथ सम्बन्ध नही रखेगी तब यह किसी प्रकार के द्वन्द्व मे नही रहेगी किन्तु सर्वप्रकार से कष्टमुक्त हो जायेगी।

प्राप्त करने का ही प्रयत्न करना चाहिए जो एकता या नि सग मे रखा है। अत उसने यह निश्चय कर लिया कि मैं सयम लूगा।

शरीर का दाह मिट जाने से नमिराज को नीद आ गई। सोते हुए उन्होने स्वप्न मे अपने पूर्वभव का सब हाल देखा जिसे देखकर वे जाग उठे। स्वप्न मे अपना पूर्वभव देखकर नमिराज का सयम लेने का निश्चय अधिक दृढ हो गया। प्रात काल अपने परिवार के लोगो तथा मन्त्रियो आदि को बुलाकर सयम का महत्त्व बता अपना निश्चय सुनाया। सब लोगो ने नमिराज से सयम न लेने का बहुत अनुरोध किया परन्तु नमिराज ने सबको इस तरह समझाया कि जिससे वे सब नमिराज के निश्चय के समर्थक बन गये। अपने पुत्र को मिथिला और सुदर्शनपुर का राज्य सौंपकर प्रत्येकबुद्ध नमिराज ने सयम लिया। उस समय उनकी परीक्षा करने के लिए स्वय इन्द्र आये और उन्होने नमिराज को सासारिक सुखो की ओर खीचने का बहुत प्रयत्न किया था लेकिन नमिराज का प्रबल वैराग्य देखकर तथा उनका उत्तर सुनकर इन्द्र नमिराज के पैरो मे पडकर अपने स्थान को गये। (इन्द्र ने नमिराज ऋषि से क्या-क्या कहा और नमिराज ऋषि ने इन्द्र द्वारा कही गई बातो का कैसा उत्तर दिया आदि बातो का विस्तृत वर्णन श्रीमद् उत्तराध्ययन सूत्र के 9वे अध्ययन मे है।) नमिराज मुनि बहुत समय तक सयम का पालन करके अन्त मे सिद्ध बुद्ध मुक्त हो गये। सुव्रता सती और चन्द्रयश मुनि तो पहले ही मोक्ष प्राप्त कर चुके थे। इस प्रकार सती सुव्रताजी (मदनरेखा) ने अपने उपदेश द्वारा अपने पति को नरक मे जाने से बचाया था तथा अपने दोनो पुत्रो को जीवनमुक्त बनाया और अपनी आत्मा का भी कल्याण किया।

श्री जवाहर विद्यापीठ, भीनासर

– एक परिचय –

स्थानकवासी जैन परम्परा मे आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा एक महान् क्रातिकारी सत हुए हैं। आषाढ शुक्ला अष्टमी सवत् 2000 को भीनासर मे सेठ हमीरमलजी बाठिया स्थानकवासी जैन पौषधशाला मे उन्होने सथारापूर्वक अपनी देह का त्याग किया। उनकी महाप्रयाण यात्रा के बाद चतुर्विध सघ की एक श्रद्धाजलि सभा आयोजित की गई जिसमे उनके अनन्य भक्त भीनासर के सेठ श्री चम्पालालजी बाठिया ने उनकी स्मृति मे भीनासर मे ज्ञान–दर्शन–चारित्र की आराधना हेतु एक जीवन्त स्मारक बनाने की अपील की। तदनन्तर दिनाक 29 4 1944 को श्री जवाहर विद्यापीठ के रूप मे इस स्मारक ने मूर्त रूप लिया।

शिक्षा, ज्ञान एव सेवा की त्रिवेणी पवाहित करते हुए सस्था ने अपने छह दशक पूर्ण कर लिए हैं। आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा के व्याख्यानो से सकलित, सम्पादित ग्रथो को 'श्री जवाहर किरणावली' के नाम से प्रकाशित किया जा रहा है। वर्तमान मे इसकी 32 किरणो का प्रकाशन सस्था द्वारा किया जा रहा है। इसमे गुफित आचार्यश्री की वाणी को जन–जन तक पहुचाने का यह कीर्तिमानीय कार्य है। आज गौरवान्वित है गगाशहर–भीनासर की पुण्यभूमि, जिसे दादागुरु का धाम बनने का सुअवसर मिला और ज्योतिर्धर आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा की कालजयी वाणी जन–जन तक पहुच सकी।

सस्था द्वारा एक पुस्तकालय का सचालन किया जाता है, जिसमे लगभग 5000 पुस्तके एव लगभग 400 हस्तलिखित ग्रथ हैं। [illegible] वाचनालय मे दैनिक साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक– [illegible] पत्र–पत्रिकाए उपलब्ध करवाई जाती हैं। प्रतिदिन करीब [illegible] इससे लाभान्वित होते हैं। ज्ञान–प्रसार के क्षेत्र मे [illegible] की सेवा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और क्षेत्र मे [illegible]

महिलाओ को स्वावलम्बी बनाने हेतु सस्था द्वारा सिला
बुनाई कढाई प्रशिक्षण केन्द्र का सचालन किया जाता है, जिसमे योग्य
अध्यापिकाओ द्वारा महिलाओ व छात्राओ को सिलाई बुनाई, कढाई
पेन्टिग कार्य का प्रशिक्षण दिया जाता है। इससे वे अपने गृहस्थी द
कार्यो मे योगदान दे सकती हैं और आवश्यकता पडने पर इस का
के सहारे जीवन मे स्वावलम्बी भी बन सकती है।

सस्था के सस्थापक स्वर्गीय सेठ श्री चम्पालालजी बाठिया की
जन्म–जयन्ती पर प्रत्येक वर्ष उनकी स्मृति मे एक व्याख्यानमाला का
आयोजन किया जाता है, जिसमे उच्च कोटि के विद्वानो को बुलाकर
प्रत्येक वर्ष अलग–अलग धार्मिक सामाजिक विषयो पर प्रवचन
आयोजित किए जाते हैं।

उपरोक्त के अलावा प्रदीपकुमारजी रामपुरिया स्मृति पुरस्कार
के अन्तर्गत भी प्रतिवर्ष स्नातकस्तरीय कला विज्ञान एव वाणिज्य
सकाय मे बीकानेर विश्वविद्यालय मे प्रथम व द्वितीय स्थान प्राप्त करने
वाले विद्यार्थियो को नकद राशि प्रशस्ति–पत्र एव प्रतीक–चिह्न देकर
सम्मानित किया जाता है एव स्नातकोत्तर शिक्षा मे बीकानेर विश्वविद्यालय
मे सर्वाधिक अक प्राप्त करने वाले एक विद्यार्थी को विशेष योग्यता
पुरस्कार के रूप म प्रशस्ति–पत्र एव प्रतीक–चिह्न देकर सम्मानित
किया जाता हे।

विद्यापीठ द्वारा ठण्डे मीठे जल की प्याऊ का सचालन किया
जाता है। जनसाधारण क लिए इसकी उपयोगिता स्वय–सिद्ध है।
इस प्रकार अपन बहुआयामी कार्यो से श्री जवाहर विद्यापीठ निरन्तर
प्रगति–पथ पर अग्रसर हे।